शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 56/3 अक्टूबर-दिसंबर 2021 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ० मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन०सी०आर०
डॉ० अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ० शंकर क्षेम
प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ० अशोककुमार
डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : छह हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए
यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰ विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰) 462038
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फेज-1, दिल्ली 110052
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
श्री अनिल शर्मा जोशी, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ पूरनचंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ एस॰के॰ पवार, प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ 580003 (कर्नाटक)
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
प्रो॰ बाबूराम, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, चौ॰ बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भौसले, अध्यक्ष हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी
प्रो॰ मंजुला राणा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शहाबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ प्रणव शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत 262001 उ॰प्र॰

साहित्य में आधे-अधूरे लोग

मुझे कई बार यह सोचकर चिंता हुई है कि शिक्षा और साहित्य के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में आधे-अधूरे लोगों की भीड़ क्यों बढ़ती जा रही है। ये आधे-अधूरे लोग पाठकों में भी हैं और लेखकों में भी।

मैं एक कुंभकार को देखता हूँ। वह गीली मिट्टी से चाक पर किसी बर्तन का निर्माण कर रहा है। मैं कल्पना करता हूँ। क्या इस कार्य में किसी अन्य ने इसकी सहायता की होगी? मिट्टी कोई लाया होगा, मिट्टी का मंथन किसी और ने किया होगा। उसे बर्तनों में ढालने की स्थिति में कोई और लाया होगा। सब कुछ तैयार हो जाने के बाद कुंभकार उठा होगा, उसने गीली और मथी हुई मिट्टी चाक पर चढ़ाई होगी। चाक के पहिए को गति दी होगी और उस गति से बर्तन के निर्माण में अपनी दक्षता दिखाई होगी? नहीं! कुंभकार बर्तन बनाने की पूर्ण प्रक्रिया से परिचित है। वह जानता है किस श्रेणी, किस गुणवत्ता वाली सूखी मिट्टी बर्तन बनाने के लिए उपयुक्त होती है। वह स्वयं उसे खोजता है, ढूँढ़कर लाता है। उसे उतनी बारीक करता है जितनी बारीक मिट्टी की उसे ज़रूरत होती है। फिर उसे निर्धारित मात्रा में पानी डालकर गीला करता है। गीली मिट्टी को कुछ समय के लिए इसी तरह नर्म होने और गलने के लिए छोड़कर रखता है। मिट्टी गल जाती है और नर्म हो जाती है तो कुंभकार उसे तब तक मथना जारी रखता है, जब तक वह बर्तन का आकार लेने के उपयुक्त नहीं हो जाती। कुंभकार पूरा आदमी है, अधूरा आदमी नहीं। वह बाहर की किसी सहायता के बिना अपना कार्य अपने बलबूते पर स्वयं कर सकता है।

मैं एक सीधे-साधे कृषक की ओर नज़र उठाता हूँ। वह अपने खेत की मेढ़ के किनारे पर खड़ा है। खेत पक चुका है। खेत में दूर तक सुनहरी-सुनहरी बालियों की बाढ़-सी फैली हुई है। मैं कल्पना करता हूँ कि खेत तैयार करने से बीज डालने और बीज डालने से फ़सल के तैयार होने तक का सारा ज्ञान क्या कृषक के पास नहीं होगा? खेत कैसे और कितनी गहराई तक जोता जाता है? मिट्टी को भुरभुरा बनाने के लिए कितनी बार हल खेत से निकाला जाता है? मिट्टी को बारीक करने के लिए क्या विधि अपनाई जाती है? बीज बोने से पहले कितना और कैसा खाद किस मात्रा में खेत को दिया जाता है? अच्छा बीज कहाँ से उपलब्ध होता है? उसकी पहचान क्या है? प्रति एकड़ कितने बीज की आवश्यकता होती है? बीजों को कितने फ़ासले से बोना होता है? अंकुर फूट आने पर पहली सिंचाई का उपयुक्त समय क्या होता है? वर्षा न होने पर कितने-कितने अंतराल से खेत की सिंचाई करनी होती है। खेत को जंगली जानवरों से बचाने के लिए क्या-क्या विधियाँ अपनानी होती हैं? क्या कृषक को अकेले ही इन सब बातों का ज्ञान नहीं होता? अपने ही प्रश्नों के उत्तर में मेरे मुख से निकलता है कि होता है। वह खेत जोतने और काटने तक की सारी स्थितियों से भली प्रकार परिचित होता है। उसे वह पूरा ज्ञान प्राप्त होता

है, जो कृषि-कार्य से संबंधित है। वह अधूरा आदमी नहीं है, पूरा आदमी है। क्योंकि वह अपने व्यवसाय के पूरे ज्ञान से अवगत है।

अब मैं एक स्वर्णकार को देखता हूँ। वह सोने के एक छोटे-से टुकड़े को कसौटी पर कसकर देख रहा है। वह यह जानने की कोशिश कर रहा है कि सोने का जो टुकड़ा उसके हाथ में है वह खोटा, मिलावटी या नक़ली तो नहीं है? मेरी कल्पना मुझसे पूछती है कि क्या यह अपने पेशे के हर पहलू का समुचित ज्ञान रखता है या इसे दूसरे से मिलने वाले योगदान की चिंता घेरे रखती है? मैं स्वर्णकार की ओर ध्यान से देखता हूँ। वह किसी अन्य व्यक्ति से सहायता नहीं ले रहा है। किसी और व्यक्ति की नक़ल भी नहीं कर रहा है। स्वर्णकार ने अपने हाथ के सोने को कसौटी पर रखकर परखा है। परखकर उसने यह जान लिया है कि वह खोटा नहीं है, एकदम खरा है। फिर स्वर्णकार ने अपनी दहकी हुई छोटी-सी भट्टी में सोने को पिघलाया है और उसे कंगन का रूप देना आरंभ कर दिया है। कुछ ही देर की मेहनत के बाद कंगन का एक सुंदर जोड़ा बनकर तैयार हो गया है। सोने की उपलब्धि और आभूषण बनने की सारी प्रक्रिया का ज्ञान उसे है। मुझे लगता है कि वह पूरा आदमी है, अधूरा आदमी नहीं है।

अब मैं कपड़ा मिल के एक ऐसे श्रमिक को देख रहा हूँ, जो मशीन में धागों की लच्छियाँ लगाने के काम पर नियुक्त है। कल्पना करता हूँ कि क्या मशीन में धागे चढ़ाने से लेकर कपड़ा बुनने और कपड़े को थान में परिवर्तित करने की सारी प्रक्रिया का ज्ञान उसे है? उत्तर मिलता है—नहीं। वह केवल इतना ही जानता है, जितना उसे सिखा दिया गया है। वह मशीन में सूत तो चढ़ा सकता है किंतु उसे बुन नहीं सकता। वह नहीं जानता कि सूत कहाँ से आया है? कपास या रेशम को धागों का रूप देने की क्या प्रक्रिया है? धागों को मशीन पर चढ़ाने के बाद ताना-बाना कैसे दिया जाता है? थान कैसे तैयार किया जाता है? उसे रँगने की विधि क्या है? वह केवल इतना ही जानता है जितना पगार देने के लिए उसे सिखा दिया गया है। कपड़ा-श्रमिक का ज्ञान धागों को मशीन पर चढ़ाने तक सीमित है। शेष प्रक्रिया से वह अनभिज्ञ है, अनजान है। मेरी दृष्टि में वह एक अधूरा आदमी है, पूरा आदमी नहीं है, क्योंकि धागे पिरोने का काम यदि वह किसी कारण नहीं कर पाता है तो कोई दूसरा काम करने की योग्यता उसमें नहीं है।

अब मैं कार्यालय में काम करनेवाले एक क्लर्क को देखता हूँ। उसे अपने आठ घंटे की ड्यूटी में कार्यालय के दिन भर के आय-व्यय का हिसाब रखना होता है। हिसाब रखने के काम का उसे ज्ञान है किंतु यदि उससे यह कहा जाए कि कार्यालय की हर महीने की प्रगति रिपोर्ट तैयार करे तो वह ऐसा नहीं कर पाएगा। क्योंकि प्रगति रिपोर्ट तैयार करने की विधि और उसका ज्ञान उसके पास नहीं है। रोटी कमाने लायक जितना ज्ञान चाहिए, उतना ही उसके पास है। इससे अधिक नहीं। वह नहीं जानता कि बच्चों की आधुनिक शिक्षा के लिए सूझ-बूझ की ज़रूरत होती है। गृहस्थी में सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए क्या किया जाना चाहिए? उसे देखकर मुझे यही आभास होता है कि वह एक अधूरा आदमी है।

औद्योगिक क्रांति के बाद जो परिवर्तन हुए, यदि आप उन पर ध्यान दें तो आपको इस निष्कर्ष पर पहुँचने में देर नहीं लगेगी कि उद्योगपतियों और प्रशासनिक सेवाओं के संचालकों को आंशिक ज्ञान रखनेवाले व्यक्तियों की ही आवश्यकता थी। उन्होंने जो शिक्षण-संस्थाएँ और

 ISSN 0975-735X

प्रशिक्षण-केंद्र स्थापित किए, उनमें जान-बूझकर ऐसी व्यवस्था की गई कि शिक्षा और प्रशिक्षण पानेवाले लोग केवल उतना ही ज्ञान अर्जित कर सकें, जो कार्यालयों और कल-कारखानों को चलाने के लिए ज़रूरी हो। उन्हें परिपूर्ण व्यक्तियों की ज़रूरत नहीं थी; ऐसे व्यक्तियों की ज़रूरत थी, जो मशीन में फिट किए गए पुर्जों की तरह केवल उतना ही काम करने का ज्ञान रखते हों, जो आगे चलकर व्यवस्था में उनसे लिया जाना है। अध्ययन करेंगे तो आपको पूरी व्यवस्था इसी धारणा पर विकसित की गई दिखाई देगी। विद्यालयों की तरफ़ दृष्टि उठाकर देखिए। यह समझते देर नहीं लगेगी कि जो पाठ्यक्रम तैयार किया गया है, उसके पीछे किसी व्यवसाय या नौकरी चुनने लायक ज्ञान उपलब्ध कराने भर की व्यवस्था है। इससे अधिक नहीं। अर्थशास्त्र पढ़नेवाला साहित्य के ऐसे प्रमुख नामों से अपरिचित है, जिनकी जानकारी उसे होनी चाहिए थी। समाजशास्त्र पढ़नेवाले लोग चित्रकारी और संगीत की उन हस्तियों से अनभिज्ञ हैं, जिनसे उन्हें कम-से-कम परिचित तो होना ही चाहिए था। वाणिज्य वर्ग के छात्र राजनीति की जटिलताओं और गतिविधियों का ज्ञान नहीं रखते। हद तो यह है कि साहित्यिक विषयों में मास्टर डिग्री पानेवाले महानुभाव भी साहित्य का मात्र इतना ज्ञान रखते हैं जितने की परीक्षा उत्तीर्ण करने में उन्हें आवश्यकता होगी। यह सब आधुनिक समाज के आधे-अधूरे लोग हैं, पूरे या परिपूर्ण लोग नहीं हैं।

समाज में यह दुखद स्थिति कैसे आई? आधुनिक जगत् की नवीन औद्योगिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था को चलाने के लिए नवोदित संस्थापकों को पूर्ण ज्ञानवाले व्यक्तियों की नहीं, सीमित व्यावसायिक ज्ञानवाले व्यक्तियों की ज़रूरत थी, ताकि वे आसानी से तैयार किए जा सकें और आसानी से उपलब्ध हो सकें। इस आवश्यकता के अंतर्गत जो विद्यालय और प्रशिक्षण-केंद्र खोले गए, उनमें लाभार्थियों को केवल उतना ही ज्ञान उपलबध कराया गया, जो उनके द्वारा अपनाए जानेवाले काम के लिए आवश्यक था। परिणामत: अर्थशास्त्र का विद्यार्थी साहित्य से और साहित्य का विद्यार्थी राजनीतिशास्त्र से अनभिज्ञ होता चला गया। आगे चलकर स्थिति इतनी अधिक बिगड़ी कि अर्थशास्त्र का विद्यार्थी मात्र इतना ही ज्ञान अर्जित करने में रुचि लेने लगा, जो परीक्षा उत्तीर्ण करने अथवा डिग्री प्राप्त करने के लिए आवश्यक था। यही स्थिति साहित्य-क्षेत्र में विद्यार्थियों की हुई। उन्होंने साहित्य पढ़ने को प्राथमिकता नहीं दी, वरन् गाइडों और ट्यूटरों की सहायता से पाठ्यपुस्तकों के केवल उतने भाग को रटने को महत्त्वपूर्ण माना, जो उन्हें परीक्षा की वैतरणी पार करा सकते हों। ये बाहर से पूरे दिखाई देनेवाले व्यक्ति, दरअसल, पूरे आदमी नहीं हैं, आधे-अधूरे आदमी हैं।

अब मैं अपने वास्तविक विषय की ओर आता हूँ। प्राय: कविता को ईश्वरीय वाणी का अंश कहा जाता है। क्या इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ईश्वरदूत के लिए पुस्तकीय ज्ञान आवश्यक नहीं है, कवि या साहित्यकार के लिए भी नहीं। मेरे विचार से इस कथन का तात्पर्य यह कदापि नहीं। कथन मात्र इतना बताता है कि रचनात्मक योग्यता कुछ विशेष व्यक्तियों को प्रकृति से प्राप्त होती है। यह सबको नहीं मिलती। कवि या लेखक बनता नहीं है, पैदा होता है। शिक्षा के उच्चतम शिखर पर पहुँचकर भी यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी मेहनत से कवि या लेखक बन जाए। रचनाधर्मिता प्रकृति उसके स्वभाव में डालती है, जिसे वह अपनी मेहनत, अभ्यास और ज्ञान से विकसित करता रहता है। ज्ञान के बिना वह उन ऊँचाइयों को नहीं छू

सकता, जिन तक पहुँचने की एक कवि या साहित्यकार से आशा की जाती है। कवि या साहित्यकार को ज्ञान और जागरूकता के दृष्टिकोण से एक परिपूर्ण व्यक्ति होना चाहिए, पूरा आदमी होना चाहिए, आधा-अधूरा आदमी नहीं।

आधा-अधूरा आदमी कल-कारख़ानों में तो चल सकता है, कार्यालय में चल सकता है, किसी सीमा तक राजनीति में चल सकता है, किंतु साहित्य में कदापि नहीं चल सकता। साहित्यिक जीवन और दांपत्य जीवन दोनों ही परिपूर्ण व्यक्ति की माँग करते हैं। यदि व्यक्ति परिपूर्ण नहीं है तो न दांपत्य जीवन ही सफल हो सकता है और न साहित्यिक जीवन ही। साहित्यकार के लिए मैं जब हर तरह के ज्ञान का आग्रह करता हूँ तो मुझसे पूछा जाता है कि संत कबीर ने कौनसे विश्वविद्यालय से शिक्षा की सर्वोच्च डिग्री प्राप्त की थी? उन्हें तो अक्षरज्ञान भी नहीं था। तब वे महाकवि कैसे बन सके? कबीर का उदाहरण बताता है कि रचनाधर्मिता ईश्वर की देन है, पुस्तकों की देन नहीं है।

अच्छा हो कि पहले हम ज्ञान के विषय को समझ लें। यह समझ लें कि ज्ञान कहाँ-कहाँ है और हम उसे कहाँ-कहाँ से अर्जित करते हैं। यह बात अंकित करने की है कि ज्ञान पोथी-पुस्तक में भी है और जीवन तथा मानव-समाज में भी। जिसे अक्षरज्ञान नहीं है, वह भी ज्ञानी हो सकता है। देखना यह होता है कि उसने जीवन का, प्रकृति का, समाज का, मानव का तथा स्वयं अपना कितनी गहराई से और कितनी निष्पक्षता से अध्ययन किया है। उसने इस अध्ययन से कितना कुछ सीखा है। मानव का पूरा समाज, प्रकृति और मनुष्य स्वयं, वस्तुतः, ये सभी खुली किताबों की भाँति हैं। यदि किसी व्यक्ति ने ध्यानपूर्वक इनका अध्ययन किया है तो हम उन्हें निरक्षर तो कह सकते हैं, अज्ञानी नहीं।

ग्रामीण अंचलों में रहनेवाले एक अनपढ़ किसान को ऋतुओं का जितना विस्तृत ज्ञान होता है, उतना कृषिशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त कर चुके शहरी युवक को नहीं होता। एक साधारण किसान हवा का रुख देखकर बता सकता है कि वर्षा होगी या नहीं होगी, आँधी आ सकती है या नहीं। प्रकृति और जीवन ज्ञान के भंडार से भरे पड़े हैं। कबीर जैसे संतों ने ज्ञान के इन्हीं ख़ज़ानों से अपनी आत्मा और मस्तिष्क के भंडारों को भरा था। कबीर अज्ञानी नहीं थे। किंतु कबीर का उदाहरण सामने रखकर यदि कोई साहित्यकार अपने लिए यह तर्क प्रस्तुत करता है कि कविता करने या साहित्य लिखने के लिए पुस्तकों का अध्ययन करना ज़रूरी नहीं है तो उसकी बात सही नहीं मानी जाएगी। यह इसलिए नहीं मानी जाएगी कि कबीर के युग की तुलना में आज का युग ज़्यादा जटिल, ज़्यादा उलझा हुआ और ज़्यादा समस्याग्रस्त है। इसे समझने के लिए किसी एक विषय की नहीं, अनेक विषयों की जानकारी चाहिए। यह ज्ञान पोथी-पुस्तक में भी है और जीवन की पाठशाला में भी। यदि कोई साहित्यकार केवल अपनी प्राकृतिक योग्यता पर भरोसा करता है, पुस्तकों और जीवन में बिखरे हुए ज्ञान से आँखें चुराता है तो वह लेखन में सक्रिय होने पर भी कार्यालय के क्लर्क अथवा कपड़ा मिल में सूत चढ़ानेवाले श्रमिक की तरह अधूरा व्यक्ति ही रहेगा, पूरा व्यक्ति नहीं बन सकेगा। यह बात अच्छी तरह समझ लीजिए कि जो प्रतिभा कबीर के पास थी, वह सबके पास नहीं होती। कबीर भाषा के निर्माता थे और हम निर्मित हो चुकी भाषा के दास। वह भाषा को अपने अंकुश से चलाने की क्षमता रखते थे, और

 ISSN 0975-735X

हम भाषा के निर्देश में चलने को बाध्य हैं। कबीर के स्रोत विशाल सामाजिक जीवन में थे, हमारा सामाजिक जीवन और उस जीवन से हमारा सरोकार हमीं से नहीं है। तब यह कहना कि यदि कबीर पुस्तकीय ज्ञान से वंचित रहकर लेखन की इतनी बुलंदी पर पहुँच सकते हैं, तो हम क्यों नहीं पहुँच सकते हैं, हास्यास्पद है। अपने को अपनी प्रतिभा और अपने युग के संदर्भों में रखकर देखिए, कबीर की प्रतिभा और कबीर के युग के संदर्भ में नहीं।

ग़ज़ल-लेखन में अभ्यास कर रहा एक व्यक्ति मेरे पास आता है। वह अपने द्वारा लिखी गई एक ग़ज़ल सुनाने का आग्रह मुझसे करता है। मैं उससे पूछता हूँ कि ग़ज़ल-विधा के बारे में तुम क्या जानते हो? किसी एक छंद में लिखी हुई कुछ ऐसी पंक्तियाँ, जिसका ढाँचा एक 'रदीफ़ और उससे पहले के तुकांत शब्दों पर खड़ा हो। मैं उसे ग़ज़ल सुनाने की अनुमति देता हूँ। वह सुनाता है।

अपने ही सुख-चैन का रक्त पीना छोड़िए
हसरतों के दरमियान रो-रो के जीना छोड़िए

पंक्तियाँ सुनकर मैं विनम्रतापूर्वक उससे कहता हूँ कि इनमें तुमने जिस छंद का प्रयोग करना चाहा है। उसे तुम अधिकारपूर्वक प्रयोग नहीं कर सके हो। छंद टूट-टूट गया है। अभी तक केवल यह जान पाए हो कि तुक या काफ़िया क्या होता है और ग़ज़ल में रदीफ़ क्या होती है? इससे अधिक तुम्हारा ज्ञान कुछ नहीं है। तुम उसी कपड़ा कारख़ाने के श्रमिक की तरह हो, जो मशीन में धागे डालना जानता है, कपड़ा तैयार करना नहीं जानता। जैसे वह अधूरा आदमी है, ग़ज़ल के मैदान में तुम भी अधूरे आदमी हो। वह जितना जानता है, उससे भौतिक रूप में कुछ-न-कुछ तो अर्जित करता ही है, तुम इतना भी नहीं कर सकते। मैं उससे पूछता हूँ कि तुम्हें ग़ज़ल और उसकी कला का ज्ञान कैसे और कहाँ से प्राप्त हुआ? वह मेरे प्रश्नों के उत्तर के साथ लाई गई फ़ाइल से दैनिक समाचारपत्रों की बहुत-सी कतरनें निकालता है और मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए कहता है, 'इस तरह की तमाम छपी हुई सामग्री मैं पढ़ता हूँ और उससे सीखने का प्रयास करता हूँ।'

मैं उससे अगला प्रश्न करता हूँ कि तुमने अब तक किन-किन समकालीन ग़ज़लकारों को पढ़ा है। उत्तर में वह कुछ नाम गिना देता है। मैं अगला प्रश्न करता हूँ, 'ग़ज़ल-साहित्य के अतिरिक्त तुम और क्या-क्या पढ़ते हो?' उत्तर मिलता है, 'मुझे किसी और विषय में कोई रुचि नहीं है। मैं केवल ग़ज़ल-साहित्य पढ़ता हूँ और उसे नमूना मानकर उससे ही सीखने का प्रयास करता हूँ।'

अब विश्लेषण कीजिए और सोचिए कि साहित्य में अधूरे आदमियों की भीड़ कैसे बढ़ती जा रही है। वर्णित व्यक्ति ने ग़ज़ल के कलात्मक पक्ष का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। केवल तुकों और रदीफ़ों की जानकारी ली। समाचारपत्रों में छपी सामग्री को नमूना माना, अपने समय के प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों को ध्यानपूर्वक पढ़ने की ज़रूरत भी नहीं समझी? जैसा-तैसा अख़बारों में छपा ग़ज़ल-साहित्य पढ़ना ही पर्याप्त माना। विज्ञान, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान से संबंधित पुस्तकें और जीवन से जुड़े और बहुत से विषयों पर लिखा गया साहित्य अपने लिए व्यर्थ समझा। तब आप स्वयं निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ग़ज़ल-लेखन का प्रयास कर रहा यह व्यक्ति

इस विधा के साथ कितना न्याय कर सकेगा? साहित्य चहुमुँखी ज्ञान माँगता है। केवल भाषा का ही नहीं, जीवन के लगभग सभी पक्षों का। यह ज्ञान नहीं है तो ऐसा व्यक्ति साहित्य का अधूरा आदमी है। समाज के अधूरे आदमियों की तरह वह भी एक है।

आइए, कुछ और आगे बढ़ें। एक व्यक्ति अपनी एक कहानी लेकर मेरे पास आया है। वह मुझसे कहानी पर अपनी राय देने के लिए कहता है। मैं आगंतुक द्वारा दिए गए पन्नों पर नज़र डालते हुए कहता हूँ, 'कहानी विधा के बारे में तुम क्या जानते हो? उपन्यास और कहानी के बीच क्या अंतर है? कहानी और लघु-कहानी के मध्य पहचान की क्या रेखा है?' वह मेरे प्रश्नों को सुनकर उलझ गया है। कोई उत्तर नहीं दे पा रहा है। आगंतुक द्वारा लिखे गए पन्ने मेरे हाथ में हैं और मेरी सोच कुछ ऐसे विश्लेषणों से गुज़र रही है, जिन पर मैंने इससे पहले कभी नहीं सोचा था।

'इतनी बड़ी संख्या में लोग साहित्य के क्षेत्र में आना क्यों पसंद करते हैं? एक प्रश्न अनायास मेरे मस्तिष्क में उभर आया है। सोच रहा हूँ, न्याय-परिसरों में प्रार्थनापत्र टाइप करने का धंधा आरंभ करने से पहले एक व्यक्ति को इस कार्य से संबंधित बहुत-सी बातें सीखनी होती हैं। सर्वप्रथम उसे टाइप राइटर पर अपनी टंकन गति संतोषजनक सीमा तक बढ़ानी होती है। यह सुनिश्चित करना होता है कि वह टाइपिंग में त्रुटियाँ तो नहीं कर रहा है। फिर विभिन्न प्रकार के प्रार्थनापत्रों की निर्धारित एवं निश्चित भाषा और उसमें प्रयोग होनेवाली शब्दावली की जानकारी प्राप्त करनी होती है। तब कहीं जाकर वह स्वयं को इस योग्य बना पाता है कि कचहरी परिसर में टाइप-मशीन लेकर बैठे और आत्मविश्वास के साथ काम करने का साहस कर सके। किंतु साहित्य के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति नहीं है। लिखने के लिए कुछ भी सीखना ज़रूरी नहीं समझा जाता है। नमूने की सामग्री का अध्ययन कर कोई भी व्यक्ति ग़ज़ल, दोहा, कविता, कहानी, व्यंग्य, निबंध किसी भी विधा में लिखने का अधिकारी हो जाता है।

'इतने लोग साहित्य के क्षेत्र में क्यों आते हैं? मैं अपने आपसे पूछता हूँ—क्यों इन्हें अपने आधे-अधूरेपन का बोध नहीं हो पाता?'

वास्तव में भारतीय समाज में आज भी कवियों और साहित्यकारों को जो सम्मान प्राप्त है, वह किसी दूसरे व्यवसाय से जुड़े लोगों को प्राप्त नहीं है। कवि और साहित्यकार समाज में जो ख्याति और प्रतिष्ठा अर्जित कर लेते हैं, वह अन्य व्यवसायों में कार्यरत लोगों को नहीं मिल पाती। उन्हें मित्रों और परिचितों की वाहवाही और प्रशंसा भी मिलती है तथा नाम और सम्मान भी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पेट और शरीर की भूख के बाद जो भूख सबसे अधिक व्याकुल करनेवाली होती है, वह नाम, सम्मान और ख्याति की भूख है। कला और साहित्य का क्षेत्र ऐसा है, जिसमें सक्रिय होकर यह समझा जाता है कि कम-से-कम मेहनत, कम-से-कम समय और कुछ भी व्यय किए बिना नाम भी कमाया जा सकता है और सम्मान भी। नाम और सम्मान की इच्छा लेकर साहित्य के क्षेत्र में आनेवालों के सामने पहले के और उनके अपने समय के वह ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठित नाम चर्चा में होते हैं, जिन्हें पाठकों का बहुत बड़ा वर्ग चर्चा में बनाए रखता है और जिनके नाम आदर और सम्मान से लिए और सुने जाते हैं। यही नाम उन लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनते हैं, जो अध्ययन और परिश्रम तो करना नहीं चाहते, आवश्यक ज्ञान

 ISSN 0975-735X

प्राप्त करने की चिंता तो करना नहीं चाहते पर यह अवश्य चाहते हैं कि उन्हें साहित्यकार के रूप में आदर मिले, और ख्याति मिले, और प्रशंसा मिले।

प्रकृति ने मनुष्य को जितनी भी शक्तियाँ दी हैं, उनमें सबसे अद्‌भुत शक्ति कल्पनाशक्ति है। किसी में यह शक्ति कम होती है, किसी में अधिक। जनसामान्य से अधिक कल्पनाशक्ति रखने वालेलोग साहित्य के क्षेत्र में आसानी से सक्रिय हो जाते हैं। किंतु वे इस बात से अवगत नहीं होते कि कला और साहित्य का दुर्ग मात्र कल्पनाशक्ति पर खड़ा नहीं किया जा सकता। कल्पना को ज्ञान, सोच और चिंतन की सामग्री से भी लैस करना होता है। कल्पना के पाँव हवा में होते हैं। उसे ज्ञान और चिंतन ही ठोस धरातल पर स्थापित करता है। ज्ञान अर्जित करने के लिए परिश्रम चाहिए। किंतु प्रशंसा और ख्याति के इच्छुक परिश्रम का कष्ट भोगना आवश्यक नहीं मानते। परिणामत: साहित्य के क्षेत्र में आधे-अधूरे लोगों की भीड़ बढ़ती चली जाती है।

मैं अपने पास आए इस नए कहानीकार से पूछता हूँ कि उसने अब तक किस-किस कहानीकारों को पढ़ा है। उत्तर मिलता है मात्र उन कहानीकारों को जो स्नातक स्तर की पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित रहे हैं। मैं चुप हूँ और कुछ सोचकर फिर एक प्रश्न कर रहा हूँ, 'कहानियों के अतिरिक्त उसने और किस-किस विषय की पुस्तकें पढ़ी हैं। समाज, राजनीति, विज्ञान, मनोविज्ञान, देश और विभिन्न देशों की मानव-सभ्यता से जुड़ा साहित्य।' उत्तर मिलता है, 'नहीं, इनमें से किसी विषय को नहीं पढ़ा।'

मुझे फिर किसी कार्यालय में नौकरी करनेवाला वह क्लर्क याद आ जाता है, जिसकी चर्चा मैंने इस लेख में की है। हमारे इतिहास में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शताब्दी की अवधि ऐसी है, जिसमें कार्यालयों, दफ़्तरों, फैक्ट्रियों, कल-कारखानों तथा शिक्षण-संस्थाओं में आंशिक दक्षता वाली पीढ़ियाँ तैयार की जाती रही हैं। हिसाब-किताब रखनेवाले क्लर्क के लिए मात्र एकाउंटेंसी का जानकार होना पर्याप्त है। उसे कुछ और जानने की ज़रूरत नहीं है। कोट सीने वाले टेलर मास्टर को सिर्फ़ कोट सीने के काम में दक्ष होना चाहिए। उसके लिए कमीज़ या जैकेट की सिलाई जानना ज़रूरी नहीं है। पर आंशिक ज्ञान के लोग बाज़ार और व्यवसाय की दुनिया में तो चल सकते हैं, साहित्य में नहीं चल सकते।

यहाँ मेरा आशय यह बिल्कुल नहीं है कि एक कवि या साहित्यकार को सभी विधाओं का पूर्ण ज्ञानी होना चाहिए। मैं यह बिलकुल नहीं कह रहा हूँ और यह संभव भी नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय केवल इतना है कि साहित्यकार की हैसियत से हमारी जानकारी का क्षेत्र सीमित नहीं होना चाहिए। हमें विभिन्न विषयों के ज्ञानविज्ञान की उतनी जानकारी तो होनी ही चाहिए, जिनसे हमारी सोच और लेखन के क्षितिजों के विस्तृत होने की संभावना होती है।

'कवि (साहित्यकार) उत्पन्न होता है, बनता नहीं।' इस पुरानी कहावत के अर्थों को इतना जड़ और संकुचित मत कीजिए कि यह अंधविश्वास की सीमा में सिमटकर रह जाए। साहित्यकार या कवि उत्पन्न होता है, यह सही है पर इसका अर्थ केवल इतना है कि प्रकृति उसे कुछ ऐसी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ देकर संसार में भेजती है जो अन्य सामान्य लोगों में नहीं होती। किंतु प्रकृति द्वारा भेंट की गई इन रचनात्मक प्रवृत्तियों के सहारे कोई भी व्यक्ति साहित्य में कोई बड़ा कारनामा कर दिखाने में सफल नहीं हो सकता, उसे अपनी रचनात्मक क्षमता को ज्ञान, अनुभव, अध्ययन,

अभ्यास और परिश्रम से विकसित करना और चमकाना होता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उन ऊँचाइयों को भी नहीं छू पाता जिन्हें छू लोना एक अच्छे साहित्यकार के लिए ज़रूरी होता है।

पहली चीज़, जिसे मैंने अपने जीवन में सीखा, वह है भाषा पर अधिकार। साहित्यकार चाहे वह कवि हो अथवा किसी अन्य विधा में लिखने वाला क़लमकार, उसकी पहली और आख़िरी चल संपत्ति मात्र भाषा और केवल भाषा है। भाषा ही उसक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। यदि भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार नहीं है तब न तो वह अपने साथ न्याय कर सकता है और न अपनी रचना के साथ ही। उसे साहित्यकार के स्तर पर अपने विचारों और अनुभवों को अधिक-से-अधिक उपयुक्त एवं प्रभावशाली शब्दों में ढालना होता है। यदि कोई साहित्यकार भाषा के प्रति सावधान नहीं है तो उसका अपने लक्ष्य तक पहुँचना भी संभव नहीं है।

शब्द को ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक माना गया है। शताब्दियों पुरानी यह धारणा कोई यों ही नहीं बन गई होगी। वास्तविकता यह है कि शब्द में प्रभाव डालने की असीम संभावनाएँ छिपी होती हैं। कवि और साहित्यकार कुछ और नहीं करता, वह इन्हीं संभावनाओं का पता लगाता है और शब्दों का प्रयोग ऐसी कलात्मकता से करता है कि वे अपनी अधिक-से-अधिक शक्ति के साथ सुनने या पढ़नेवाले को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। क़लमकार के पास उसकी सबसे बड़ी ताक़त शब्द या भाषा ही है। देखना यह होता है कि कौन इसका कैसे प्रयोग करता है।

शब्द सबके पास हैं। बोलते सब हैं। लेकिन बाज़ार और व्यवसाय की भाषा और साहित्य की भाषा में अंतर होता है। शब्दों में अंतर न भी हो, तो उन्हें प्रयोग करने में तो अवश्य ही अंतर होता है। साहित्यकार की सबसे बड़ी समस्या यही होती है कि जो प्रतिक्रया, अनुभव, विचार या विषय-वस्तु उसके मस्तिष्क में है, उसे उपयुक्त से उपयुक्त शब्दों में व्यक्त करने में वह कैसे सफल हों?

मैं उस नए ग़ज़लकार से भी, जो अभी-अभी मुझसे ग़ज़ल की विधा पर चर्चा कर रहा था और उस कहानीकार से भी जो अपनी रचनात्मक क्षमता के भरोसे पर कहानी लिखकर लाया था, अपने अनुभव के आधार पर कुछ बातें कहना चाहता हूँ–

सर्वप्रथम वे अपना विश्लेषण करें। निष्पक्ष होकर यह पता लगाएँ कि रचनात्मकता उनके स्वभाव में है या नहीं है। वे अपनी कल्पनाशक्ति से वैसे अद्‌भुत काम ले सकते हैं या नहीं, जिन तक सामान्य जन की पहुँच नहीं होती। वे अपने आपसे एक बार नहीं, बार-बार पूछें कि क्या वास्तव में उनके भीतर कोई चीज़ शब्दों के रूप में ढलकर बाहर निकलने के लिए छटपटा रही है? वे केवल ख्याति, नाम और सम्मान के लिए साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण करने की मनोवैज्ञानिक लालसा से ग्रस्त तो नहीं हैं। यदि इन सब प्रश्नों का उत्तर लेखन-कार्य के समर्थन में मिलता है तो मेरा दूसरा बड़ा अनुरोध यह है कि वे स्वयं सर्वेक्षण करें और यह पता लगाएँ कि उनकी मौलिक रुचि साहित्य की किस या किन-किन विधाओं में है। साहित्य में अपना कोलंबस आप बनना होता है। जो साहित्यकार प्रारंभिक काल में पाठकों या श्रोताओं की प्रशंसाओं को अपने लिए प्रमाण मान लेते हैं और अपनी जाँच स्वयं नहीं कर पाते, प्रायः भ्रमित होकर रास्ते से भटक जाते

 ISSN 0975-735X

हैं। सच्चे साहित्यकार को अपना आलोचक स्वयं बनना पड़ता है। यदि वह अपना सच्चा आलोचक नहीं बन पाता तो सच्चा लेखक भी नहीं बन पाएगा।

आपमें रचनात्मक स्वभाव है तो उसे भाषा की समझ और ज्ञान से पैना बनाना आपका सबसे पहला दायित्व होना चाहिए। जितना अधिक ज्ञान आपके पास होगा, जितनी सशक्त भाषा आपकी मुट्ठी में होगी, उतनी ही आपकी मंज़िल आसान होती जाएगी। सदैव यह बात ध्यान में रखिए कि जीवन असीम है। मनुष्य को उसके सामनेवाले आकार से नापा जा सकता है। इसके लिए किसी विशेष योग्यता की ज़रूरत नहीं है। मनुष्य का अंतर ब्रह्मांड की अनदेखी दुनियाओं की तरह है। उसे पाने के लिए प्रतिभा, ज्ञान और अनुभव तीनों की आवश्यकता होती है। साहित्यकार के रूप में जब आप लेखन के क्षेत्र में आते हैं, तो आपका समूचा सरोकार मनुष्य, उसके जीवन और समाज से ही होता है। आप अपने युग को, अपने युग के आदमी को और समाज को कितना समझ रहे हैं? इन सबके संबंध में आपका ज्ञान कितना है? यह सब प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उत्तर साहित्यकार के स्तर पर आपके पास होना चाहिए।

मैं एक बार फिर आपसे आग्रह करना चाहता हूँ कि प्रकृति से जो रचनात्मक स्वभाव आपको मिला है, केवल उसी पर निर्भर मत रहिए। पहले भाषा को अपने नियंत्रण में लें, वही आपकी पूँजी है; फिर अध्ययन और अभ्यास को वैसा ही महत्त्व दें, जो महत्त्व जीवित रहने के लिए भोजन का है। भाषा, ज्ञान, अध्ययन और अभ्यास– ये चार सूत्र हैं, जिनमें से किसी एक की भी अनदेखी नहीं की जा सकती।

एक सामान्य प्रवृत्ति यह है कि कवि, काव्य-पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ और नहीं पढ़ना चाहता; ग़ज़लकार, ग़ज़ल-संग्रहों या प्रकाशित-अप्रकाशित ग़ज़ल-सामग्री के अतिरिक्त कुछ और पढ़ने से बचता है; कहानीकार कहानियाँ ही और व्यंग्यकार व्यंग्य साहित्य के अध्ययन तक ही स्वयं को सीमित रखना चाहता है। क्षमा कीजिए, यह वही आधे-अधूरे आदमी का दृष्टिकोण है, जिसकी यहाँ चर्चा की गई है और जो औद्योगिक सभ्यता के साथ तेज़ी से विकसित हुआ। यह दृष्टिकोण जीवन के अन्य क्षेत्रों में तो चल सकता है, किंतु साहित्य में बिलकुल नहीं चल सकता।

साहित्यकार अथवा लेखक के रूप में आपके लिए हर विषय का अध्ययन अपनी क्षमता और समय के अनुसार नितांत आवश्यक है। जितना अध्ययन बढ़ता है, सोच का क्षितिज भी उतना ही बढ़ता है। कम लिखिए, ज़्यादा पढ़िए। यह मेरा स्लोगन है और मेरा अनुभव भी।

कृपया साहित्य के साथ संपूर्ण आदमी की तरह व्यवहार कीजिए, आधे-अधूरे आदमी की तरह नहीं।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

आलेख-संबंधी दिशा-निर्देश

* अपना आलेख 'शोध दिशा' की ईमेल Shodhdisha@gmail.com पर भेजें।
* आलेख कृतिदेव-10, 14 पॉइंट अथवा मंगल फॉन्ट में टाइप हो।
* आलेख वर्ड फाइल तथा पीडीएफ फाइल दोनों में भेजना है।
* आलेख अधिकतम 3000 शब्दों में हो।
* आपसे आग्रह है कि आलेख भेजने से पूर्व यदि एक बार आप स्वयं उसे पढ़ लेंगे तो टाइप के कारण होने वाली त्रुटियाँ कम हो जाएँगी।
* आलेख में लेखक का नाम व पद, संदर्भ, लेखक का डाक का पूरा पता (पिनकोड सहित), मोबाइल नंबर तथा ईमेल स्पष्ट रूप से लिखा जाए।
* हमारे लिए राष्ट्र सर्वोपरि है अतः राष्ट्रविरोधी भावनाओं से संबंधित आलेख को पत्रिका में न भेजें।
* आलेख स्वीकृति संबंधी सूचना आपको ईमेल द्वारा दी जाएगी। यदि एक सप्ताह के पश्चात आपको स्वीकृति संबंधी सूचना प्राप्त नहीं होती है तो कार्यालय में संपर्क कर सकते हैं।
* अन्य सूचनाओं के लिए मो॰नं॰ 9557746346 पर डॉ॰ अशोककुमार से संपर्क कीजिए।
* शुल्क राशि शोध दिशा के बैंक ऑफ बड़ौदा के निम्नलिखत खाता संख्या में ही भेजिए–

SHODH DISHA
BANK OF BARODA, BIJNOR
A/C No. 27090100001456
IFSC BARB0BLYBIJ
(यहाँ दोनों बी के मध्य 0 को शून्य पढ़ें)

 ISSN 0975-735X

अनुक्रम

साठोत्तरी हिंदी साहित्य : महिला कहानीकार/ **डॉ॰ शिल्पा दादाराव जीवरग** 15
साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक चेतना के विविध आयाम/ **प्रा॰ डॉ॰ संदीप जोतिराम किर्दत** 20
साठोत्तरी कविता में वैचारिकता/ **डॉ॰ भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे** 27
समकालीन हिंदी कविता : विविध आयाम/ **डॉ॰ सरोज पाटील** 32
वर्तमान काव्य में युग चेतना/ **प्रा॰ डॉ॰ शिवाजी उत्तम चवरे, डी॰ लिट्** 39
साठोत्तरी हिंदी साहित्य का सशक्त प्रवाह : हिंदी दलित कविता/ **डॉ॰ तांबोळी एस॰बी॰** 45
साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना/ **प्रा॰ नवनाथ जगताप** 53
हिंदी सिनेमा में लोकसंस्कृति/ **डॉ॰ विनीता रानी** 57
मणि मधुकर के नाटकों में लोकगीत प्रणाली प्रयोग/ **प्रा॰ रुकसाना अल्ताफ पठाण** 63
साठोत्तरी उपन्यासों में पारिवारिक जीवनमूल्यों के नए प्रतिमान/ **कु॰ मेघा संभाजी तोडकर** 68
'मैं पायल' उपन्यास में किन्नर जीवन की त्रासदी और समाज की मूल्यहीनता/ **प्रवीण चौगुले** 74
साठोत्तरी काव्य में प्रगतिशील चेतना/ **डॉ॰ सविता शिवलिंग मेनकुदळे** 79
साठोत्तरी हिंदी कहानियों में नारी/ **डॉ॰ वर्षा गायकवाड** 86
जयश्री रॉय की कहानियों में चित्रित नारी/ **डॉ॰ संजय पिराजी चिंदगे** 89
साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी-विमर्श/ **डॉ॰ भारत श्रीमंत खिलारे** 93
साठोत्तरी कहानी के विविध आयाम/ **डॉ॰ शहनाज महेमुदशा सय्यद** 100
साठोत्तरी हिंदी गजलों में सामाजिकता/ **डॉ॰ विनोद प्रभाकर चन्नाळे** 106
अज्ञेय के काव्य साहित्य का शिल्प विधान/ **प्रा॰ कैलास बबन माने** 111
साठोत्तरी हिंदी दलित आत्मकथा के विविध आयाम/ **डॉ॰ गोरखनाथ किसन किर्दत** 118
'अपना गाँव' : हाशिए के समाज की चेतना/ **डॉ॰ बालाजी वामनराव गायकवाड** 122
रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण/ **प्रा॰ वाघमारे के॰ एच॰** 129
वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में व्यक्त सामाजिक समस्याएँ/ **डॉ॰ उत्तम लक्ष्मण थोरात** 137
साठोत्तरी हिंदी कविता में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रासंगिकता (नारी के विशेष संदर्भ में)/ **डॉ॰ आर॰पी॰ भोसले** 141
अलका सरावगी के 'शेष कादंबरी' उपन्यास में चित्रित नारी विमर्श/ **जयश्री पांडुरंग चव्हाण, डॉ॰ शहनाज महेमुदशा सय्यद** 145
Attitude towards English language in the students preparing for MPSC exams in Kolhapur/ **Shriram Abhishek Dadasaheb** 150
Reflection of Gender in Popular Culture and Literature: A Feminist Perspective/ **Dr. Amogh A.M.** 155

Reflection And Elucidation Of Naturalitic Perspectives In Louise Erdrich's The Round House/ **D. A. Ghanawat, Dr. U. N. Tathe** 160
Importance Of Modern Language Laboratory In English Language Learning Process Iin India/ **Dr. DattatrayBalasoThorbole** 166
Effects of Environment on Workers in 'And a Threefold Cord'/ **Dhanshri Shashikant Bhadalkar** 173
Balram, a Subaltern in AravindAdiga'sThe White Tiger/ **Mrs.Gaikwad Rajashri Dattatraya** 176
Discourse of Individuality and Ethnic Hostility in Pankaj Mishra's The Romantics/ **Dr. Jahangir Abbas Mulani, Mr. AnandraoTukaram Khade** 181
Theme of Discrimination in Jessie RedmonFauset's Comedy: American Style/ **Kathare Ganaraj Narayan** 186
Technology and its negative impact on human life in as seen in Manjula Padmanabhan's "Harvest"/ **Madhuri Shrirang Patil.** 191
Film Literature: An Emerging Genre of Contemporary Literature/ **Mr. Mahesh Krishna Mali** 194
Science Fiction/ **Manisha Bajarang Sutar** 198
The transitional period of COVID and Pros and Cons of Online Teaching-Learning Methods/ **Miss Mrunal Rajvivek Mohite** 201
Sexual exploitation of women reflected in a short story Caramel by Tayari Jones/ **Mrs. Patil Vidya Vyankatrao** 206
A Protest of Repulsive Dictator Regime in Gabriel Garcia Marquez's The Autumn of the Patriarch/ **Mrs.Patil Latika Subhash, Dr. Subhangi N. Jarandikar** 209
Protest of the Working Class in Maxim Gorky's The Mother/ **Sathe Dhananjay Tukaram** 214
Socio-Historical Analysis of Anuradha Roy's – All the Lives We Never Lived/ **Mr. Shirsat FulchandSugriv** 219
`Celebration Of Black Female Power Through The Artistic Blending Of Past And Presentin Gloria Naylor's Mama Day/ **Dr. Surekha Sandeep Patil** 223
Teenage psychology depicted in Rabindranath Tagore's Short story 'Home Coming'/ **Dr. Vaishali Vasant Joshi** 229
NgugiwaThiong'o's short-story "Minutes of Glory": A Comment on African Womens'Subjugation/ **Dr.Vidya Desai** 232
Spy Craft in Ian Fleming's From Russia with Love/ **Dr. Sandhya Sunil Potdar, Dr. Jahangir A. Mulani** 235
Historical analysis of the D.A.V. Institution in Punjab (1886-1930)/ **Dr. Jaspal Singh, Pardeep** 239
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मजदूरवर्ग (1900-47)/ **राकेश कुमार** 244
डॉ॰ भीमराव अंबेडकर का स्त्री-चिंतन/ **सरोज जानू** 248
मानव-धर्म कबीर/**डॉ॰ अनीता** 252

 ISSN 0975-735X

साठोत्तरी हिंदी साहित्य : महिला कहानीकार

साठोत्तरी हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं की कहानियों का विश्लेषण

डॉ॰ शिल्पा दादाराव जीवरग
एसोसिएट प्रोफेसर
पंडित जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
शिवाजीनगर, औरंगाबाद-431001

कहानी हिंदी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इस विधा ने अपने प्रारंभकाल से अब तक बहुत सारे उतार-चढ़ाव देखे हैं। आजादी के बाद कहानी साहित्य नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, समांतर कहानी, साठोत्तरी कहानी आदि विभिन्न संज्ञा धारण कर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से वैविध्यशाली बनी है। कहानी की यात्रा में स्त्री-विमर्श अलग-अलग दौर की महिला कथाकारों द्वारा अलग-अलग दृष्टियों से देखा, जाँचा-परखा गया और फिर दधि से घृत के समान निकला स्त्री का वास्तविक स्वरूप।

आज हम साठोत्तरी हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं की कहानियों का विश्लेषण देखेंगे। इस दौर की कहानियों में राष्ट्रीय भावनाएँ, यथार्थ के मर्मस्पर्शी संघर्ष, प्रगतिशीलता अधिक है। कहीं पर पारिवारिक जीवन की झाँकियाँ, जीवन के प्रति आस्था, मानवीय वेदनाएँ, मानवी संबंधों की खोज, गहराइयों में गूँजते अनेकों प्रश्न देखने को मिलते हैं।

साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। यदि किसी दौर के सामाजिक, राजनीतिक जीवन का अध्ययन करना हो अथवा उसके संबंध में जानना हो तो उस दौर का साहित्य हमारी मदद कर सकता है। एक अच्छा साहित्य मनुष्य जीवन तथा समाज की उन्नति, उत्थान तथा सुचरित्र के निर्माण में सहायक होता है। हिंदी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत के अवधी, मागधी, अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य को हिंदी का आरंभिक साहित्य माना जाता है। हिंदी साहित्य ने अपनी शुरुआत लोकभाषा कविता के माध्यम से की और गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है।

हिंदी कहानियों का इतिहास भारत में सदियों पुराना है। आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ 20वीं सदी में हुआ। पिछले एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आंचलिकता आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। आजादी के बाद हिंदी कहानी को नया संस्कार देनेवाले कहानीकारों ने कहानी को नई कहानी के नाम से अभिहित किया। दुनियाभर की संस्कृतियों ने हमेशा से ही विश्वास परंपराओं और इतिहास को भविष्य की पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए कथाओं, कहानियों का उपयोग किया; क्योंकि कहानियाँ कल्पनाशीलता को बढ़ाती हैं। कहानी कहने और सुननेवाले के बीच समझ स्थापित करने के लिए सेतू का काम करती है। कहानियों के माध्यम से हम जुनून, भय,

उदासी, कठिनाइयों और खुशियों को साझा करते हैं और हम अन्य लोगों के साथ सामान्य आधार पाते हैं ताकि हम उनसे जुड़ सकें और उनसे संवाद कर सकें। कहानियाँ सार्वभौमिक है, अर्थ और उद्देश्य है जो हमें खुद को बेहतर समझने में मदद करते है और दूसरों के साथ समानता पाते हैं। कहानी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करना और कथा की गति को विकसित करना। कहानी हिंदी में गद्य लेखन की एक विद्या है।

साठोत्तरी महिला कहानीकारों की कहानियाँ

कहानी साहित्य के जन्म से ही हिंदी में महिला लेखिकाएँ कहानी लेखन कर रही थी। लेखिका के रूप में बंग महिला का नाम चिरस्मरणीय है–

(1) **श्रीमती राजेंद्रबाला**–आरंभ में इन्होंने बंगला कहानियों के हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किए। बाद में कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखीं जिनमें 'दुलाईवाली' प्रसिद्ध है।

(2) **सुभद्राकुमारी चौहान**–सुभद्राकुमारी चौहान अपने युग की चर्चित कहानीकार रही हैं। पंद्रह वर्ष की आयु से ही आप कविता लिखती रहीं। राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेती रहीं। अपनी कहानियों में सरल शैली के द्वारा जीवन के मधुरतम भावुक क्षणों का चित्रण वे करती हैं। इनकी कहानियों में राष्ट्रीय भावनाएँ आदर्श और यथार्थ के मर्मस्पर्शी संघर्षों पर आधारित है। समसामायिक राष्ट्र की मानसिक स्थिति का पूर्ण परिचय इनकी कहानियों द्वारा होता है। इनके दो कहानी-संग्रह 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' प्रकाशित हुए हैं। नारी हृदय की कोमलता और उसके मार्मिक भाव पक्षों को नितांत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करना सुभद्राजी की शैली का मुख्य आधार है।

(3) **सुमित्राकुमारी सिन्हा**–इनकी कहानियों में प्रगतिशीलता अधिक है। इनकी कहानियों में पति, संयुक्त परिवार, सामाजिक आचार संहिता आदि के नीचे सदियों से पिसती नारी का क्रंदन भी है और उसके विद्रोह की क्षुब्धवादी भी है। इनके दो कहानी-संग्रह 'अचल सुहाग' तथा 'वर्षगाँठ' प्रकाशित हो चुके हैं।

(4) **उषादेवी मित्रा**–इनकी कहानियों में कुछ भिन्नता है, जैसे–रोमानी, जीवन की घटनाओं में अनुभूति का एक सर्वथा नया बिंदू ढूँढ निकालना और समस्त घटना को नया अनुभव आपकी कहानी की विशेषता है। आपकी कहानियाँ सुलभ कोमलता से द्रवित हैं। इनकी 15 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'संध्या', 'पूर्वा', 'रात की रानी' और 'मेघमल्हार' इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों में कुछ भिन्नता है।

(5) **कमला चौधरी**–इनकी कहानियों का हिंदी कथासाहित्य के विकास में बड़ा योग रहा है। इनकी कहानियों में पारिवारिक जीवन की झाँकियाँ और छोटी-छोटी घटनाओं का चित्रण हुआ है। कहानियों में जीवन के प्रति आस्था व्यक्त हुई है। इनकी रचनाओं में सहज मानवीय वेदनाएँ व्यक्त हुई हैं, बहुत ही गंभीर होकर व्यक्त हुई हैं। 'पिकनिक' और 'यात्रा' कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियाँ प्रायः इसी मानसिक स्थिति में अपना चिह्न अंकित करती है। अन्य कहानी संग्रह–'उन्माद', 'प्रसादी कमंडल' हैं।

(6) **रजनी पनिक्कर**–इनकी कहानियाँ 'मोमबत्ती', 'मन की सलवटें' 'जिंदगी' और 'गुलाब के फूल', 'जिंदगी के काँटे' और 'नारी नहीं नारी का विज्ञापन' प्रसिद्ध है। इनकी कहानी में उखड़ी हुई नारी को आधार बनाया गया है, जिसका प्रेम प्रायः कुंठित है। यह नारी परिवार में वो चाहे नौकरी पेशा हो या चाहे अपने परिवेश से कहीं हो मानवी संबंधों की खोज में अपने को

अकेला पाती है।

सन् 1965 के बाद उभरती प्रतिभाओं में शशिप्रभा शास्त्री, मालती जोशी, मेहरून्निसा परवेज, सुधा अरोड़ा, सिम्मी हर्षिता, माया प्रधान, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, निरुपमा सेवती, दीप्ति खंडेलवाल, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, मणिका मोहिनी, सूर्यबाला, प्रतिभा वर्मा आदि चर्चित कहानी लेखिकाएँ हैं।

साठोत्तरी कहानीकारों की कहानियों का कथ्य और चरित्रमत विश्लेषण

(1) 'गहराइयों में गूँजते प्रश्न' इस कहानी की लेखिका शशिप्रभा शास्त्री जी हैं। 'गहराइयों में गूँजते प्रश्न' सेक्स के धरातल पर लिखी गई कहानी है। रूप-सौंदर्य-विहीन नारी के अंदर करवट लेने वाले प्यार के सपनों और पुरुष की चाहत की कहानी है। इसमें प्यार और चाह के दमन से उत्पन्न उस भयंकर यौन विकृति का अंकन है जो होमोसैक्सुएलिटी की लैस्वियन्स प्रवृत्ति को जन्म देती है। पति द्वारा परित्यक्ता जया अपनी समस्त कुरूपता को कारण मान अपनी स्थिति से पूर्ण समझौता नहीं कर पाती। किसी भी विवाहित स्त्री को देख उसके अंदर की बेचैनियाँ असंख्य गुणित होकर उभरने लगती हैं। कालेज के ड्रामा से वह उमा को पुरुष का अभिनय करते देख मुग्ध होती है और यह लैस्वियन्स प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो उठती है कि कोई भी व्यवधान इसे मान्य नहीं। होस्टल में डे स्कालर्स के आने की पाबंदी लगने पर वे बौखला उठती हैं और आगरा चली जाती हैं।

(2) 'पाँचवीं कब्र' मेहरुन्निसा परवेज की कहानी है। मृत्यु की भयंकर त्रासदी रहमान के घर त्योहार-सी खुशियाँ लाती हैं। रहमान की लड़ाई अपने स्तर की है वह कोई चंगेज खाँ या हिटलर नहीं है, जिसमें राज्यविस्तार की अदम्य लालसा ही मृत्यु के हादसे को खुशी कहती है। उसका संघर्ष अपने परिवार की जिजीविषा का है। हर खुदाई में उसे बीस रुपए मिलते हैं। पाँच कब्रों की खुदाई पर तो बेटी भी ब्याही जा सकती है, जिसके पहले ही दिन चढ़े हुए हैं। कफन की चादरों से घर के कपड़े बनते हैं और चढ़े दिनोंवाली जवान बेटी घर पर बैठी हुई हो तो उसका दहेज भी बन सकता है। क्या अंतर पड़ता है किसी के बच्चे का अकीका हो, मिलाद हो, मृत्यु हो या शादी हो। रहमान को तो हर ऐलान के पैसे मिलते हैं। हर ऐलान के पश्चात घर में गोश्त पकता है और घर भर चहक उठता है।

(3) 'गहरी नींद' शिवानी की कहानी है। भ्रष्टाचार-रिश्वत, सेक्स एवं काला बाजार 'गहरी नींद' होम फॉर फालेन 'वीमेन की अपराधिनियों के विस्तृत विवरण के साथ-साथ भ्रष्टाचार के अनेक स्तरों का पर्दाफाश करती है। यह भ्रष्टाचार कहीं रिश्वत के स्तर का है, कहीं सेक्स के स्तर का है और कहीं काला बाजार के स्तर का है। रिश्वत के स्तर का भ्रष्टाचार कश्मीर के रवींद्र पंडित और उसकी दूसरी पत्नी में देखा जा सकता है। रवींद्र पंडित के विषय में शिवानी जी लिखती हैं, 'घूस लेने में उसे कोई पार न पा सकता था। बड़े-बड़े नेताओं विद्रोही दल के कीमती यजमानों का वह मात्र पुरोहित था। उसके ओहदे की आड़ में लाखों की चरस और गाँजा एक सीमा से दूसरी सीमा को लाँघ जाता था।' अख्तरी भी अपने चरस-गाँजे का व्यापार खुले रूप में करने के लिए रवींद्र पंडित को शरीर की रिश्वत देती है। रवींद्र पंडित की दूसरी पत्नी पुलिस के संतरियों को अपनी 'गृहस्थी की कवायद' में जाती रहती है। कोई मटर छीलता, कोई बाग सींचता, कोई बच्चों को घुमाता और कोई गट्ठर के गट्ठर कपड़े धोता। प्रत्येक कुशल पुलिस अफसर की भाँति उसने पति के उत्कोच विभाग का पद स्वयं ग्रहण कर लिया था। रवींद्र पंडित

को एक के पश्चात् दूसरी और तीसरी पत्नी बासी लगने लगती है।

अख्तरी का पति छूटा हुआ गुंडा है और अख्तरी के जुर्म वट की शाखाओं की भाँति फैले हैं। वह अंधा भिखारी बन जाता और अख्तरी उसकी लाठी थामे गोंडा, बस्ती, गोरखपुर, नेपाल, रोहतक अपने लहंगे के अद्‌भुत घरों में अफीम गाँजा छिपा-छिपाकर पहुँचाती है। यह काला बाजार रवींद्र पंडित जैसे रिश्वतखोर भ्रष्ट अधिकारियों की छाया में पनपता है।

(4) निरूपमा सेवती की 'टुच्चा' कहानी में संबंधहीनता का चित्रण है। निरूपमा सेवती की 'टुच्चा' संबंधहीनता में जी रही एक बेचैन युवती के निरर्थक हो चुके संघर्ष की कहानी है। संघर्ष की यह निरर्थकता उसमें खीझ, झुँझलाहट और क्रोध की अपेक्षा दयनीयता भरती है; क्योंकि उसे अब मालूम है कि कहीं कुछ बदल नहीं सकता। उसमें स्वीकृतियों की समझदारी आ चुकी है। वह जानती है कि छोटे भाई-बहन आज समर्थ हो चुके हैं। उन्हें अब दीदी से कोई मतलब नहीं। उस दिन गलती से ज्यादा गोलियाँ खा ली थीं। सब लोग बेतरह घबरा उठें। डाक्टर ने इंजेक्शन दिया था, लेकिन वह होश में नहीं आ रही थी, इसलिए डाक्टर की तसल्ली के बावजूद कोई आश्वस्त नहीं था। बहन भाई से कह रही थी, 'दीदी की पासबुक वगैरह कहाँ रहती हैं, यह भी कुछ मालूम है? अब कुछ हो गया तो?' उखड़े होश में उसने सुना था। ऐसी बातें वह बहुत जल्दी भुला देती है। वह भाई-बहन से जुड़े रहने के लिए अपने को विवश पाती है। पिता की मृत्यु के पश्चात संपूर्ण परिवार का पोषण करनेवाली युवती की परिवार में कोई अपेक्षा नहीं, सम्मान नहीं, सुरक्षा नहीं और अब आवश्यकता भी नहीं। 'बी' 'एफ' 'बॉस' आदि पुरुषों की वह प्रेयसी हो सकती है। पर वह प्रेमी नहीं, बॉस है। उसका संबंध मात्र उसके शरीर और अपने मनोरंजन से है।

(5) ममता कालिया की कहानी 'राएवाली' में पारिवारिक धरातल पर शोषण का चित्रण किया गया है। 'राएवाली' में शोषण के अनेक चित्र मिलते हैं। कालिंदी की सास बताती है, 'मैं ग्यारह साल की ब्याही थी। मेरी सास खड़े से पैर दबवाती थी सारी-सारी रात। ये जो अगले दाँत टूटे हैं, तभी के हैं। खड़ी-खड़ी एक बख्त उँघ गई। सास से दूसरी टाँग वह कसकर चलाई कि गिरी सामने के चौखट पे धम्म से। ऊपर के चार दाँत मगज में चढ़ गए।' यही औरत अपनी बहू का शारीरिक एवं मानसिक शोषण किया करती है। इसने बहू के लिए टुकड़ा-टुकड़ा नींद, रात-भर दबवाने, दिनभर काम करने और पति से अलग करने की यातनाएँ सँजोई हैं। तीसरी शोषक कालिंदी की जेठानी भी कम नहीं। यह कालिंदी की चीजों सेश्रृंगार कर कहा करती है, 'देखो हम पे कित्ती सजती है, तुम्हारी ये मामूली रकम। पहनने का ढब हो तो ठीकरे भी जवाहर।' कहानी का चतुर्थ शोषक मोहन है, जो पत्नी को परिवार की दासी बना अपनी हाजत वेश्याओं के यहाँ रफा किया करता है। उसकी मर्दानगी पत्नी को मारने, श्रवण कुमार बनने और कसैले बोल बोलने में है। यहाँ तक कि पत्नी को माँ की मृत्यु पर भी मायके नहीं जाने देता।

चित्रित कहानियों के निष्कर्ष

(1) 'गहराइयों में गूँजते प्रश्न' कहानी में लैस्वियन्स प्रवृत्ति और उसके मूल कारण का मनोविज्ञान प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुतिकरण में कहानी एकदम साधारण कोटि की है।

(2) 'पाँचवी कब्र' अस्तित्व के संघर्ष और मानवीय जड़ता का सशक्त चित्र उपस्थित करती है। वातावरण की सजीवता कथानक को पुष्ट आधार देती है। भाषा के कथ्यानुरूप उर्दू के शब्द आ गए हैं।

(3) 'गहरी नींद' अपने काव्य और संवेदना में भ्रष्टाचार के भिन्न रूप लिए है। पात्र पुरुष सुदर्शन है। भाषा उपमाओं और मुहावरों से जड़ी हुई है।

(4) महानगरीय जीवन की देन संबंधहीनता को स्वीकार न पानेवाली युवती का अस्तित्व गत संघर्ष ही यहाँ मुख्यत: उभरा है। नैतिकता मर चुकी है। कथानक मन:स्थिति प्रधान है। व्यक्ति आइडेंटिटी-रहित है। वातावरण महानगरीय है। भाषा में नवीन प्रयोग है। शैली स्मृतिपूरक है।

(5) 'राएवाली' समाज का स्त्री के प्रति उपभोगवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। 'राएवाली' के ससुराल के संदर्भ में स्त्री की अवस्था का चित्रण कहानी का फलक अत्यंत व्यापक बना देता है। व्यंग्य एवं भाषागत मुहावरा ममता कालिया की अद्वितीय विशेषता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ माधव सोनटक्के, विकास प्रकाशन
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएँ, डॉ॰ विजया वारद, (रागा) विकास प्रकाशन
4. साठोत्तर महिला कहानीकार, डॉ॰ मधु संधु

मो॰ 8275322794
Email : silpajivrag@gmail.com

साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक चेतना के विविध आयाम

प्रा॰ डॉ॰ संदीप जोतिराम किर्दत
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा

साठोत्तरी कविता का प्रारंभ जगदीश चतुर्वेदी दवारा संपादित 'प्रारंभ' से माना जाता है। इस संदर्भ में दो राय नहीं है कि साठोत्तरी हिंदी कविता परिवर्तन की कविता है। यह कविता विभिन्न काव्यधाराओं से होकर अग्रसर हुई है। साठोत्तरी कविता की अपनी खास विशेषताएँ हैं। विशेषत: साठोत्तरी कविता लोकतंत्रीय व्यवस्था में भी देश तथा देशवासियों की जो दयनीय स्थिति दिखाई देती थी उसका यथार्थ चित्रण बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत करती है। सामाजिक एवं राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थिति में हुआ मूल्य-विघटन इन कवियों का रचना विषय रहा। समाज से प्रतिबद्ध होकर कविता लिखनेवाले साठोत्तरी कवियों ने समाज विकास में अवरोध खड़े करनेवाली इकाईयों पर उँगली रखकर पाठकों को सचेत किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसमें संदेह नहीं है कि समाज विकास में सरकार की मुख्य भूमिका रहती है। पर सरकार जिन जन-प्रतिनिधियों से बनती है उनकी मनोभूमिका में हुआ अंतर और उस कारण से निर्माण हुए प्रश्न साठोत्तरी कवियों की दृष्टि से चिंता के विषय रहे हैं। विवेच्य कवियों ने देखा कि भ्रष्ट व्यवस्था तथा विषम आर्थिक व्यवस्था से निर्माण हुए प्रश्नों से आम आदमी की स्थिति दयनीय हुई है। समाज में एक बेचैनी तथा निराशा है। साठोत्तरी कवियों ने सामाजिक प्रश्नों की जड़ एवं समाधान संबंधी बेबाकी से लिखकर जनता को चेतित करने का कार्य किया है।

साठोत्तरी कविता में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम

साठोत्तरी कवियों ने परिवेश से प्रतिबद्ध होकर देश की सामाजिक स्थिति का चित्रण अधिक मात्रा में किया है। साठोत्तरी कवियों के काव्य में सामाजिक चेतना संबंधी जो विभिन्न आयाम नजर आते हैं वे इस तरह हैं–

भूख एवं गरीबी का चित्रण

स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय लोगों ने विभिन्न क्षेत्र में बदलाव की अपेक्षा की थी। मात्र आजादी मिलकर पंद्रह-बीस साल हुए तो भी देश के लोगों की स्थिति में अपेक्षित अंतर नहीं दिखाई देता और यह यथार्थ साठोत्तरी कवियों की कलम से नजरअंदाज नहीं हुआ। गरीब को दो टूक का खान-पान भी नहीं मिलता था। इस काल का आम आदमी आर्थिक स्थिति से बेहाल नजर आता है। आम आदमी का जीवन भूख मिटाने के प्रयास में विवश, मजबूर एवं दयनीय है। इस विद्रूप सामाजिक अवस्था का कड़वा सच बयान करने का साहस साठोत्तरी कवियों ने किया है। कवि जगूड़ी की 'ईश्वर और आदमी की बातचीत' कविता का आम आदमी पंचवार्षिक योजनाओं पर टिप्पणी करता हुआ ईश्वर से सवाल करता हैं कि मैंने प्रश्न नहीं किया फिर भी मैं भूखा हूँ। जो मुझे पाँचवीं योजना ने नहीं दिया। तो तुम कैसे दे सकते हो? मेरे पास मकान भी नहीं

 ISSN 0975-735X

है? तुम ही बताओ मैं कहा हूँ? भूखे, गरीब, शोषित, बेरोजगार तथा आवासहीन बेहाल लोगों की दशा-संबंधी कवि जगूड़ी का कथन यथार्थ लगता है–

बच्चा पैदा होने का मतलब है
फिर एक आदमी खतरे में पड़ा।[1]

कवि बलदेव वंशी की 'खुले दरवाजे वाली खाली झोपड़ियाँ' कविता भी रोजी-रोटी और असुरक्षा की समस्या को अधोरेखित करती है। गोरख पांडेय की 'उठो मेरे देश' कविता देश की यथार्थ स्थिति की तस्वीर है। किसान श्रम तो करता है पर उसकी उपज पर कई लोग अधिकार जताते हैं। पूरा इलाका भूखा, अधनंगा, बेघर और बेइज्जत दृष्टिगोचर होता है। व्यापारी के गोदाम अनाज से भरे रहते हैं पर वे भूखे देश को तड़पाते रहते हैं। जनतंत्र के नेता भाषणबाजी और नारेबाजी में माहिर हैं। उन्होंने खुद की गरीबी दूर की है, जनता की नहीं। इस देश में रोजी-रोटी तथा वेतन माँगनेवालों पर लाठियाँ चलाई जाती हैं तथा गोलियाँ दागी जाती हैं। परिणामत: आम आदमी आजादी और गुलामी के दिनों की तुलना करता है। गुलामी में अन्याय करनेवाले अपने तो नहीं थे इस विचार से उसे अपने लोगों की शोषक प्रवृत्ति बेचैन करती है। कवि अरुण कमल की 'असंवैधानिक मौत' नामक कविता मंगलेश डबराल की 'पहाड़ पर लालटेन' कविता भूख एवं गरीबी का कारण ढूँढती हैं। रामकुमार कृषक अपनी 'नीम की पत्तियाँ' नामक कविता में स्पष्टता से लिखते हैं कि भारत में गरीबी तथा दमन सब नीम की पत्तियों के समान है। हमारी व्यवस्था निर्धनों की चिंता नहीं करती। मात्र व्यवस्था गरीबी हटाने की घोषणा कर सत्ता हथियाती है। कवि सुदामाप्रसाद पांडे जी कृत 'कुत्ता', 'मेरा गाँव', 'जनतंत्र में सूर्योदय', 'रोटी और संसद', 'गाँव में कीर्तन', 'किस्सा जनतंत्र', 'आज मैं लड़ रहा हूँ' तथा 'प्रजातंत्र' कविता में भूख और गरीबी संबंधी व्यंग्य है और यह कविता व्यवस्था पर निशाना साधती परिलक्षित होती है–

सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए जनतंत्र में
सुबह सिर्फ चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।[2]

अत: कवि को लगता है कि अनाज के बारे में आत्मनिर्भरता के दावे झूठे हैं और हरितक्रांति का लाभ अधिकतर बड़े लोगों को हुआ है। परिणामत: हरित क्रांति का लाभ सर्वहारा तथा निम्न, मध्य-वर्ग को नहीं हुआ है। इस वर्ग को हरित क्रांति निरर्थक लगती है। कवि जगूड़ी कृत 'अनैतिक' में पेट और प्रजातंत्र के बीच पिसते आदमी का चित्रण मिलता है। 'परिवार की खाड़ी' नामक कविता में अभावग्रस्त असुरक्षित परिवार का भयावह चित्र दिखाई देता है। 'रात अब भी मौजूद है' कविता में कवि ने भूख, गरीबी, बेकारी, आवासहीनता, पूँजीवादी षड्यंत्रवाली व्यवस्था का चित्रण कर अँधेरे से मुक्ति के लिए क्रांतिरूपी सूरज के प्रति आशा प्रकट की है। साठोत्तरी कवि ने भूख एवं गरीबी का केवल यथार्थ चित्रण ही नहीं किया है बल्कि उसके कारण एवं समाधान भी प्रस्तुत किए हैं।

आवास की दुर्लभता

साठोत्तरी कवियों ने सरकार को आजादी के बाद भी अपने नागरिकों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में आए अपयश को विषय-सूत्र बनाकर काव्य सृजन किया है। कवियों ने आवासहीन लोगों की आधारहीन स्थिति का चित्रण कर लोगों को चेतित कराने का कार्य किया है। कवि सुदामाप्रसाद पांडे जी ने अपनी 'मकान' कविता में गलत आर्थिक नीतियों

के परिणामस्वरूप आवास की समस्या निर्मित हुई है ऐसा निष्कर्ष निकाला है। कवि जगूड़ी ने 'लड़के और सिपाही की बातचीत' कविता में इस सच का उद्घाटन किया है कि नगरों में आए लड़कों को मकान दिखाई देते हैं; पर 'अपना घर' नजर नहीं आता। नगर की सभ्यता में अपनत्व का अभाव और व्यावसायिकता दृष्टिगोचर होती है। कवि अरुण कमल अपनी 'हम यही रहते हैं' कविता में ठूँस-ठूँसकर, गंदगीभरे घरों में रहनेवाले लोगों का चित्रण करते हैं और आजादी की उपलब्धियों पर ही सवाल उठाते हैं। कवि शहरों में बढ़ती झुग्गी-झोपड़ियों का कारण गलत आर्थिक एवं राजकीय नीतियाँ मानते हैं। कवि अरुण कमल ने 'खुशबू रचते हैं हाथ' कविता में नालियों के पास अगरबत्ती बेचनेवाले मजदूरों का चित्रण किया है। कवि मंगलेश डबराल कृत 'सम्राज्ञी' कविता में यह दिखाया है कि हमारे नेतागण राजा-रानी जैसा जीवन जीते हैं। उनके कुत्ते आलीशान जगह में रहते हैं किंतु आम आदमी के भाग्य में छोटा-सा घर भी नहीं है। कवि रामकुमार कृषक आवास की दुर्लभता की पूरी जिम्मेदारी नेतागण तथा पूँजीपतियों के कंधे पर रखते हैं। उनके मतानुसार इस स्वतंत्र देश में आम आदमी फुटपाथ पर भी चैन की साँस नहीं ले सकता। वह फुटपाथ पर या अपनी झोपड़ी में भी भय के साए में रहने पर मजबूर है। उसे हमेशा झोपड़ी तोड़ने का डर सताता रहता है–

धरती नापे हीन पगों में किले कोठियाँ वाले लोग।
जिनका राज सुराज स्वप्न में भी उनके फुटपाथ नहीं।[3]

असुरक्षा की समस्या

आजादी के बाद देशवासियों ने सोचा था कि देश में अशांति एवं असुरक्षा के संदर्भ में चिंता नहीं रहेगी। पर साठोत्तरी कवियों ने देखा कि शांति एवं सुरक्षा के संदर्भ में भारत की स्थिति चिंताजनक है। साठोत्तरी कवियों ने विवेच्य समस्या संबंधी लोगों को जाग्रत किया है। कवि जगूड़ी की 'वक्तगत उड़ान' कविता में कवि ने स्पष्ट संकेत दिया है कि देश में शोषण, अन्याय, अत्याचार और खतरा दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है। कवि बलदेव वंशी जी की 'अभिमन्यु' कविता भी व्यवस्था रूपी कौरवों से शिकार आम जनता की अवस्था किस तरह चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु के समान हुई है इस यथार्थ स्थिति का बोध कराती है। 'उपनगर में वापसी' कविता में कवि बलदेव वंशी लिखते हैं–

कहाँ है न्याय, सुरक्षा कहाँ है?
मानवी उच्छवासों में समता कहाँ है?[4]

स्पष्ट है कि साठोत्तरी कवियों ने देश की सुरक्षा व्यवस्था तथा न्याय-व्यवस्था संबंधी ही आशंका प्रस्तुत की है। कवि चंद्रकांत देवताले कृत 'भूखंड तप रहा है' कविता देश के शोषित जन-साधारण की दयनीयता का ही वर्णन नहीं करती; तो वर्तमान दमनकारी अन्यायी तथा सत्ता के लिए षड्यंत्र रचानेवाली व्यवस्था का खुला दर्पण प्रस्तुत करती है। गजलकार रामकुमार कृषक की गजलें भूखे, शोषित, असुरक्षित तथा ऋणग्रस्त देशवासी की स्थिति बयान करती है। अत: कहना उचित होगा कि साठोत्तरी कवियों ने असुरक्षा की समस्या अधोरेखित करके समस्या का हल प्रस्तुत कराने का प्रयास किया है। विशेषत: राजनेताओं द्वारा धर्म का स्वार्थकेंद्रित उपयोग करने की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। राजनेताओं की धर्म-संप्रदाय से जुड़ी गंदी चाल-चलन के कारण समाज जीवन पर निरंतर असुरक्षा की छाया नजर आती है। जातीय, धार्मिक तथा प्रांतीय

भावनाओं को भड़काया जा रहा है। परिणामत: भारतीय मनुष्य गाँव की तुलना में शहरी सभ्यता में अधिक असुरक्षित दृष्टिगोचर होता है।

भ्रष्ट व्यवस्था का अंकन

साठोत्तरी कवियों ने व्यवस्था में परिलक्षित भ्रष्टता का अंकन ही नहीं किया है तो बड़ी बेचैनी के साथ उसके परिवर्तन की माँग भी की है। कवि चंद्रकांत देवताले की 'दीवारों पर खून से', 'लकड़बग्घा हँस रहा है', '28 खिड़की का अग्निकांड' कविता-संग्रह में भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति आक्रोश परिलक्षित होता है। व्यवस्था अपने-आपको आम आदमी का हमदर्द घोषित करती है। वस्तुत: वह उनकी हमदर्द नहीं तो सेवक होने का नाटक करनेवाली दुश्मन दृष्टिगोचर होती है। उदयप्रकाश कृत 'सूअर के बारे में कुछ कविताएँ' काव्य संकलन में छ: कविता हैं। इसमें कवि ने स्पष्ट किया है कि नेता या व्यवस्था भ्रष्ट है, अयोग्य एवं कुर्सीलोलुप है। कवि ने 'महापुरुष' कविता में सत्ता के लोभी राजनेताओं का चित्रण किया है। गजलकार रामकुमार कृषक ने अपनी गजलों में सत्ता और व्यवस्था की बारीकियों का जिक्र कर उनकी विसंगतियों, विकृत रूप को तथा भ्रष्टाचारिता को उजागर किया है। बेपरवाह राजनेता भूखे लोगों का पेट घोषणाओं से भरते हैं। सच तो यह है कि योजनाएँ आम आदमी तक पहुँचती ही नहीं हैं। नेता और अधिकारी वर्ग में साँठ-गाँठ दिखाई देती है। देश की तरक्की और खुशहाली की सच्चाई बड़ी कड़वी है।

एक छल है गुलाबी फसल देश में
दरअसल है असल नीम पत्तियाँ।[5]

अत: यह कहना सही होगा कि हमारी व्यवस्था में सेवाभाव की कमी और स्वार्थांधता, भ्रष्टता एवं खोखलापन तथा अन्याय परिलक्षित होता है। कवि सुदामाप्रसाद पांडेय की 'मुनासिब कार्रवाई', कवि जगूड़ी की 'आत्मकारा', 'हत्या', 'इस व्यवस्था में', कवि अश्विनी पाराशर की 'बलदेव खटिक' कविता, बलदेव वंशी कृत 'मानसून', 'हकलाहट से विरोध', 'साथ चलते हुए', 'दर्शक दीर्घा से' आदि कविताओं में कवियों ने जनतंत्र तथा नेतागणों के आचार-विचार पर कोड़े फटकारते हुए जनतंत्र को पूँजीवादी जनतंत्र घोषित किया है और व्यवस्था के अंगों की भयानकता उजागर की है।

नारी-शोषण

साठोत्तरी कवियों ने अपनी कविताओं में गुंडा-गर्दी तथा नारी शोषण का सच उद्घाटित किया है। सुदामाप्रसाद पांडेय ने 'कल' कविता में नारी शोषण में दिखाई देती दलाल व्यवस्था पर चोट की है। नारीदेह के दलाल सुंदर युवतियों को फँसाकर उनके जीवन का वसंत तहस-नहस करते हैं। 'बलदेव खटिक' कविता में गुंडों ने लापता बेटी के पिता की हकीकत बयान की है। कवि चंद्रकांत देवताले कृत 'नारी' कविता में कवि ने नारी स्वतंत्रता का पक्ष मजबूत किया है। रामकुमार कृषक ने अपनी 'नीम की पत्तियाँ' काव्य-संग्रह में गुंडागर्दी तथा नारी शोषण करनेवाले नेतागणों की तस्वीरें प्रस्तुत की हैं। गोरख पांडेय कृत 'नहीं' कविता में स्त्री शोषण और देह बिक्री का चित्रण है। गोरख पांडेय की 'बंद खिड़कियों से टकराकर' नारी स्वतंत्रता, नारी सम्मान और नारी असुरक्षा का सच उजागर करती है। तो उनकी 'नई बहू' कविता नारी जीवन की दुर्दशा की यथार्थ अभिव्यक्ति है। विवेच्य कविता दहेज-प्रथा की चपेट में फँसी भारतीय स्त्री की तस्वीर है। कवि अरुण कमल की 'एक नवजात बच्ची का प्यार' और 'कल्याणी' कविता में स्त्री शोषण का

अंकन है।

कृषक एवं मजदूर जीवन की यथार्थता

साठोत्तरी कवियों ने कृषक तथा मजदूरों के जीवन का यथार्थ पक्ष बखूबी से चित्रित किया है। कवि सुदामाप्रसाद पांडेय की 'मुक्ति का रास्ता' कविता आदिवासियों तथा किसानों पर किए जानेवाले जुल्म की संघर्षकथा है। उनकी ही 'गरीब हिंदू होटल' कविता बाल मजदूरों की यथार्थ स्थिति का अंकन करती है। कवि जगूड़ी 'इस यात्रा में' कविता में बड़े साहस के साथ स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्र देश में मजदूर और किसान सरकारी व्यवस्था से शिकार होकर मर रहे हैं। निहत्थे मजदूरों तथा किसानों पर गोलियाँ चलाई जाती हैं। कायदे-कानून की आड़ में दमनचक्र चलाया जाता है। कवि के मतानुसार शोषण और मुक्ति का एक ही रास्ता है क्रांति। पर कवि अपेक्षित क्रांति न देखकर यथार्थता बयान करता है।

यह कैसी हवा चल रही है
जिसमें न पड़े दिल रहे, न जंगल।[6]

कवि चंद्रकांत देवताले ने भी अपनी 'चीख के बारे में', कवि उदयप्रकाश जी ने 'सुनो कारीगर', मंगलेश डबराल ने 'पहाड़ पर लालटेन' और 'मुक्ति' कविता में दमनकारी व्यवस्था से त्रस्त कृषक-मजदूरों का शोषित रूप चित्रित किया है। गोरख पांडेय जी की 'बच्चों के बारे में' कविता बाल मजदूरों की दुर्दशा का चित्रण करती है। कविता में चित्रित इस देश का मालिक वर्ग बाल मजदूरों से पेशाबगृह तथा प्यालियाँ साफ करवाता है, कंकड़ कुटवाता है। इन बच्चों को कम मजदूरी में और मारपीट सहते जीवन जीना पड़ता है। उदय प्रकाश कृत 'इमारत' तथा 'पिता' कविता में इमारत बनाने का कार्य करनेवाले मजदूरों की पीड़ा चित्रित की है। कवि अरुण कमल अपनी 'रोटी-रोजी' कविता में मजदूरों के शोषण की व्यापकता स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि भारत देश के हर प्रांत में मजदूरों का शोषण होता है।

मध्यवर्ग का विवश जीवन

आर्थिक आधार पर नवसमाज में तैयार हुए वर्गों में से एक वर्ग मध्य-वर्ग है। यह वर्गउच्च और निम्न वर्ग की ओर से चपेट खाता हुआ दिखाई देता है। मध्य-वर्ग का विवश जीवन साठोत्तरी कवियों की नजर से छूटा नहीं। विवेच्य कवियों ने मध्य-वर्ग के शोषित, विवश जीवन को अपनी कविता का विषय बनाया है। कवि अरुण कमल की 'मुक्ति' कविता आम भारतीय अध्यापकों की स्थिति बयान करती है। जिसमें चित्रित मास्टर रिटायर्ड होने पर समझता है कि अपना बेटा अज्ञानी ही रहा है। दूसरों को ज्ञान का प्रकाश देनेवाला अध्यापक खुद अँधेरे का शिकार होता दृष्टिगोचर होता है। मंगलेश डबराल की 'यह पुश्तैनी घर' कविता गाँव छोड़कर शहर आकर बसे लोगों की मानसिकता उजागर करती है। कवि के अनुसार मध्य-वर्ग अनेक पाबंदियों का खुलकर विरोध नहीं कर सकता। परिवार के सदस्यों की मृत्यु होने पर परिवार की औरत खुलकर भी बोल नहीं सकती। देश के मध्य-वर्ग की कमर बढ़ती महँगाई ने तोड़ दी है। परिणामत: ऊष्माभरा दांपत्य जीवन मध्यवर्गीय परिवार की पहचान बन गई है। खामोशी का तनाव झेलती मध्यमवर्गीय पत्नी महँगाई से अधिक त्रस्त दिखाई देती है–

श्रात भोजन करते हुए
मैं अब भी थाली में छोड़ देता हूँ।[7]

पत्नी थोड़ा-सा और खाना खाने का आग्रह करने के बदले धीरे से अनाज की महँगाई की बात करती है।

क्रांति की चेतना का तीखा स्वर

साठोत्तरी कविता की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता क्रांति की चेतना का तीखा स्वर है। इन कवियों का विश्वास है कि देश की बिगड़ी व्यवस्था में सुधार लाने की क्षमता सिर्फ क्रांति में है। कवि जगूड़ी की 'जनता की जमीन पर' और 'एक शब्द तिनका' कविता क्रांति की चेतना का उत्तम स्वर है। 'तिनका' कविता का तिनका दलितों का प्रतीक है। कवि ने क्रांति के लिए आवश्यक संगठन, सहायता तथा एकता पर अधिक जोर दिया है। कवि जगूड़ी ने 'रात अब भी मौजूद है' कविता में जन-जीवन के लिए नारे की नहीं तो किनारे की बात पर जोर दिया है तथा मुक्ति का रास्ता क्रांति को माना है।

तुम वहाँ आग लेकर आओगे
तो मैं तुम्हारी मदद करूँगा
सारी पृथ्वी पर बिछे मेरे पददलित वंशधर
एक साथ जल उठेंगे।[8]

कवि की 'बलदेव खटिक' कविता भी क्रांति का प्रचार-प्रसार का विचार प्रस्तुत करती है। कवि चंद्रकांत देवताले जी भी क्रांति द्वारा व्यवस्था परिवर्तन पर विश्वास करते हैं। 'दीवारों पर खून से' कविता में कवि ने दिखाया है कि व्यवस्था और पूँजीपतियों के षड्यंत्र का शिकार जनसाधारण हैं, जो क्रांति चाहता है।

यहाँ/ यह है उसकी चीख
माचिस को ढूँढती हुई।[9]

कवि उदयप्रकाश ने अपनी 'पक्षी' कविता में बंधुआ मजदूरों को क्रांति के लिए जाग्रत किया है। अत: यह कहना तर्कसंगत होगा कि साठोत्तरी कवि अनेक प्रश्नों की दवा क्रांति मानते हैं।

निष्कर्ष

साठोत्तरी कवियों ने परिवेश से प्रतिबद्ध होकर सामाजिक स्थिति एवं गति का चित्रण किया है। विशेषत: समाज विकास में अवरोध खड़े करनेवाली इकाइयों पर उँगली रखकर पाठकों को सचेत किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। साठोत्तरी कवियों की दृष्टि से सरकार की मनोभूमिका के कारण निर्मित हुए सामाजिक प्रश्न चिंता के विषय हैं। आजादी के बाद भी देश के लोगों को दो टूक का खान-पान नहीं मिलता। विवश एवं भूखा आदमी आर्थिक स्थिति से बेहाल नजर आता है। आम आदमी भूख मिटाने के प्रयास में विवश, मजबूर एवं दयनीय जीवन निर्वाह करता है। साठोत्तरी कवियों का मानना है कि गलत आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप भूख, नारी-शोषण, असुरक्षा तथा आवास जैसी सामाजिक समस्याएँ निर्मित हुई हैं। साठोत्तरी कवियों ने व्यवस्था की भ्रष्टता का अंकन ही नहीं किया है बल्कि उसके परिवर्तन की माँग बड़ी बेचैनी के साथ व्यक्त की है। साठोत्तरी कवियों ने आर्थिक आधार पर नवसमाज में निर्माण हुए वर्गों के शोषित एवं विवश जीवन को अपनी कविता का विषय बनाया है। साठोत्तरी कविता की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता क्रांति का तीखा स्वर है। इन कवियों का विश्वास है कि देश की बिगड़ी हालात

में सुधार लाने की क्षमता क्रांति में है।

संदर्भ

1. लीलाधर जगूड़ी, बची हुई पृथ्वी, पृ॰ 69
2. सुदामाप्रसाद पांडेय, संसद से सड़क तक, पृ॰ 15
3. रामकुमार कृषक, नीम की पत्तियाँ, पृ॰ 75
4. बलदेव वंशी, उपनगर में वापसी, पृ॰ 65
5. रामकुमार कृषक, नीम की पत्तियाँ, पृ॰ 51
6. लीलाधर जगूड़ी, इस यात्रा में, पृ॰ 51
7. सुदामाप्रसाद पांडेय, सुदामाप्रसाद पांडेय का प्रजातंत्र, पृ॰ 38
8. लीलाधर जगूड़ी, अब भी मौजूद है, पृ॰ 57
9. चंद्रकांत देवताले, दीवारों पर खून से, पृ॰ 51

मो॰ 8329729498
Email : sandipjkirdat@gmail.com

ISSN 0975-735X

साठोत्तरी कविता में वैचारिकता

डॉ॰ भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे
हिंदी विभाग
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा (महाराष्ट्र)

बीसवीं शताब्दी संभवत: मानव इतिहास की सर्वाधिक अशांतिमय शताब्दी रही है, अनेक संकटों का सामना इस सदी को करना पड़ा था। अनेक घटनाएँ घट चुकी हैं। इसमें कोई संदेह नहीं की स्वतंत्रता-प्राप्ति हमारा गौरवशाली इतिहास है पर समय के साथ कुछ अच्छे और कुछ कटु बदलाव होते गए जिसका असर समाज पर हुआ। युगों से रक्षित हमारी संस्कृति का ह्रास होता जा रहा था। महान आदर्श कहीं खो रहे थे और उनके अभाव में जीवन में खोखलापन और निराशा आ रही थी। देश में नैतिकता के कारण काफी संतुलन था परंतु अब धर्म, नैतिकता, मानवमूल्य, देश-प्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठता, इन पर प्रश्नचिह्न लगा था। मनुष्य समय के साथ स्वार्थी बन रहा था। अमेरिका साम्राज्यवाद का पुरस्कार करता है और संपूर्ण विश्व की सत्ता अपने हाथ में लेना चाहता था। प्रजातंत्र में भाषावाद, जातिवाद, राज्यवाद आदि फैल रहा था और राजनीति से जुड़ा व्यक्ति पार्टी हित से ज्यादा स्वहित की सोचता है। स्वार्थी और आत्महित व्यक्तियों का राजनीति में बोलबाला था। कुछ अच्छे राजनेता थे लेकिन चंद स्वार्थी लोगों के कारण सब व्यवस्था बदल गई थी। लोगों का विश्वास व्यवस्था पर से उठ गया था। अपने चारों ओर इस वातावरण से क्षुब्ध होकर हिंदी कविता के हृदय में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और साठोत्तरी कविता इसका परिणाम है।

आज का मनुष्य अपने परिवेश के प्रति जितना सजग है, उतना पहले कभी नहीं था। इसी सजगता ने हमें हर स्थिति के प्रति प्रयत्नशील बना दिया है। समकालीन परिवेश का दबाव कवि को मात्र संवेदनात्मक धरातल पर ही नहीं बल्कि बौद्धिक धरातल पर भी झकझोरता हुआ दिखाई देता है। इसलिए आज की कविता केवल अनुभव तक सीमित नहीं है बल्कि अनुभव के सच को जानने-पहचानने और उसका लक्ष्य पाने में जुटी है। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के यथार्थ को कवि ने अभिव्यक्ति दी है। अनेक असंगतियों, अंतर्विरोधों, कुंठाओं, रूढ़ियों, मानसिक और बौद्धिक क्षोम के बावजूद हिंदी कविता ने नया मोड़ लिया है। उसका मूल स्वर बदल रहा है। वह अपने इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करना चाहता है। साठोत्तरी कविता सामान्यजन के माध्यम से पूरे वर्गीय चरित्र का उद्‌घाटन करती है जिससे एक ओर तो समाज और व्यवस्था की सच्चाइयों का पर्दाफाश होता है। उस समय की कविता में एक जो 'वैचारिकता' का आयाम दिखाई देता है, जो हमें कुछ पल के लिए सोचने के लिए विवश करता है। साठोत्तरी कवि रचनाकार होते हुए भी सामान्यजन हैं। एक आम आदमी की हैसियत से वे समाज को नकार नहीं सकते। वे समाज का शोषण करनेवालों के विरुद्ध सदा संघर्षशील दिखाई देते हैं। वे खुली आँखों से अपने युग की विषमता को देख रहे थे। मानव भविष्य के प्रति सजग ये रचनाकार अपने युग के प्रति अत्यंत

संवेदनशील हैं। इनकी कविता युग से परे नहीं है। अपनी दुनिया के प्रति वे ईमानदार हैं इसलिए उनकी कविता 'वैचारिकता' से परिपूर्ण है।

कविता मूलत: युग-संदर्भों की देन होती है। उसमें अतीत के चित्रण और भविष्य के संकेत भी युग-संदर्भ से जुड़कर ही आते हैं। इसीलिए प्रत्येक काल का यथार्थ हमें उन रचनाओं में दिखाई देता है। प्रत्येक कवि अपने समय का यथार्थ बयान अपनी कविताओं में करता है। इसीलिए इन कविताओं में वैचारिकता ओत-प्रोत भरी हुई है। साठोत्तरी हिंदी कविता का निर्माण जिस तेजी से बदलती हुई दुनिया से होना आरंभ हुआ वह उसकी पिछली दुनिया से बहुत भिन्न है। साठोत्तरी हिंदी कविता का व्यापकत्व जितना दिव्य है। उतना ही उसका सत्य कटु है। यह कविता वैचारिक प्रतिबद्धता को सृजनशीलता का एक प्रतिमान स्वीकार किया गया है। प्रतिबद्धता का सामान्य अर्थ किसी भी विचार धर्म, दर्शन के बारे में विश्वास से लिया जाता है किंतु साहित्य में प्रतिबद्धता का अर्थ मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़े होने के रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है रचनाकार अपनी रचनाओं में उद्देश्य की प्रधानता, श्रमिक वर्ग और किसान के साथ तादाम्य, व्यवस्था विरोध और सामूहिकता की भावना का स्वर ऊँचा किया। अब वह स्वयं को अकेला और असहाय न पाकर शोषित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में देखने लगा और इसके साथ ही उसके काव्य के क्षेत्र का विस्तार हुआ सामाजिक यथार्थ के प्रति उसके दृष्टिकोण में बदलाव आया साठोत्तर रचनाकार ने यथास्थिति के प्रति अपने तीव्र आक्रोश को प्रकट करते हुए उसे दूर करने के संकल्प को भी उजागर किया।

साठोत्तरी कविता के बीज निराला की 'नए पत्ते' रानी और कानी 'खजोहरा, गर्म पकोड़ी, 'डिप्टी साहब आए' आदि कविताओं में वर्तमान है। निराला और मुक्तिबोध की परंपरा का ही विकास साठोत्तरी कविता है। डॉ॰ रामदरश मिश्र ने लिखा है, 'सन् साठ के बाद कविता में जो स्वर उगे है वे नई कविता में बीज रूप से वर्तमान रहे हैं और गौण भाव से प्रस्फुटित रहे हैं। ये स्वर नई कविता के मूलाधार नहीं रहे हैं किंतु रहे हैं।'[1] साठोत्तरी कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, राजकमल चौधरी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चंद्रकांत देवताले, रामदरश मिश्र, राजीव सक्सेना, विष्णु खरे, मणि मधुकर, मंगलेश डबराल, विनोद भारद्वाज, वेणू गोपाल आदि हैं। साठोत्तरी कविता के विषय में अशोक वाजपेयी का कहना है, 'सन् साठ के बाद ऐसे बहुत से युवाकवि आए हैं जो ऊपर से आक्रमक और उग्र न दीख पड़े पर जिन्होंने अपेक्षाकृत शांत ढंग से बिना हिंसा, उग्रता और निरर्थकता का नगाड़ा बजाया या उत्सव मनाया समकालीन मनुष्य की निरर्थकता और अकेलेपन की अनुभूतियों को सार्थक और विशिष्ट ढंग से व्यक्त किया है। उन्होंने जानबूझकर कोई विद्रोह करने की कोशिश नहीं की है लेकिन अपनी प्रतिभा के स्वाभाविक परिणाम से अपने युवा होने को चरितार्थ किया है यानी उनका लेखन अप्रत्याशित और लीक से हटकर है।'[2]

साठोत्तरी कविता विकृत शोषित और यातनामय जिंदगी का विरोध है जिसका लक्ष्य है मानवीय जिंदगी और सही व्यवस्था की तलाश। मुक्तिबोध की रचनाओं में सामाजिक विषमता का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। सामान्य जनता का दु:ख-दर्द उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है, उनकी कविताएँ सोचने के लिए विवश करती हैं, उन्हें अँधेरे का कवि भी कहा जाता है लेकिन उन्होंने समाज को विचारों का प्रकाश दिया है–'महाकाय ऊँची-ऊँची इमारतों के साए में फैली हुई झोंपड़पट्टियों में आकर चाँदनी भी काली पड़ जाती है।'[3] मुक्तिबोध समाज की

विसंगतियों पर चोट करते हैं। साहित्य से तात्पर्य है समाज का हित और प्रत्येक रचनाकार समाज का हित देखता है और अपनी काव्य की रचना करता है। प्रत्येक काव्य की पंक्ति समाज को फटकारती है, सोचने के लिए मजबूर करती है। देश का भविष्य राजनेताओं के पास है अगर वे नेक कार्य करते हैं तो देश का विकास होता है, लेकिन अगर राजनेताओं में अनास्था दिखाई देती है तो देश अधोगति की ओर चला जाता हैं।

'देखो इस देश की हर सड़क तिजोरी तक जाती है और तुम्हारे लिए पोस्टकार्ड की कीमत बढ़ जाती है।'[4] साठोत्तरी कवि एक आम आदमी की हैसियत से सत्य को नकार नहीं सकते। वे समाज का शोषण करनेवाले के विरुद्ध सदा संघर्षशील दिखाई देते हैं। वे खुली आँखों से अपने युग की विषमता देखते हैं। मानव भविष्य के प्रति सजग ये रचनाकार अपने युग के प्रति अत्यंत संवेदनशील हैं। इनकी कविता युग से परे नही है। अपनी दुनिया के प्रति वे ईमानदार हैं। इसलिए उनकी कविताओं में वैचारिकता प्रबल है।

वर्तमान कटुता और विषमता के प्रति इन कवियों ने अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं। विश्व मानवता के पथ में जो आज रोड़े हैं उन पर वे प्रहार करते हैं। व्यवस्था के बीच पिस रहे व्यक्ति के लिए उनमें करुणा है। इसलिए सामान्यजन को सचेत करने के लिए आर्थिक विषमता का खुले शब्दों में चित्राकंन किया है–

थोड़े से बच्चों के लिए/ एक बगीचा है
उनके पाँव इन पर दौड़ रहे हैं/ असंख्य बच्चों के लिए
कीचड़ और धूल और गंदगी से पटी
गलियाँ हैं जिनमें वे/ अपना भविष्य बीन रहे हैं।[5]

साठोत्तरी कवियों में मानववादी चेतना है जागरूक कवि होने के नाते जनता की दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही अवस्था को देखकर यह कवि चिंतित हो जाता है। सेठ साहूकार संकट के समय भी अपने लाभ का ध्यान रखते हैं वे जान-बूझकर चीजों का अभाव पैदा कर देते हैं। फिर मूल्य बढ़ाकर खूब लाभ कमाते हैं।

लोग भूखे मरते हैं यहाँ गोदामों में अनाज सड़ता है
और ईश्वर को चंदन की तरह माथे पर लगा
वे दर्पन में अपना निष्कलंक चेहरा देखते हैं।[6]

साठोत्तरी कविता में वैयक्तिकता पूरी ताकत से उभरी है। उनके व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ कई बार उनकी कविताओं में आते हैं। आज का व्यक्ति अकेलेपन से जूझ रहा है। वह अकेलेपन की स्थिति से निराश हताश हो रहा है। कोई भी अपना नहीं है सभी अपराजित हो चले हैं। अकेला आदमी महसूस करता है कि घर का सामान तक आईना, बक्सा, आलमारियाँ, हैंगर, पीले अखबार सभी अपनी गंध दे रहे हैं कुछ भी उसे अपना नहीं लगता है।[7] प्रकृति की रमणीयता को साठोत्तरी कवि शब्दबद्ध करते हैं। उनके लिए प्रकृति वैभवमय और मोहमयी है। इनके प्रकृति वर्णन में मात्र कल्पना की उड़ान नहीं बल्कि ये दृश्य इतने सजीव हैं कि प्रकृति साक्षात हो जाती है। यथा–

अमरूद से/ आम पर/ जा रही है गिलहरी
आते जाते/ गा रही है गिलहरी
इस किच-किच को संगीत/ हाँ कह सकते हैं।[8]

साठोत्तरी कवि समाज की विसंगतियों को व्यक्त करते हैं। आज मनुष्य भीड़ में भी अकेला

दिखाई दे रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही दुनिया में जी रहा है, इसलिए कवि प्रकृति के माध्यम से भी समाज को इंगित करता है। एक ओर हमने प्रगति की है तो दूसरी ओर अधोगति यह दिखाई दे रही है। वैज्ञानिक प्रगति ने जहाँ मानव को सुविधासंपन्न बनाया है वहाँ कुछ दुष्परिणाम भी झेलने पड़ रहे हैं। हवा, जल, अन्न, सभी प्रदूषण के शिकार हो गए हैं और मानव जीवन में जहर घोल रहे हैं। कवि मानव के भविष्य के प्रति चिंतित है–

बच्चे पैदा होते हैं/ विकलाँग हो जाते हैं
अन्न खाने के पहले ही/ अपच करने लगता है
नदियाँ अपना जल लिए दिए/ खुद ही प्यासी रह जाती हैं।
बादल आकर बिना बरसे/ जल लिए लौट जाते हैं।[9]

साठोत्तरी कवि हमें भविष्य के संकट के प्रति आगाज कर रहा है। हम प्रगति तो करते हैं लेकिन एक भयानक काल हमारे सामने खड़ा हो रहा है, इससे हमें बचना है, इसलिए कवि अपने समय का चित्रण काव्य में कर रहा है। साठोत्तरी कवि समाज के प्रत्येक घटक पर चिंता व्यक्त कर रहे हैं। राजनीति से लोगों का विश्वास उठ रहा है। समय के साथ स्वार्थी नेता नित्य नए दलों का गठन कर रहे हैं। अपने स्वार्थ के लिए राजनीति का उपयोग कर रहे हैं। ऐसे स्वार्थी नेताओं को धूमिल जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से फटकारा है। कवि संसद और उसकी गतिविधियों से संतुष्ट नहीं है। संसद ऐसी तेल की घानी बन चुकी है उसमें आधा तेल और आधा पानी है।

साठोत्तरी कविता मोहभंग से उपजी मूल्यहीनता की कविता है। इस समय नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। कवियों ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर जीवनगत विसंगतियों का चित्रण किया है। जीवन के प्रति निराश हो चुके है कवियों आस जगाने की कोशिश की है। कवि मुक्तिबोध कहते हैं कि विषय परिस्थितियों में भी जीवन के प्रति आस्थावान रहना चाहिए–

कोशिश करो/ कोशिश करो/
जीने की/ जमीन में गड़कर भी।[10]

साठोत्तरी कविता एक सार्थक बयान है। जीवन का वास्तविक सच कविता में व्यक्त होता है। इस कविता का केंद्रबिंदु मनुष्य है। इसलिए उसकी चिंता और चिंतन करना ही साठोत्तरी कविता का लक्ष्य है। साठोत्तरी कविता वैचारिक प्रतिबद्धता की कविता है। मार्क्सवादी दर्शन के प्रति इन कवियों की आस्था स्पष्ट झलकती है। इन्होंने सामाजिक यथार्थ को प्रमुखता से उद्घाटित किया है। शोषित के प्रति उनके मन में गहरी करुणा है। साठोत्तरी कवि जनसामान्य में संघर्ष चेतना जाग्रत करके क्रांति का स्वप्न दिखाते हैं। संकटग्रस्त मानव अस्तित्व की यह कविता मानवीय मूल्यों, आस्था और विश्वास की आवश्यकता को रेखांकित करती है। ईश्वर के प्रति अनास्था, आध्यात्मिकता का विघटन, वैज्ञानिक चिंतन और सार्थकता का आग्रह इस कविता के वैचारिक चिंतन को परिपूर्ण बनाते हैं।

निष्कर्ष

साठोत्तरी कविता अपने समय का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करती है। यह कविता विकृत शोषित और यातनामय जिंदगी की विरोधी है जिसका लक्ष्य मानवीय जिंदगी और सही व्यवस्था की तलाश करना है। समाज को सही राह दिखाने का कार्य इन कवियों ने किया है। यह समय मोहभंग का था लेकिन समाज में आस्था निर्माण करने का यह कार्य काव्य करता है। कविता मूल्यों की स्थापना का लक्ष्य है। साठोत्तरी कविता ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाकर जीवनगत

विसंगतियों का चित्रण किया है। शहरी परिवेश की यांत्रिक जिंदगी में वह अपने को असहाय, अकेला और अजनबी महसूस करता है। परिवारिक संबंधों में संयुक्त परिवार का विघटन एक महत्त्वपूर्ण बदलाव का सूचक है। युवक दिशाहीन शिक्षा और बेकारी के कारण पूरी तरह से टूट चुके हैं। स्वार्थी राजनेता युवाशक्ति का शोषण कर रहे हैं। औद्योगिकरण के चलते अकेलापन, अजनबीपन, निराशा, कटुता, विद्रोह दिखाई देता है। साठोत्तरी कवि क्रांति का स्वप्न देखता है। वह चाहता है सत्ता का यह पूँजीवादी तिलिस्म टूटे और सामान्य व्यक्ति को राहत मिले। मनुष्य के जीवन में फिर से आनंद, मूल्यों और आदर्श को लेकर समाज की स्थापना कवि का उद्देश है।

संदर्भ

1. डॉ॰ रामदरश मिश्र, हिंदी कविता आधुनिक आयाम, पृ॰ 181
2. अशोक वाजपेयी, फिलहाल, पृ॰ 55
3. मुक्तिबोध, मुक्तिबोध रचनावली (भाग दो), पृ॰ 299
4. लीलाधर जगूड़ी, इस व्यवस्था में, पृ॰ 19
5. चंद्रकांत देवताले, लकड़बग्धा हँस रहा है, पृ॰ 74
6. वही, पृ॰ 44
7. विष्णु खरे, खुद अपनी आँख से, पृ॰ 26
8. भवानीप्रसाद मिश्र, शरीर कविता फसल और फूल, पृ॰ 24
9. रामदरश मिश्र, कंधे पर सूरज, पृ॰ 14
10. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ॰ 56

समकालीन हिंदी कविता : विविध आयाम

डॉ॰ सरोज पाटील
एसोसिएट प्रोफेसर
श्री शहाजी छ॰ महाविद्यालय, कोल्हापुर

समकालीन कविता प्रवाह की विकासयात्रा सही अर्थ में सन् 1960 के बाद आरंभ हुई। इस दौर में मुख्यत: कवियों ने आजादी के बाद की मोहभंगवाली अवस्था में प्राप्त जीवन और विसंगतियों के विरोध में आवाज उठाना आरंभ किया। इन कवियों में नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, कुमारेंद्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लीलाधर जगूड़ी, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध आदि नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने समकालीन कविता को गरिमा प्रदान की। समकालीन कविताओं के केंद्र में देश का आम आदमी है। इन कविताओं में जनवादी चेतना के संकेत स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इन कविताओं में आजाद भारत का आम आदमी अपने जीवन का प्रतिबिंब प्राप्त कर सकता है। ये कविताएँ आजादी के बाद का भारत एवं आम आदमी की जीवनव्यवस्था को उजागर करती हैं। इन कविताओं के माध्यम से समकालीन कवियों ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की भ्रष्ट, स्वार्थांध, आत्मकेंद्रित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था पर तीखी टिप्पणी करते हुए आम आदमी को अन्याय या अपनी बैचेनी के विरोध में आवाज उठाने की प्रेरणा दी है। समकालीन कवियों को देश की आजादी व्यर्थ प्रतीत होती है। इन कवियों ने प्राप्त स्थितियों पर प्रमुखत: व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए स्थितियों में परिवर्तन की माँग की है। कवियों का उद्देश्य यह कतई नहीं है कि अपनी कविताओं के जरिए जनता को भड़काएँ, उन्हें लड़ाई-झगड़े करने के लिए प्रेरित करें बल्कि कवि आम आदमी में वैचारिक प्रगल्भता बढ़ाना चाहते हैं। ताकि समाज में वैचारिक क्रांति का निर्माण हो। अत: समकालीन कविता भारतीय जनतंत्र के नकली मुखौटे का पर्दाफाश करती हुए जनता में सकारात्मक परिवर्तन की आशा जाग्रत करने का सफल प्रयास करती है।

प्रस्तावना

हिंदी काव्य साहित्य प्रत्येक कालखंड में विविध परिवर्तनों, आंदोलनों वादों से प्रभावित होता रहा है। भारतीय स्वातंत्र्य देश के इतिहास का अनूठा पर्व रहा है। इससे देश का हर पक्ष प्रभावित रहा है। भारतीय साहित्य पर भी स्वतंत्रता संग्राम का विशेष परिणाम दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद हिंदी काव्य साहित्य जिन विविध आंदोलनों से गुजरा इनमें समकालीन काव्यप्रवाह विशेष उल्लेखनीय है। इसकी आधुनिक हिंदी काव्यधारा में अपनी स्वतंत्र पहचान है।

वास्तव में समकालीन का अर्थ है अपने समय का परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि कोई भी संवेदनशील कवि अपने समयबोध का चित्रण करते हुए अतीत और भविष्य को किनारे नहीं रख सकता। अतीत, वर्तमान और भविष्यबोध के समन्वय में ही रचना बन पाती है। अत: इतिहास और भविष्यबोध को अपने वर्तमान में समेटकर समग्र युगबोध को प्रस्तुत करनेवाली रचना

 ISSN 0975-735X

समकालीन कविता कही जा सकती है।

साहित्य में नित गई भावधाराओं का स्वीकार होता रहता है। जब नई भावधारा साहित्य से जुड़ जाती है। तब पुरानी भावधारा भले ही पीछे छूट जाए परंतु उसके अंश कहीं-न-कहीं नई भावधारा में विद्यमान दिखाई देते हैं। अत: समकालीन कविता तत्कालीन संदर्भ में पिछले भावबोध का संस्कारयुक्त प्रयोग है। 'समकालीन कविता एक ऐसी काव्य चेतना का नाम है जो छठे दशक के बाद उभरकर सामने आई, जिस पर विचार तत्त्व का प्रभाव है, जो अपने परिवेश से प्रतिबद्ध है। ...वर्तमान संदर्भों को जीती, विसंगतियों से जूझती और उन पर चोट करती हुई आज की उस कविता को समकालीन कविता माना जाता है जिसमें व्यवस्था के विरुद्ध सब-कुछ कहने का साहस हो...उसके साथ ही उस व्यवस्था के शिकार आम आदमी के प्रति सच्ची संवेदना हो।' (समकालीन कवि और काव्य, पृ॰ 11)

अर्थातृ इन कवियों ने 1947 के बादवाले मोहभंग की स्थितियों के साथ पुराने बनते जा रहे जीवनमूल्यों, परंपराओं का खुलकर विरोध करना शुरू किया। स्वार्थांध सत्ताधीशों की आत्मकेंद्रित राजनीति एवं आजाद भारत की असहाय बनी आम जनता से खिलवाड़ कर रहे भ्रष्ट राजनेताओं के विरोध में इन समकालीन कवियों ने तीव्र रोष जताना शुरू किया। नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, कुमारेंद्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, लीलाधर जगूड़ी, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध आदि ये नाम हैं जिन्होंने समकालीन कविता को जनसामान्य की भावनाओं का प्रतीक बनाया। इन कविताओं में प्राप्त होनेवाले निम्नांकित मुद्दे समकालीन कविता का पूरा चित्र प्रस्तुत करते हैं।

आम आदमी का प्रबल पक्षधर

समकालीन कवियों को समाज के प्रति गहरी संवेदना रही है। इन कवियों ने समकालीन परिवेश का मूल्यांकन समाज के मूल स्त्रोत अर्थात् आम आदमी के परिप्रेक्ष्य में किया है। ये कवि आम आदमी के प्रबल पक्षधर रहे हैं।

समकालीन परिवेश में देश के आम आदमी की गरीबी, भुखमरी, अकाल, बाढ़, राजनीतिक शोषण, भ्रष्ट राजनीति, दो वक्त की रोटी पाने के लिए किए जानेवाले समझौते, आम आदमी की निरंतर हो रही उपेक्षा आदि से वे कवि बड़े व्याकुल हैं। जिससे जनसामान्य की सार्वत्रिक मुक्ति में योगदान इनका संकल्प रहा है। इस संदर्भ में कवि नागार्जुन लिखते हैं–

मैं तुम्हारे लिए ही जिऊँगा, मरूँगा
मैं तुम्हारे ही इर्द-गिर्द रहना चाहूँगा
मैं तुम्हारे ही प्रति अपनी वफादारी निबाहूँगा
आओ, खेत मजदूर और भूमिदास नौजवान
आओ, खदान श्रमिक और फैक्ट्री वर्कर नौजवान
आओ, कैंपस के छात्र और फैकल्टियों के नवीन प्राध्यापक
हाँ हाँ तुम्हारे ही अंदर तैयार हो रहे हैं। (समकालीन प्रतिनिधि कवि, पृ॰ 11)

इन पंक्तियों के साथ नागार्जुन 'जन' के साथ बँधे, जनविकास के आग्रही, लोकमानस के कवि के रूप प्रस्तुत हुए हैं।

समकालीन कवि समाज की जीवन शक्ति को कहीं बहुत गहरे में जाकर पहचानना चाहते

हैं। इसी कारण इन कवियों ने जान-बूझकर समाज के सामान्य, दयनीय, निरीह स्थिति में जी रहे आम आदमी को अपनी कविता का विषय बनाया है। जो समकालीन परिवेश में पीड़ित है।

कवि त्रिलोचन ने अपने प्रथम काव्य-संग्रह में बडे स्पष्ट शब्दों में जनसाधारण के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए लिखा है–

जिनका कदम जीवन की जनयात्रा का प्रिय प्रतीक है
मैं सगर्व सोल्लास निरंतर उन लोगों का गुण गाता हूँ

(समकालीन प्रतिनिधि कवि, पृ॰ 92)

कवि त्रिलोचन अपने साहित्य के जरिए आम आदमी के जीवन संघर्ष को वाणी देने के लिए प्रतिबद्ध हैं। अत: आम आदमी के पक्षधर समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं के जरिए अपने काल की केंद्रीय समस्याओं और चुनौतियों को आम आदमी के परिप्रेक्ष्य में आँकने का प्रयत्न किया है। इसीलिए समकालीन साहित्य जनवादी चेतना से युक्त है।

भारतीय जनता का मोहभंग

1960 के बाद ऐसी अनेक सामाजिक, राजनीतिक घटनाएँ घटित हुईं जिनके कारण आमआदमी नवस्वतंत्रता और उससे मिलनेवाले काल्पनिक सुख की कल्पना से उबरकर नए तरीके से सोचने लगा। स्वतंत्रतापूर्व कालावधि में स्वतंत्रता संग्राम के सूत्रधारों ने भारतीय आम जनता को आजादी के पश्चात सुनहरे जीवन प्राप्ति के सपने दिखाए थे परंतु दुर्भाग्यवश जैसे ही देश आजाद हुआ सत्ता के सूत्र देश के स्वार्थांध राजनेताओं ने हथिया लिए। वे आत्मकेंद्रित स्वार्थांध राजनीति में व्यस्त हो गए। उन्हें आम आदमी के जीवन से, उनके सपनों से कोई सरोकार नहीं रहा। जिससे आम आदमी खुद को असहाय महसूस करने लगा। उसे जनतंत्र षड्यंत्र महसूस होने लगा। 1962 का चीनी आक्रमण, 1964 में नेहरू की मृत्यु, 1965 में भारत-पाक युद्ध, 1966 में लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु से देश में सक्षम नेतृत्व की रिक्तता लक्षित होने लगी। राजनीतिक विकृतियाँ बढ़ने लगीं। समकालीन कवियों ने मोहभंगवाली इस स्थिति को अत्यंत मार्मिक वाणी दी है। कवि धूमिल ने इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–

न कोई प्रजा है/ न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ/ आदमी का खुला सा षड्यंत्र हैं।

(सुदामा पांडे का प्रजातंत्र)

देश में चल रहे राजनीतिक षड्यंत्र में जनता दिन-ब-दिन बेहाल होने लगी। समाज में छटपटाहट, निराशा, असफलता, अंतरविरोध व्याप्त हो गया। मोहभंग की इस स्थिति से जनता को बाहर निकालना आवश्यकता बनी। कवि रघुवीर सहाय ने देश की सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक परिस्थितियों में झाँककर व्यक्ति, समाज और देश की आत्मा को उजागर करने का प्रयत्न किया है–

मैंने कहा/ बीस वर्ष
खो गए क्षण-भर में उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी, पली, पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में।

(समकालीन प्रतिनिधि कवि, पृ॰ 207)

 ISSN 0975-735X

70 के दशक तक आते-आते आजाद भारत में जन्मी एक पूरी पीढ़ी ने अपने सपनों को पूरा न होने की स्थिति में दम तोड़ना शुरू किया। बेहतर जिंदगी की चाहत लिए वह इंतजार करती रही स्थितियों में सुधार का, परंतु उनके हाथ निराशा ही लगी। इन स्थितियों पर अपनी टिप्पणी करनेवाले समकालीन कवियों की रचनाओं से लोकतंत्र के प्रति प्रखर चिंता व्यक्त हुई है। लोकतंत्र की आड़ में पनत रहे अलोकतंत्र, जनता की मोहभंगवाली इस मनोवस्था को इन कवियों की रचनाओं में प्रखरता से देखा जा सकता है। कवि कुमारेंद्र पारसनाथ ने लिखा है–

हमने लड़ाई लड़ी थी इस उम्मीद से
कि अपने वक्त के साथ अपना वतन भी आजाद होगा।
एक तुम्हारा ही नहीं, तुम्हारी जैसी लाख-लाख माताओं का घर-आँगन
एक जैसा आबाद होगा
रोशनी ऊँची हवेलियों से उतरकर
चालों और झोपड़ियों में भी पहुँचेगी।

(इतिहास का संवाद)

इसप्रकार स्वतंत्रता से मोहभंग समकालीन कवियों की कविताओं के केंद्र में रहा है। उनकी दृष्टि में ऐसी विषम स्थितियाँ आजादी का अधूरापन है जिसका स्वीकार भारतीय जनमानस का नसीब बना हुआ है।

स्वार्थांध राजनीति के प्रति आक्रोश

आजादीपूर्व काल में भारतीय बलिदानी नेताओं ने त्याग, देशप्रेम, समर्पण, बलिदान का आदर्श देशवासियों के सामने रखते हुए आजादी के बाद के स्वर्णिम जीवन की कल्पना की थी परंतु अवसरवादी नेताओं की शिकार राजनीति के चलते सारे सपने धूल गए। जिन नेताओं की बड़ी श्रध्दा के साथ जनता ने नेतृत्व का मौका दिया था वही नेतृत्व जनता को भूल गया। जनता के प्रश्नों, समस्याओं की ओर देखने की उन्हें फुरसत नहीं रही। जनता सहयोग का इंतजार करती रही और शासक सत्ताभोग में व्यस्त रहे। इन स्थितियों पर समकालीन नेताओं ने बडा आक्रोश व्यक्त किया है। कवि रघुवीर सहाय का आक्रोश तीव्र व्यंग्य के रुप में व्यक्त हुआ हैं। वे लिखते हैं,

राजा ने जनता को बरसों से देखा नहीं
यह राजा जनता की कमजोरियाँ न जान सके
इसलिए जनता के क्लेश का वर्णन करूँगा नहीं
इस दरबार में।

(समकालीन प्रतिनिधि कवि, पृ॰ 208)

यह व्यंग्य एक मानसिक तनाव की स्थिति है। यहाँ पर कवि ने पूरे जनमानस का तनाव व्यंग्य के जरिए प्रस्तुत किया है।

समकालीन परिवेश में कवियों ने अपनी कविताओं में स्वार्थांध राजनीति पर अपना क्रोध तीखे शब्दों में व्यक्त किया है। तत्कालीन समय में देश की अत्यवस्था, प्रशासन की विफलता, लंबे-चौड़े नारे और योजनाओं की विफलता से निराश कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना लिखते हैं–

ढाल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे-धीरे एक क्रांति यात्रा/ शव यात्रा में बदल रही है

सड़ांध फैल रही है/ नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के/ सीमांत धुँधले पड़ते जा रहे हैं
और हम चूहों से देख रहे हैं।

(समकालीन प्रतिनिधि कवि, पृ॰ 162)

सर्वेश्वरजी ने राजनीतिक विसंगतियों बीच आम आदमी की विवशतावाला अहसास पाठकों के सामने अत्यंत वास्तव रूप में रखा है। आजादी के बाद के भारतीय समाज और शासन व्यवस्था का अंतर बाह्य रूप उजागर करना अधिकांश समकालीन कवियों की सर्जनात्मकता है।

भ्रष्ट व्यवस्था पर तीव्र प्रहार

भ्रष्ट व्यवस्था आजाद भारत का सबसे विषम पक्ष रहा है। आजादी के पश्चात स्वउन्नति में जुटे नेतागण, सांसद, पूँजीपति, ठेकेदार, उच्चपदस्थ अधिकारियों ने अपनी भ्रष्ट नीति के चलते देश के जनमानस को तोड़ने का काम किया है। वे अपने काम से लोगों में विश्वास निर्माण नहीं कर पाए। परिणामस्वरूप आम आदमी बदतर जिंदगी जीने के लिए विवश हो गया। कवि लीलाधर जगूड़ी की दृष्टि में सभी भ्रष्टाचारी व्यक्तियों का रूप-रंग, आकार एक सा होता है और उनका लक्ष्य भी एक ही होता है–स्वउन्नति। लीलाधर जगूड़ी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'नाटक जारी है' में लिखा है–

यह क्या कम है इस राजनीतिक कोहराम में जीते हुए
खाते हुए लोगों की एक ही आकृति है मैंने देख ली
इस व्यवस्था के सारे अंग केवल शोषक हैं
यही उनकी वास्तविक आकृति है।

आजादी के बाद सर्वत्र यही स्थिति बनी रही। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, धूमिल, नागार्जुन ने इन स्थितियों पर कड़ी टिप्पणी की है। समाजसेवा का मुखौटा लगाए ये व्यवस्था के प्रतिनिधि आम लोगों को हमेशा से लूटते रहे हैं। इस पर नागार्जुन लिखते हैं–

जमींदार है, साहुकार, बनिया है, व्यापारी है
अंदर-अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है
सब घुस आए भरा पड़ा है, भारत माता का मंदिर
एक बार जो फिसले अब फिसल रहे फिर फिर।

देश की विषम व्यवस्था के सूत्रधारों पर टिप्पणी करते हुए नागार्जुन अपने जनवादी होने का निर्वाह करते दिखाई देते हैं।

आजादी की अनुपयुक्तता से निराशा

आजादी की अनुपयुक्तता से निराशा समकालीन कवियों का विशेष स्वर रहा है। आजादी के बीस साल बाद देश के जनसामान्य के जीवन में बढ़ते जा रहे प्रश्नों, समस्याओं के चलते समकालीन कवि बड़े निराश बने हैं। सर्वत्र व्याप्त निराशा वाली स्थिति में दो विचार उन्हें त्रस्त बना रहे हैं कि क्या वे अपनी रचनाओं द्वारा निराश बने लोगों का हौसला बढ़ाएँ या फिर ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेदार देश के भ्रष्टांध सूत्रधारों से जवाब माँगें, उनसे लड़े? ऐसी मनोवस्था में आजादी की अनुपयुक्तता से हताश कवि 'धूमिल' पूछते हैं–

क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है?

जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब भी होता है? (बीस साल बाद)

परंतु इस प्रश्न का कोई समाधानकारक उत्तर उन्हें प्राप्त नहीं हुआ है। लगभग यही स्थिति आजादी के बीस साल बाद देश के हर सामान्य व्यक्ति की बनी हुई है। यह आजाद भारत की सबसे बड़ी विडंबना है। धूमिल स्वातंत्र्योत्तर कालावधि में प्राप्त जीवन विसंगतियों के विरोध में बड़ी निर्भयता से आवाज उठाते हुए व्यवस्था के शिकार भारत के आम आदमी के प्रति सच्ची संवेदना प्रकट करते हैं। धूमिल की प्रस्तुत कविता समकालीन परिवेश का प्रतिबिंब है। समकालीनता का तर्क है।

जनसामान्य की मनोवस्था कुछ इस तरह टूटी हुई है कि उनका विश्वास नेताओं, सांसदों, चुनाव प्रणालियों, कानून व्यवस्था, सुरक्षा व्यवस्था से उठ सा गया है। कुल मिलाकर देश की आजादी की अनुपयुक्तता से हर आम आदमी निराश बना हुआ है।

मध्यमवर्गीय जीवन का सटीक चित्रण

समकालीन कविता के केंद्र में हमेशा ही आम आदमी रहा है। समाज के विशेषत: मध्य और निम्नवर्ग के यथार्थ चित्रण में इन कवियों ने विशेष रुचि दिखाई है। शमशेर बहादुर सिंह सामान्य मजदूर-किसानों के हृदय से हृदय मिलाकर गीत गाने का आवाहन करते हुए कहते हैं–

फिर वह एक हिलोर उठी गाओ
वह मजदूर किसानों के खर कठिन हठी
कवि हैं, उनमें अपना हृदय मिलाओ।
उसके मिट्टी के तन में है अधिक जंग
है अधिक ताप/ उसमें कवि, हे
अपने विरह-मिलन के पाप जलाओ।
काट बुर्जआ भावों की गुमठी को गाओ। (चुका भी नहीं मैं)

तमाम समकालीन कवि अपने साहित्य के जरिए मानवतावाद की स्थापना का स्वप्न देखते हैं। मानव मात्र के लिए शांति, एकता, प्रेम की इच्छा रखते हैं। शमशेर की प्रस्तुत कविता इसी बात का निर्वाह करती दिखाई देती हैं।

जनजीवन के प्रति अतीव लगाव

समकालीन कवि हमेशा जनता के साथ रहना चाहता है। हर प्रतिकूल स्थिति में, जनता के कष्ट में उनका हौसला बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। केदारनाथ सिंह मानते हैं कि अगर समस्त कवि वर्ग जनता की पीड़ाओं को महसूस नहीं कर पाता, उनके दु:खों, कष्टों में उनके साथ नहीं चलता तो उसका अस्तित्व बेमायने है। अत: साहित्यिक जनता के स्वर में अपना स्वर मिलाकर चले। 'टूटने दो' नामक कविता में उन्होंने लिखा है–

अगर नहीं है मेरे स्वरों में तुम्हारे स्वर
अगर नहीं है मेरे हाथों में तुम्हारे हाथ
अगर नहीं है मेरे शब्दों में तुम्हारी आहट
अगर नहीं है मेरे गीतों में तुम्हारी बात
तो ओ रे भाई/ ओ रे भाई

मुझे पछाड़ खाए बादल की तरह
टूटने दो।

इस प्रकार समकालीन कवियों की कविताओं में जनजीवन के प्रति अतीव जमाव स्पष्टता से दिखाई देता है।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी कविता छठे दशक के बाद उभरकर सामने आई। इस कविता का वैचारिक पक्ष बड़ा सशक्त है। समकालीन कविता आजादी के बाद के मोहभंग से पीड़ित जनमानस के प्रति सच्ची संवेदना प्रकट करती है। इस कविता का उद्देश्य आजादी के बाद उत्पन्न मोहभंग की अवस्था को केवल सहानुभूति की भावना से रेखांकित करना नहीं है बल्कि स्वातंत्र्योत्तर कालावधि में प्राप्त जीवनविसंगतियों के खिलाफ जनमानस को निर्भयता से आवाज उठाने की प्रेरणा देना है।

संदर्भ

1. कालयात्री है कविता, प्रभाकर श्रोत्रिय, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993
2. समकालीन कवि और काव्य, कल्याणचंद्र, चिंतन प्रकाशन, नौबस्ता कानपुर, प्रथम संस्करण 1996
3. समकालीन प्रतिनिधि कवि, अनंत कीर्ति तिवारी, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1995
4. साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना, नरेंद्रसिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993
5. संसद से सड़क तक, धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबॅक्स, 1993
6. रचनाकार चंद्रकांत देवताले, डॉ॰ वी॰एफ॰ शेख, विनय प्रकाशन, हंसपुरम, कानपुर, संस्करण 2004

Mob. 9922770661
Email : saroj120575@gmail.com

वर्तमान काव्य में युग-चेतना

प्रा॰ डॉ॰ शिवाजी उत्तम चवरे, डी॰ लिट्
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
प्रा॰ संभाजीराव कदम महाविदयालय, देऊर
सातारा 415524 (महाराष्ट्र)

भारतीय संस्कृति की सभ्यता को पहचानकर उसे फिर से अपनाने की जरूरत महसूस की जा रही है। संयुक्त परिवार के समानांतर मूल्य विघटन को महसूस किया जा सकता है। मूल्य संक्रमण एवं मूल्य विघटन महानगरीय जीवन के हर पहलू में देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो गए हैं। बाप बेटे के बीच वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ियों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी है जिससे परिवारों में संघर्ष बढ़ता जा रहा है। ऐसी संघर्षमय स्थिति में माता-पिता को समझौता करना पड़ रहा है या उन्हें परिवार छोड़कर वृद्धाश्रम में शरण लेनी पड़ रही है। महानगरीय स्त्री-पुरुष के लिए विवाह संस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। महानगरीय मानव अधिक सुख के लिए पूरा दिन भाग-दौड़ करता है। अर्थ महानगरीय मानव की कमजोरी है। अर्थ के लालच में लोग घिनौने से घिनौने कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अर्थ को पाने के लिए नारी अपना तन बेचती है तो पदोन्नति के लिए घर की नारी को दूसरों के सामने परोसा जाता है। समकालीन कविता में उन मूल्यों की तलाश की जा रही है जो आज नष्ट होते जा रहे हैं। बाजारवाद के गंभीर दुष्परिणाम के प्रति हमें सचेत होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का कारण हमारी सोच बिगड़ती हुई नजर आती है।

विषय की प्रासंगिकता

हमारे भारत देश कों गाँवों का देश कहा जाता है फिर भी नगरीकरण और औद्योगिकरण की तीव्र गति के कारण देश में कस्बे, नगर और नगर, महानगर बनते जा रहे हैं। ऐसे कस्बाई जिंदगी जीने वाला व्यक्ति महानगर में आकर अपने-आपको नगरीय संस्कृति में 'एडजस्ट' नहीं कर पाता। महानगर का जीवन उस गाँव के अपनेपन तथा स्नेहशक्ति जीवन का अनुभव न होकर उदासी और शुष्कता का जीवन लगता है। भारत में ग्रामीण जनता की गरीबी, अभाव, निर्धनता, बेकारी ने उन्हें अपनी भूमि से उखड़ने के लिए विवश किया और उसे यहाँ नगरों की ओर जाने के लिए बाध्य किया। परंतु गाँव से आए व्यक्ति के लिए महानगर में समायोजन का प्रयास काफी कष्टदायक तथा तनावपूर्ण अनुभव बन जाता है। शहरों में रहनेवाले लोगों के सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य खत्म हो रहे हैं उसका वर्णन समकालीन कविता में किया गया है। उसी की ओर ध्यान खींचने का प्रयास इस शोध कार्य द्वारा किया गया है।

समकालीन कवि उदय प्रकाश, अरुण, कमल, कुमार कृष्ण, राजेश जोशी, कुमार अंबुज, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डबराल, बोधिसत्व, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, अशोक वाजपेयी, निर्मला पुतुन, किरण अग्रवाल, प्रज्ञा मजूमवार तथा दुष्यंत कुमारजी की कविताओं में युग चेतना का वर्णन समाज

की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है।

समकालीन काव्य विद्वानों ने 1960 के उपरांत माना है लेकिन मैंने तत्कालीन कवियों की समकालीन कविताओं के भीतर की वास्तविकता को पहचानने की कोशिश की है। आज के कवियों ने अपने समय को अत्यंत निकटता से, बारीकी से देखा है और उसे अनुभूत कर उसे वाणी देने का सफल प्रयास किया है। जो हमें आज की अराजक और दिशाहीन स्थिति से अवगत कराती है जिससे मनुष्य प्रभावित हो रहा है। इस कविता के माध्यम से आधुनिक समाज को चेतना देने का प्रयास कवियों ने किया है। उसे ढूँढकर पाठकों के सामने लाना इस शोध निबंध का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

मानवमूल्य

आज हमारे सांस्कृतिक तथा बुनिवादी मानव मूल्य खत्म हो रहे हैं जिससे कारण घर संस्कृति बह गई है। घर ईंट-पत्थर से नहीं बनता बल्कि मानव मूल्यों से बनता है। आज इंसान इंसान से दूर होता जा रहा है। आधुनिक संचार और स्पर्धा के इस युग में मूल्यवान वस्तुएँ हमसे छूटती जा रही हैं। संचार के इस युग में भावनाओं का संचार नष्ट हो रहा है। सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मूल्यों के ह्रास के कारण आज अहंकार तथा अकेलापन बढ़ रहा है, मानवीय संवेदना तथा संयुक्त परिवार खत्म हो रहे हैं। इसलिए कवि अरुण कमल जी कहते हैं–

दुनिया में इतना दु:ख है इतना ज्वर
सुख के लिए चाहिए बस दो रोटी और एक घर
और वही दिन-ब-दिन मुश्किल पड़ रहा है।[1]

कवि के अनुसार आज हम जहाँ पहँच गए हैं, वहाँ से हमें लौटना पड़ेगा अन्यथा जीवन में दु:ख और उदासी के सिवाय कुछ नहीं रह जाएगा। इसी कारण शायद आज कवि उस घर की तलाश के लिए बाध्य हो गया जिसमें मूल्यों की खोज करनी न पड़े। आज धन की लालसा बढ़ रही है उसके लिए रिश्तों को भी तोड़ा जा रहा है। धन का अहंकार इतना बढ़ गया है कि आदमी हवा में सैर करने लगा है। उसके पाँव धरती से छूटते नजर आ रहे हैं। सहानुभूति, प्यार, दया, शांति ये चीजें खत्म होती जा रही हैं जिसके कारण अकेलापन महसूस होने लगा है। अस्तित्व की इस लड़ाई में स्त्री-पुरुष के रिश्ते, आपसी प्रेम-संबध बिगड़ते हुए नजर आ रहे हैं। प्यार के नष्ट होने के कारण और अहंकार के बढ़ने का नया नतीजा होता है उसे उदय प्रकाशजी कहते हैं–

मैं तुम्हारे बिना रह सकता था
पृथ्वी पर अपनी उम्र भर
यह मुझे सिद्ध करना था चुपचाप
यह मैंने सिद्ध किया
तुम भी रह सकती थी
अपनी उम्र भर इसी पृथ्वी पर मेरे बगैर
तुमने भी सिद्ध किया।[2]

इस तरह समाज में मूल्यों का ह्रास होने के कारण आज आपसी संबधों का ताना-बाना भी टूटता नजर आ रहा है। तालमेल खत्म हो रहा है जिससे समाज में असंतुलन की स्थिति पैदा हो गई है। यांत्रिक युग में लोग यंत्र की तरह दिन रात काम में इतने व्यस्त हो गए हैं कि उन्हें एक-दूसरे से दो शब्द कहने की फुर्सत नहीं है। यही कारण है आज अजनबीपन बढ़ने लगा है। कवि आज के

मनुष्यों का ध्यान बार-बार मूल्यों की तरफ खींचने का प्रयास कर रहे हैं।

रिश्तों के विघटन के कारण अकेलापन आना स्वाभाविक ही है। संबंधों के विघटन से उपजे अकेलेपन को कवि ने बखूबी प्रस्तुत किया है। आज व्यक्ति इतना व्यस्त है कि गली-मोहल्ले में भी एक-दूसरे को नहीं पहचानता। समय की हवा ही ऐसी है यही कहा जा सकता है। रिश्तों के विघटन को इन पक्तियों में देखा जा सकता है–

माँ धीरे-धीरे चली गई है इतनी दूर
तक उसके सबसे स्मरणीय और चमकदार रूप के लिए
लौटना होता है कई साल पहले के वक्त में
मैं चाहूँ तो भी नहीं रोक सकता माँ को जाने से
दूर दूर तक नहीं बची रह गई है मुझमें अबोधन
धीरे-धीरे मैं खुद चला आया हूँ माँ से इतनी दूर
कि मेरे घर में आज माँ एक अतिथि है।[3]

कुमार कृष्णजी की अनेक कविताओं में बचपन में बिताए हुए स्नेह के मधुर अवसर की पहचान मिलती है। वह दिन याद करके वह भावविभोर होते हुए कहते हैं–

बहुत छोटा था/ जानता था मैं
दादा के कंबल में है कोई जादू
कहझट से झूला देता है बच्चों को
बहुत बार मैंने/ सोती हुई बहन को
उसी कंबल में सोता देखा था।[4]

मतलब है कि आत्मीयता मुनष्य को अपनापन देती है। वह स्मृतियों के आधार पर भी जी सकता है। मगर आज अकेलापन इसलिए महसूस हो रहा है क्योंकि कहीं सारी चीजें छूटती नजर आ रही हैं। जिंदगी में हमारे आसपास सुविधाओं का ढेर लगा हुआ है, मगर प्रेम, सहानुभूति, आत्मीयता जैसी चीजें बिखरती हुई नजर आ रही हैं। यह व्यथित करनेवाला चिंतन है। आज वह अकेले भटकने को मजबूर हो गया है। वह सिर्फ अपने लोगों का प्यार चाहता है मगर उसे कुछ नहीं मिल रहा है। समकालीन कवियों की कविता में चेतावनी दी गई है कि आज जीवन में प्यार की प्रमुख भूमिका है। इसमें वह ताकत मौजूद है जो व्यक्ति को व्यक्ति, परिवार और समाज से जोड़ती है। प्यार की इस जीवनदायिनी शक्ति को समझने की जरूरत है। प्रेम के अभाव के कारण मनुष्य मनुष्य से दूर होकर अकेलापन महसूस कर रहा है।

हिंदी गजल में वास्तविकता का चित्रण

आज भारत की सामाजिक हालत बिगड़ी हुई नजर आती है। देश में बेकारी, गरीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेईमानी, धर्म के नाम पर दंगे, पूँजीवाद व्याप्त है। सर्वहारा वर्ग का शोषण हो रहा है। आज की सामाजिक व्यथा का कारण समाज ही है। वर्तमान समाज व्यवस्था के मापदंड कुछ बदले हुए नजर आते हैं वे पतन की ओर जा रहे हैं। समाज फिर भी विवश है। वह इन आपत्तियों का सामना करना नहीं चाहता बल्कि जैसा है वैसे ही जीवन जीना चाहता है। इसी को दृष्टि में रखकर दुष्यंतजी ने सहनशीलता की परिसीमा को दिखाते हुए कहा है–

न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।[5]

आज सामाजिक व्यवस्था ही भ्रष्ट होती जा रही है। सड़कों पर भ्रष्टाचार का कीचड़ फैला हुआ है और हम सभी उसमें सने हुए हैं। भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट करते हुए दुष्यंत जी कहते हैं–

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछा है
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।[6]

व्यक्ति के अजनबीपन पर व्यंग करते हुए दुष्यंतजी ने लिखा है–

इस शहर में जो कोई बारात हो या वारदात
हर किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।[7]

आज नगरों में संबंध बड़ी मात्रा में बिगड़ रहे हैं। यहाँ एक पशु के रूप में गरजवंत काम करता रहता है। वहीं इंसान घर में अपने आपको इस तरह कैद करता है कि उसे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं। उसे कोई सरोकार ही नहीं रहता। परिवर्तन संसार का नियम है। समाज में बहुत सी बातें हैं जो पुरानी पड़ चुकी हैं। हमें पुरानी बातों को हटाना चाहिए और नई-नई बातों का स्वागत करना चाहिए। इसी बदलाव से हमारी उन्नति हो सकती है। इसी वास्तविकता को दुष्यंत जी ने अपनी गजल के माध्यम से व्यक्त किया है–

पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी
लपट आने लगी है अब हवाओं में भी
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी
यहाँ मासूम सपने जी नहीं पाते
इन्हें कुंकुम लगाकर फेंक दो तुम भी।[8]

शोषित स्त्री का चित्रण

स्मकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श संबधी कविताओं को पढने पर ज्ञात होता है कि उसके साथ कैसा व्यवहार हो रहा है और वहाँ अत्याचार अन्याय को चुपचाप कैसे सह रहा है। जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत उसमें नहीं दिखाई देती जिसकी वजह से शोषण तंत्र मजबूत होता जा रहा है। समकालीन कवि ने स्त्री पर होते रहे दमन को अपनी आँखों से देखते हुए स्पष्ट किया है कि अभी वह बद से बदतर जिंदगी जी रही है और निरंतर उपेक्षा की शिकार हो रही है। उसकी दयनीय स्थिति देखिए कि पहले वह लोगों के घरों में जूठे बर्तन माँजती थी लेकिन इससे गुजारा न होने पर वह अब ठेकेदार के पास काम करती है–

वह तोड़ती है पत्थर
ढोती है सीमेंट की बोरियाँ
फर्श बनाती है
ढलाई करती है छत की
और वह सब कुछ
जो ठेकेदार कहता है।[9]

अंतिम दो पंक्तियों से जाहिर है कि वह मजबूरी में यह सब-कुछ करने को तैयार होती है। उनके बच्चे आवारा कुत्तों की तरह गलियों से घूमते हैं और बच्चियों की तो दशा दर्दभरी है। कवि कहते हैं–

मुट्ठी-भर भुने चने या मूँगफली देकर
कोई भी उसकी बच्चियों को फुसला ले जाता है
वे नहीं जानती 'बलात्कार' शब्द
वे सुबक-सुबककर रोती हैं बस
और अपनी नन्ही नन्ही मैली हथेलियों से
अपने धूल से सने आँसू पोछती जाती हैं।[10]

स्त्री आज अपने घर में भी सुरक्षित दिखाई नहीं देती है। भाई बहन का पवित्र रिश्ता भी आज सिफ्र नाम का रह गया है। आज की स्त्री उपेक्षित, लाचार और शोषित दिखाई देती है। महानगर में कामकाजी लड़की किस तरह से तनाव और दानवों के बीच जी रही है इसे ज्ञानेंद्रपति ने अपनी कविता पुस्तक 'भितसार' में बखूबी प्रस्तुत किया है। ऑफिस में काम करनेवाली मिस बनर्जी नकली हँसी हँसते थक गई है। जीवन के जंगल में वास्तविक हँसी वह भूल गई है। बस, ट्रेन में सफर करते समय वह इज्जत लुटने के डर से भयभीत रहती है। इस डर के कारण वह रात को अच्छी तरह सो भी नहीं सकती। उसके परिवार के सदस्य इसके बारे में कुछ नहीं जानते।

विश्वनाथप्रसाद निवारी की कविता 'शब्द और शताब्दी की ही कविताएँ' हैं। उनकी 'तीर्थयात्रा' और 'वह लड़की' में भी नारी जीवन की कटु वास्तविकता देखने को मिलती है। स्त्री के प्रति समाज का नजरिया सदैव उत्पीड़नकारी रहा है। कवि ने एक स्त्री की दुनिया को बखूबी पहचानते हुए उसके सुबह बिस्तर से उठने से लेकर शाम को बिस्तर पर जाने तक की क्रियाओं का वर्णन किया है। वह घर के काम से लेकर बाहर सबके लिए सेविका के रूप में हाजिर है परंतु उसके लिए कोई सहानुभूति तक व्यक्त नहीं कर रहा है। उसके लिए किसी के पास कोई वक्त नहीं है। वह अपने को हर स्थिती में एडजस्ट कर लेती है। कम सामान में गुजारा कर लेती है। कवि ने कहा है–

दोपहर भोजन के आखिर दौर में
आ गए मेहमान
दाल में पानी मिलाकर
किया उसने अतिथि सत्कार
और खुद बैठी चटनी के साथ
बची हुई रोटी लेकर।[11]

स्त्री का जीवन घर के सभी सदस्यों के लिए समर्पित है लेकिन उसके लिए किसी के पास प्रेम से भरे दो शब्द भी नहीं हैं। वह कोल्हू के बैल की तरह काम में लगी रहती है। आज दुनिया में बड़े-बड़े बदलाव आ चुके हैं पर स्त्री की स्थिति में आया बदलाव आटे में नमक के समान है। वह परंपरागत साँचे में ढली हुई चुपचाप अन्याय को सह रही है लेकिन कवि कहते हैं कि स्त्री चुप है इसका मतलब वह गूँगी नहीं है। यह सही है कि तुम्हारे खिलाफ अकेले लड़ने में अनेक खतरे मौजूद हैं परंतु मैं उनसे नहीं घबराती। वह निडरता के साथ बुलंद आवाज में पुरुष को ललकार कर कहती है–

तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुजरती
मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर नसे
ताकि ठीक समय पर

ठीक तरह से कर सकूँ हमला
और बता सकूँ सरेआम गिरेबान पकड़
कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो।[12]

ऐसा होने पर सच में उसकी अपने वजूद की तलाश पूरी हो जाएगी और उसे इस तरह भटकना नहीं पड़ेगा।

निष्कर्ष

संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो रहे हैं। बाप बेटे के बीच वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ियों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी है जिससे परिवार में संघर्ष बढ़ता जा रहा है ऐसी संघर्षमय स्थिति में माता-पिता को समझौता करना पड़ रहा है या उन्हें परिवार छोड़कर वृद्धाश्रम में शरण लेनी पड़ रही है। महानगरीय स्त्री-पुरुष के लिए विवाह संस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। महानगरीय मानव अधिक सुख के लिए पूरा दिन भाग-दौड़ करता है। अर्थ महानगरीय मानव की कमजोरी है। अर्थ के लालच में लोग घिनौने से घिनौने कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अर्थ को पाने के लिए नारी अपना तन बेचती है तो पदोन्नति के लिए घर की नारी को दूसरों के सामने परोसा जाता है। समकालीन कविता में उन मूल्यों की तलाश की जा रही है जो आज नष्ट होते जा रहे हैं। बाजारवाद के गंभीर दुष्परिणाम के प्रति हमें सचेत होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के कारण हमारी सोच बिगड़ती हुई नजर आ रही है। भारतीय संस्कृति की सभ्यता को पहचानकर उसे फिर से अपनाने की जरूरत महसूस की जा रही है।

संदर्भ

1. पुतली में संसार, अरुण कमल, पृ॰ 58
2. रात में हारमोनियम, उदय प्रकाश, पृ॰ 124
3. अंनतिम, कुमार अंबुज, पृ॰ 69
4. साये में धूप, दुष्यंतकुमार त्यागी, पृ॰ 1
5. यह भी उर्मिला है, किरण अग्रवाल, पृ॰ 154
6. शब्द और शताब्दी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ॰ 21
7. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ॰ 30

मो॰ 9975381651

ISSN 0975-735X

साठोत्तरी हिंदी साहित्य का सशक्त प्रवाह : हिंदी दलित कविता

डॉ॰ तांबोळी एस॰बी॰
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा

हिंदी के दलित साहित्य का प्रारंभ कुछ लोगों ने बुद्ध साहित्य से माना है, तो कुछ सिद्ध और नाथों के साहित्य से मानते हैं। रैदास, कबीर से दलित चेतना का चित्रण काव्य में होने लगा यह मानने वाला एक वर्ग है तो श्री हीरा डोम की कविता को आधुनिक दलित साहित्य की पहली रचना मानने वाला एक वर्ग है। जयप्रकाश कर्दम के अनुसार, 'भारतेंदु हरिश्चंद्र के समकालीन 'मार्कंडेय' नामक एक दलित कवि थे। यह गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) के रहनेवाले और मोची थे तथा 'चिरंजीत' नाम से लिखते थे। उसी काल में इलाहाबाद निवासी 'सरसन' नामक दलित कवि भी कविताएँ लिखते थे।'[1]

हीरा डोम के समकालीन दूसरे महत्त्वपूर्ण कवि स्वामी अछूतानंद हरिहर हैं। अछूतानंद की पहली पुस्तक 'हरिहर भजनमाला' 1917 में आगरा से प्रकाशित हुई थी। आर्य समाज के उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण उन्होंने आर्य समाज से अलग होकर 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की और 'अछूत' मासिक पत्रिका का संपादन, प्रकाशन शुरू किया। अत:यह स्पष्ट होता है कि स्वामी अछूतानंद हीरा डोम से भी पहले काव्य रचना कर रहे थे। इसके अलावा यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि हीरा डोम की कविता भोजपुरी में हैं जो 'भाषा' नहीं 'बोली' है, तो स्वामी अछूतानंद की रचनाएँ खड़ीबोली में हैं। अछूतानंद ने कविता के अलावा नाटक भी लिखे तथा 'आदि हिंदू' नामक अखबार भी निकाला। नाटक, कविता, पत्रकारिता आदि विधाओं का सफल प्रयोग करनेवाले अछूतानंद हिंदी दलित साहित्य के आरंभिककाल के सबसे महत्त्वपूर्ण रचनाकार थे। जयप्रकाश कर्दम मानते हैं कि 'दलित साहित्य के प्रारंभिककाल को 'अछूतानंद युग' के नाम से उल्लेखित किया जाना चाहिए।'[2]

अपने समय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'चाँद' के मई, 1927 में प्रकाशित 'अछूत अंक' में मंगलप्रसाद विश्वकर्मा की कविता 'अछूत' तथा शोभाराम धनुसेवक की कविता 'अछूत आवेदन' मिलती है। हीरा डोम से लेकर धनुसेवक तक की कविताओं का स्वर न्याय की गुहार या गिड़गिड़ाहट का स्वर है; जबकि स्वामी अछूतानंद की कविताओं में अन्याय के प्रति विद्रोह और अधिकार चेतना का स्वर है, जो दलित साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। यही प्रतिशोध का स्वर आगे बिहारीलाल 'हरित' की रचनाओं में मिलता है। स्वातंत्र्योत्तरकाल से लेकर अस्सी के दशक तक का समय एक तरह से बिहारीलाल 'हरित' तथा उनके शिष्यों का समय है। हरित जी ने 'हरित साहित्य मंडल' बनाकर बहुत सारे लोगों को लिखने को प्रेरित किया। बिहारीलाल 'हरित' दलित स्वाभिमान के कवि थे। दलित समाज का प्रसिद्ध नारा 'जय भीम' की गर्जना का श्रेय भी बिहारीलाल 'हरित' को है। उन्होंने 1944 में डॉ॰ अंबेडकर के जन्मदिवस के अवसर पर डॉ॰ अंबेडकर की उपस्थिति में यह गीत गाकर 'जय भीम' का उद्घोष किया था–

नवयुवक कौम के जुट जावैं सब मिलकर कौम परस्ती में
'जय भीम' का नारा लगा करे भारत की बस्ती-बस्ती में।[3]

अंबेडकर के प्रति श्रद्धाभाव से हरित जी ने 'भीमायण' महाकाव्य लिखा। 'भीमायण' में उन्होंने उन सभी छंदों का प्रयोग किया है जिनका तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में किया है। 'वीरांगना झलकारी' उनकी महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें दलित वीरांगना के शौर्य और बलिदान की गौरवगाथा का चित्रण कर इतिहास के उन प्रसंगों और घटनाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है, जो दलितों के राष्ट्रप्रेम, त्याग और शौर्य से परिपूर्ण है। हापुड़ (उत्तरप्रदेश) के उर्दूकवि 'बूम' द्वारा 'चमारीनामा' लिखने पर आहत और आंदोलित होकर 'हरित' ने आपित्तजनक टिप्पणियों का माकूल जवाब 'चमारीनामा' लिखकर दिया। हरित जी के शिष्यों में मानसिंह 'मान', नाथूराम 'ताम्रमेली', नत्थूसिंह 'पथिक', यादकरण 'याद', भीमसेन 'संतोष', राजपाल सिंह 'राज', जसराज हरनौटिया, लक्ष्मीनारायण 'सुधाकर', रामसिंह निम और कुसुम वियोगी आदि प्रमुख हैं। इनमें से मानसिंह 'मान' की चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें 'मान मंजरी' और 'मान मनौती' काव्य हैं तो 'मान वर्तमान की ओर' गद्य और पद्य की मिश्रित रचनाओं का संग्रह है। उनकी भाषा में कबीर की अक्खड़ता है तो छंद के निर्वाह में हरित जी का प्रभाव है। ये रचनाएँ 1980 से 1990 के बीच प्रकाशित हुईं। नाथूराम 'ताम्रमेली' पुराने रचनाकार हैं। 1954 में उनकी छोटी-सी पुस्तिका 'भारत के वीर' प्रकाशित हुई, तो 1956 में 'वीरों की ललकार' प्रकाशित हुई है। वीर रस में डूबी देशभक्ति की रचनाओं के अलावा सामाजिक सद्भाव और समाज-सुधार उनकी रचनाओं का मुख्य विषय है।

नत्थूसिंह 'पथिक' की रचनाएँ मुख्यत: किसान, मजदूरों और देशभक्ति पर केंद्रित रहीं। उठो रे जवानो! नामक उनकी एकमात्र प्रकाशित रचना है। भीमसेन 'संतोष' की रचना 'कर्मयोगी' एक प्रकार से बाबासाहेब अंबेडकर की जीवनी है जिसमें गद्य और पद्य का समावेश है। यादकरण 'याद' एक प्रखर कवि और गायक रहे हैं। उनकी रचनाओं का मुख्य विषय राजनीति रहा है। उन्होंने 'कौमुदी' नामक पत्रिका का संपादन भी किया। अन्य कवियों में जसराम हरनौटिया का 'माटी के पूत' (2010) काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है। राजपाल सिंह 'राज' की कोई मुकम्मल काव्य कृति प्रकाशित नहीं हुई। रामसिंह 'निम' की डॉ॰ अंबेडकर के जीवन और संघर्ष पर केंद्रित काव्य कृति मिलती है। लक्ष्मीनारायण 'सुधाकर' के 'भीम शतक', 'अंबेडकर शतक', 'उत्पीड़न की यात्रा', 'बुद्ध सागर' ये काव्य रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें 'बुद्ध सागर' महाकाव्य है, जो दलित साहित्य में 'भीमायण' के बाद संभवत: एकमात्र महाकाव्य है जिसमें एक श्रेष्ठ महाकाव्य की सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। कुसुम 'वियोगी' के दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं–'व्यवस्था के विषधर' और 'टुकड़े-टुकड़े दंश'।

अँग्रेजी शिक्षा तथा आर्य समाज के सुधार आंदोलन से प्रभावित होकर दलित समाज में जागृति लाने के लिए कार्यरत जनकवि तथा लोकगायकों की रचनाएँ भी हीरा डोम तथा अछूतानंद के समकालीन समाज में मिलती है। हिंदीभाषी क्षेत्र में मेरठ के 'झंडूदास' के ख्यालों ने उत्तरीप्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र की दलित जातियों में जागृति का कार्य किया है। गुलावठी (जिला बुलंदशहर) के लोककवि एवं गायक श्री लक्ष्मणदास गाँव-गाँव जाकर दलितवर्ग को शिक्षा प्राप्त करने का आग्रह कर रहे थे–

जागो जाटव वीरो! क्यों देर लगाओ रे!

अब शुद्ध बनो पढ़-लिखकर आगे आओ रे![4]

झंडूदास-बख्शीदास की भजन एवं ख्यालों की पुस्तक 'जाटव सुधार' मेरठ से छपी है। इन लोककवियों ने अपने गीतों के माध्यम से दलितवर्ग की सांस्कृतिक अस्मिता जीवित रखी। उपदेशों के द्वारा समाज-सुधार और संघर्ष की प्रेरणा के साथ-साथ इन गीतों ने समाज का मनोरंजन भी किया। देश के विभिन्न प्रांतों तथा भाषाओं में इस प्रकार के लोककवि तथा गायकों का दलित अस्मिता के जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। गैरदलित रचनाकारों के द्वारा दलित समाज की स्थिति का सहानुभूति पूर्वक चित्रण प्रगतिशील विचारों के प्रभाव से होता रहा है। इनमें निराला, प्रेमचंद, हरिऔध, स्नेही, हृदयेश आदि महत्त्वपूर्ण नाम है। आगे चलकर नागार्जुन, रामकुमार वर्मा, मुक्तिबोध, दिनकर, अज्ञेय आदि कवियों ने भी दलित जीवन की त्रासदी का चित्रण अपने काव्य में किया है। 'हरित मंडल' के कवियों के साथ-साथ एन॰आर॰ सागर महत्त्वपूर्ण कवि हैं। सागर ने 1960 के दशक से निरंतर काव्य लेखन किया है। 'आजाद हैं हम' उनका एकमात्र प्रकाशित काव्य-संग्रह है। हिंदीदलित साहित्य में पूरी ओजस्विता और साहस के साथ अभिव्यक्ति करनेवाले सागर महत्त्वपूर्ण कवि हैं। मंशाराम विद्रोही इस दौर के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कवि हैं, 'दलित पचासा' और 'दलित मंजरी' उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ है। माताप्रसाद भी हरित जी के समकालीन कवि हैं। राजनीति में विधायक से राज्यपाल तक की यात्रा में उनकी कविता प्रवाहित रही। गयाप्रसाद 'प्रशांत' अंबेडकरवाद से प्रभावित कवि हैं।

हिंदी दलित साहित्य

हिंदी दलित साहित्य ने 1950 के बाद आंदोलन का रूप लेना शुरू किया। डॉ॰ अंबेडकर जब देश-विदेश के मंचों पर दलितों के लिए बराबरी के हक की माँग कर रहे थे, उसी समय विश्वभर में मार्क्सवाद से समाहित साहित्य की लहर उठ रही थी। सन् 1935 में ई॰एम॰ फास्टर की अध्यक्षता में दुनिया के प्रगतिशील साहित्यकारों का सम्मेलन हुआ, तो 1936 में मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना लखनऊ में हुई। प्रगतिवाद के प्रभाव से हिंदीकविता के विषय मजदूर, किसान, दबी-पिछड़ी जातियों के लोग, सामाजिक अंतर्विरोध, धार्मिक रूढ़ियों का विरोध, नारी के लिए समान अधिकार और सम्मान की माँग आदि बन गए। सन् 1947 में भारत आजाद हो गया। संविधान प्रदत्त अधिकारों के कारण दलितवर्ग के लोग नौकरी, राजनीति तथा शिक्षा के क्षेत्र में आगे आने लगे। लेकिन दलित काव्य में कोई महत्त्वपूर्ण रचनाकार उभरकर सामने नहीं आया। हिंदी कविता में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद से होकर जब अकविता का दौर चरम पर था इसी समय बंगाली में 'भूखी कविता' और मराठी में दलित कविता लिखी जा रही थी। इन सभी के प्रभाव के परिणामस्वरूप 1980 में 'भारतीय दलित साहित्य मंच' और 1982 में 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना हुई। इसके कारण हिंदी दलित साहित्य को पहचान पाने में मदद मिली।

हिंदी दलित कविता

1980 में भारतीय दलित साहित्य मंच द्वारा प्रकाशित 'पीड़ा जो चीख उठी' हिंदी में दलित कविताओं का पहला संकलन था, जिसमें 25 कवियों की कविताएँ संकलित थी। उससे पहले समानांतर साहित्य आंदोलन के माध्यम से दलित साहित्य के कुछ विशेषांक तथा स्वतंत्र रूप से अनुवाद हिंदी में प्रकाशित हुए थे। अप्रैल-मई, 1975 में प्रकाशित 'सारिका' का 'भारतीय

दलित साहित्य विशेषांक' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'संचेतना' का दिसंबर, 1982 में प्रकाशित (मराठी दलित साहित्य विशेषांक), दया पँवार कृत 'बलुतं' का अनुवाद 'अछूत', डॉ॰ सूर्यनारायण रणसुभे द्वारा संपादित 'दलित कहानियाँ', डॉ॰ चंद्रकांत पाटील द्वारा मराठी से अनूदित 'सूरज के वंशधर' प्र॰ई॰ सोनकांबले की कृति 'यादों के पंछी' आदि हिंदी दलित साहित्य के विकास मार्ग के मील के पत्थर हैं। इस पृष्ठभूमि से प्रेरणा लेकर हिंदी में भी दलित साहित्य का सृजन आरंभ हुआ अन्य आंदोलनों की तरह इस आंदोलन का प्रारंभ भी कविता से ही हुआ है।

'पीड़ा जो चीख उठी' हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पहला मुकम्मल प्रयास था, जिसने दलित चेतना के विभिन्न स्वरों को उनके तेवर के साथ समाज तक पहुँचाया और दलित साहित्य को हिंदी में आंदोलन के रूप में स्थापित करने में आधारभूत भूमिका निभाई। दलित साहित्य प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित मंशाराम विद्रोही और कर्मशील भारतीय की कविताओं का संग्रह 'दलित मंजरी' (1982) तथा भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा डॉ॰ अंबेडकर के जन्मशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित सौ दलित कवियों की कविताओं का संग्रह 'अंबेडकर शतक' (1990) प्रमुख है। संपादित कविता संकलनों में डॉ॰ एन॰ सिंह द्वारा संपादित 'दर्द के दस्तावेज' विशेष उल्लेखनीय है। स्वाभिमान और अधिकार चेतना से युक्त दलित कवियों का यह संग्रह महत्त्वपूर्ण है। इस में डॉ॰ प्रेमशंकर, डॉ॰ सुखबीरसिंह, डॉ॰ चंद्रकुमार वरठे, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डॉ॰ रामकिशोरीणी 'होरिल', दयानंद बटोही, डॉ॰ भूपसिंह, रघुनाथ प्यासा, नागार्जुन, धूमिल और स्वयं डॉ॰ एन॰ सिंह की कविताएँ संकलित हैं। आठवें और नौवें दशक में हिंदी दलित कविता में एक पूरी पीढ़ी सामने आती है। इनमें डॉ॰ मनोज सोनकर का 'शोषितनामा', डॉ॰ रामकिशोरीणी 'होरिल' के 'करील के काँटे' और 'जीवनराग', डॉ॰ सुखबीर सिंह का 'बयान बाहर', 'अनंतर' और 'सूर्यांश', डॉ॰ प्रेमशंकर के 'नई गंध' और कविता 'रोटी की भूख तक', डॉ॰ दयानंद बटोही' का 'यातना की आँखें', डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर का 'अंधा समाज और बहरे लोग', डॉ॰ पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का 'सवालों के सूरज' तथा 'बिक चुका हो समय जब', डॉ॰चंद्रकुमार वरठे का 'अधूरी चिट्ठी रोशनी की', ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सदियों का संताप', लालचंद राही का 'मूक नहीं मेरी कविताएँ', जयप्रकाश नवेंदु का 'कविताएँ 1991', हरिकिशनसंतोषी का 'कमलिनी', डॉ॰ एन॰ सिंह का 'सतह से उठते हुए' आदि महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह हैं।

मध्यकालीन रैदास, कबीर से लेकर नौवें दशक तक की हिंदी कविता में दलित जीवन का विभिन्न रूपों में चित्रण हुआ है। हिंदीभाषा के क्षेत्र में आर्य समाज के प्रभाव से दलित समाज के उत्थान के जो प्रयास हुए उनमें प्रबोधन के लिए, दलित समाज में होनेवाली कुरीतियों का विरोध किया गया। झंडूदास-बख्शीदास के भजन एवं ख्यालों में सुधार और संघर्ष का रूप दिखाई देता है–

कहै सुनै को जाटव भाई नहीं समझ में लाते हैं
कहीं किसी की होय सगाई बकरे को कटवाते हैं
मांस खाय और मदिरा पीकर कुफ्र मनाते हैं
चाहे पास न चिलम तमाखू कर्ज काढ़ के लाते हैं।[5]

दलितों के प्रति होनेवाले उपेक्षापूर्ण व्यवहार को दर्शाते हुए स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' कहते हैं–

मैं अछूत हूँ, छूत न मुझमें, फिर क्यों जग ठुकराता है?

 ISSN 0975-735X

छूने में भी पाप मानता छाया से घबराता है।[6]

डॉ॰ अंबेडकर के प्रयासों के कारण राष्ट्रीय काँग्रेस भी दलितों के प्रश्नों को उठाने के लिए विवश हुई। गांधीजी के कारण स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ समाज सुधार, अस्पृश्यता निवारण की ओर भी लोगों का ध्यान गया। इसी कारण प्रेमचंद तथा अन्य रचनाकारों ने दलित समाज की हीन अवस्था का चित्रण किया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'छूत-छात के चौपदे', आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'अछूत की आह', पं॰ माधव शुक्ल की 'हम अछूत-हरिजन', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'अछूत', 'हरिजन गीत', मैथिलीशरण गुप्त की 'अछूत', भगवतीचरण वर्मा की 'हिंदू', सियारामशरण गुप्त की 'एक फूल की चाह', निराला जी की 'दलित जनों पर करो करुणा', सुमित्रानंदन पंत की 'अस्पृश्य', हरिकृष्ण प्रेमी की 'वंदना के फूल', आरसीप्रसाद सिंह की 'हरिजन', 'जातिरंग देश के!' आदि कविताएँ अछूतोद्धार के आंदोलन से प्रेरित हैं। इनमें दलित समाज की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए उसके उद्धार का आह्वान किया गया है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'जूठे पत्ते', 'हम विषपायी जनम के', हरिवंशराय बच्चन की 'मिट्टी के द्रोणाचार्य', अवधबिहारी अवधेश की 'छूत छत्तीसी', रामधारीसिंह दिनकर की 'हाहाकर', 'दिल्ली और मास्को', रांगेय राघव की 'स्वस्तिवचन', शिवमंगलसिंह 'सुमन' की 'प्रलय सृजन', पंत की 'जाति वर्ण संस्कृति समाज से', डॉ॰ रामविलास शर्मा की 'कार्यक्षेत्र और शील की वैश्या का प्रतिरोध' ऐसी ही कविताएँ हैं, जिन्हें दलित जीवन का चित्रण करने वाली कविताएँ कहा जा सकता है।

स्वतंत्रता के पश्चात दलित जाति के कई महापुरुषों पर प्रबंधकाव्य लिखे गए। इनमें डॉ॰ राजकुमार वर्मा का 'एकलव्य', अगेनदास सिंह का 'भीमचरित मानस', लक्ष्मीनारायण सुधाकर का 'भीम सागर', बिहारीलाल 'हरित का 'जग जीवन ज्योति' आदि महाकाव्य हैं, तो धनंजय अवस्थी का 'शबरी', नरेश मेहता का 'शबरी', जगदीश गुप्ता का 'शंबूक वध', माताप्रसाद का 'एकलव्य', चोखेलाल वर्मा का 'वीरांगना झलकारी बाई' खंडकाव्य हैं। 1980 के बाद मराठी दलित साहित्य से प्रभावित होकर हिंदी में जो दलित कविता लिखी गई उसमें डॉ॰ अंबेडकर के प्रति श्रद्धा का भाव, दलित चेतना की जागृति के कारण धर्म तथा जाति-व्यवस्था का विरोध, अत्याचारों का चित्रण, आरक्षण, असमानता का विरोध, आक्रोश, मिथकों का खंडन आदि विशेषताएँ दिखाई देती हैं। दलित वर्ग के उत्थान के लिए डॉ॰ अंबेडकर को बुद्ध का अवतार मानते हुए कवि पी॰डी॰ टंडन लिखते हैं–

हुंकार है अंबेडकर, ललकार है अंबेडकर
शोषितजनों की नाव का पतवार है अंबेडकर
इंसान को इंसाफ दे इंसा बना दिया
उजड़े हुए चमन में बहार है अंबेडकर।[7]

दलित समाज के साथ सदियों से हो रहे पक्षपात और अत्याचार के कारण जो पीड़ा उस वर्ग को झेलनी पड़ी है उसका चित्रण इस कविता में हुआ है–

जब कभी जिह्वा निकाली
काट ली जिह्वा हमारी
इस तरह हम जी रहे हैं
घूँट विष का पी रहे है।[8]

भोगे हुए यथार्थ को इस कविता में अभिव्यक्त किया गया है। डॉ॰ भरत सगरे कहते हैं– 'पसीना और आँसू मिलाकर लिखा काव्य दलित जीवन की व्यथा की कथा है... यह कविता अपमानित पीढ़ियों से उपजी है।'[9] इस अपमान को दर्शाते हुए राकेश प्रियदर्शी लिखते हैं–

मैं कई सौ वर्षों तक तुम्हारी प्रताड़ना सहता रहा
चीखता-चिल्लाता रहा और तुम मेरी वेदना, मेरी पीड़ा
मेरी चुभन, मेरी घुटन, मेरी छटपटाहट को अनदेखा कर
जालिम न्याय प्रणाली की दुहाई देते रहे।[10]

सदियों की यह वेदना 'दलित कविता' में लावा बनकर फूट पड़ी है। अब कवि मूक होकर अत्याचार सहने की अपेक्षा डॉ॰ अंबेडकर की प्रेरणा से परिस्थितियों से जूझना चाहता है। 'अधिकार युद्ध' कविता में श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधाकर' यह घोषणा करते हैं–

यदि मिले नहीं अधिकार हमें तो, ईंट से ईंट बजा देंगे
अन्यायी अत्याचारी के शोणित से नदी बहा देंगे
हम आदिवासी भारत के कुछ करके अब दिखला देंगे
अब तक तो दास गुलाम रहे, अब गिन-गिनकर बदला लेंगे।[11]

अज्ञान, गरीबी, बेकारी में जबरदस्ती से धकेलने वाले उच्चवर्णियों को अब कवि ललकार रहा है। कँवल भारती अपनी कविता 'तब तुम्हारी स्थिति क्या होती' में लिखते हैं–

यदि वेदों में लिखा होता, ब्राह्मण
ब्रह्मा के पैर से हुए है पैदा,
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?[12]

अपने लिए विशेष अधिकार सुरक्षित रखते हुए दलितवर्ग को साधनहीन बनाकर उस पर धर्म, कर्म का जाल बिछाने वाले, आत्मा, परमात्मा के फेर में उलझाने वाले ब्रह्मवृंद को चुनौती देते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं–

चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्मा का अंश क्यों नहीं होती है?
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों?[13]

ज्ञान के आलोक से दूर, धन-संपित्त से अधिकार विहीन दलित समाज की दुर्दशा और उत्पीड़न पर दृष्टिपात करते हुए श्री एन॰आर॰ सागर कहते हैं कि यही दशा उच्चवर्णियों की होगी तो उन्हें कैसा लगेगा?

यदि तुम्हारी बहनों-बेटियों को
सर्वथा निर्वस्त्र कर घुमाया जाए
गली-गली नचाया जाए
कसे जाएँ गंदे फिकरे
और किया जाए बलात्कार
सडकों-चौराहों पर
सामने तुम्हारे

तब तुम्हें कैसा लगेगा?[14]

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद दलितवर्ग को संवैधानिक सुरक्षा एवं अधिकार प्राप्त हुए, लेकिन सवर्ण मानसिकता के प्रभाव से दलित उत्पीड़न तथा पक्षपात की घटनाएँ भी बढ़ गईं, इसी कारण सतनामसिंह लिखते हैं–

सर्पदंश से भी जहरीले
सवर्ण दंश के
हजारों निशान मौजूद है
हम दलितों की
छाती पर।[15]

जहाँ इंसान कीड़े-मकौड़ों की तरह जीता है, वहाँ गाय और गोबर की रक्षा करने की बातें करने वाला धर्म, उसकी मान्यताएँ जिसमें भाग्य, पूर्व जन्म का फल, विकृत रूढ़ियाँ, पुराण, दोहरे मापदंडों की भरमार है। इन सभी को दलित कवि नकारता है। मोहनदास नैमिशराय कहते हैं–

जब मेरे भीतर उठता है सवाल–
ईश्वर का जन्म
किस माँ की कोख से हुआ
ईश्वर का बाप कौन?[16]

पुराने मिथकों को दलित कविता में अस्वीकार किया गया है। सवर्णों के अहम को गौरवान्वित करने के लिए गढ़े गए प्रतीक तथा मिथकों को तोड़कर उन्हें नया अर्थ प्रदान किया गया है। रमणिका गुप्ता के अनुसार–'ये प्रवृत्ति ऐसे नए समाज के निर्माण में सहायक हो रही है; जो भारतीय मानसिकता की जड़ता और कुंठा को तोड़े और जहाँ कोई युधिष्ठिर जुए में पत्नी को हारकर धर्मराज न कहलाए, जहाँ कोई गुरु एकलव्य का अँगूठा काटकर गुरु बना न रह सके, जहाँ पत्नी-त्यक्ता, शंबूक-हंता, बाली छलता राम, मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं कहलाए।'[17] पुरानी परंपरा, प्रतीक, मान्यताओं को अस्वीकार करते हुए डॉ॰ अंबेडकर की प्रेरणा से सम्मान और समानाधिकार की अपेक्षा दलित कविता में उभरने लगी।

निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो कब मध्यकालीन संतकवियों ने जातिगत असमानता का विरोध करके आध्यात्मिक समता की बात की। नवजागरण के काल में समाज सुधार की दृष्टि से दलितवर्ग के उत्थान के जो साहित्यिक प्रयास हुए उनमें अधिकतर सहानुभूति के कारण हुए हैं। जबसे दलित समाज के लोग पढ़ने-लिखने लगे, डॉ॰ अंबेडकर जैसा नेतृत्व निर्माण हुआ, तब इस समाज में चेतना जाग्रत हुई। गांधी तथा अन्य समाज सुधारकों के कारण दलित समाज अपनी दयनीय दशा के बारे में सोचकर साहित्य के माध्यम से अपनी पीड़ा प्रकट करने लगा। हिंदी साहित्य में अस्सी के दशक के बाद लिखी गई कविता में परंपरा के प्रति विद्रोह, पक्षपाती मान्यताओं का अस्वीकार, अत्याचार के खिलाफ आक्रोश मुखर हुआ है। शोषण से मुक्ति, जाति-व्यवस्था का विरोध, अमानवीय अत्याचार से संघर्ष की भावना बलवती होकर प्रकट हुई है। अपनी स्थिति के प्रति होनेवाला अज्ञान और गिड़गिड़ाहट से आगे बढ़कर यह वर्ग विद्रोह और संघर्ष के माध्यम से अपने अधिकार पाने के लिए जुट गया, जिसका चित्रण वर्ग चिंतन से आगे बढ़कर सही अर्थों में मानव मुक्ति के लिए प्रयासरत होकर मानवीय जीवन को बदतर स्थितियों से बेहतर स्थिति तक पहुँचाने का माध्यम बनकर हिंदी काव्य में प्रस्फुटित हुआ है। विषयवस्तु, भाषा,

प्रतीक, तीखे तेवर के कारण हिंदी में दलित काव्य की प्रभावी और सशक्त धारा का निर्माण हुआ है।

संदर्भ

1. 'बयान' दलित अस्मिता विशेषांक, मार्च-अप्रैल 2007, जयप्रकाश कर्दम, (दलित कविता का उद्‌भव और विकास), पृ॰ 66
2. वही, पृ॰ 67
3. वही, पृ॰ 67
4. संपा॰ डॉ॰ एन॰ सिंह, दलित साहित्य : चिंतन के विविध आयाम, आम प्रकाशन, सं॰ 1996, पृ॰ 28 (डॉ॰ प्रेमशंकर दलित संघर्ष : संस्कृति एवं साहित्य की सबलअभिव्यक्ति)
5. वही, पृ॰ 28
6. संपा॰ डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, सं॰ 2002, पृ॰ 45
7. पी॰डी॰ टंडन, बुद्ध का अवतार है अंबेडकर, निर्णायक भीम, मार्च 1979, कानपुर, पृ॰ 7
8. डॉ॰ प्रेमशंकर, 'यथास्थिति', निर्णायक भीम', मार्च 1978, कानपुर, पृ. 10
9. डॉ॰ भरत धोंडीराम सगरे, हिंदी कविता में चित्रित दलित जीवन और चेतना, 8-9जुलाई 2006, सोलापुर, पृ॰ 87
10. राकेश प्रियदर्शी, दलित साहित्य (वार्र्षिकी) 2005, संपा॰ डॉ॰ जयप्रकाश कर्दम, पृ॰ 358
11. दलित साहित्य (वार्षिकी) 1999, संपा॰ डॉ॰ जयप्रकाश कर्दम, पृ॰ 281-282
12. कँवल भारती, तब तुम्हारी स्थिति क्या होती? दैनिक नवभारत टाइम्स, दिल्ली, 31 मार्च 1991
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि, शायद आप जानते हो?, दैनिक नवभारत टाइम्स, दिल्ली, 26 जुलाई 1992
14. एन॰ आर॰ सागर, तब तुम्हें कैसा लगेगा?, बयान दलित अस्मिता विशेषांक, मार्च-अप्रैल 2007, पृ॰ 73
15. सतनाम सिंह, सर्पदंश नहीं सवर्ण दंश, दलित साहित्य (वार्षिकी) 2005, संपा॰ डॉ॰जयप्रकाश कर्दम, पृ॰ 355
16. मोहनदास नैमिशराय, आग और आंदोलन, भारतीय बौद्ध महासभा, दिल्ली, सं॰2000, पृ॰ 44
17. रमणिका गुप्ता, दलित चेतना, साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, सं॰ 2001, पृ॰ 83

Mob.9422405006
sadiktamboli67@gmail.com

साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना
(जनकवि नागार्जुन के संदर्भ में)

प्रा॰ नवनाथ जगताप
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्री. संत दामाजी महाविद्यालय,
मंगलवेढ़ा, जिला सोलापुर (महाराष्ट्र)

'जनवाद' शब्द अँग्रेजी के डेमोक्रेसी शब्द का प्रतिरूप है। हिंदी में डेमोक्रेसी शब्द के लिए जनवाद के अतिरिक्त प्रजातंत्र, लोकतंत्र, जनतंत्र, जम्हूरियत, लोकशाही आदि शब्दों का प्रयोग होता है। शाब्दिक अर्थ–डेमोक्रेसी शब्द ग्रीक भाषा के 'देमोस' और 'क्रेटीन' नामक दो शब्दों को मिलाकर बना है। देमोस का शाब्दिक अर्थ है–'जनता' और क्रेटीन धातु का शाब्दिक अर्थ है–'शासन करना'। अत: डेमोक्रेसी का शाब्दिक अर्थ हुआ–'जनता का शासन'।

साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना

स्वतंत्रता, राजनीति और बेहतर समाज के आदर्शवादी स्वप्न से जब मोह भंग हुआ, भारतीय मेहनतकश अपनी मीठी नींद से जागा तो उसकी आँखों में अंगारे थे–नक्सलवादी विद्रोह, तेलंगना का किसान विद्रोह, कृषक क्रांति, अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए लड़ाई। भूखे-नंगे समाज, जिसे राजनेताओं ने भविष्य के सुनहरे सपनों में पगी अफीम की गोली पिलाकर नशे में मूकदर्शक बनाकर बैठा दिया था। वह जब मोहभंग की स्थिति में पहुँचा तो न सिर्फ उसकी आँखों में धोखा दिए जाने के कारण प्रतिशोध की लाली थी बल्कि उसकी चेतना और शरीर ने भी आंदोलन की मुद्रा धारण कर ली।

नागार्जुन की कविता में जनवादी चेतना

नागार्जुन स्वाधीनता पश्चात भारत के जनवादी हिंदी काव्य के प्रतिनिधि जनकवि के रूप में सुविख्यात हैं। वास्तव में यह बात ध्यान देने की है कि बाबा को अपने जनकवि होने की जिम्मेदारी का भी एहसास है। इसीलिए नागार्जुन कहते हैं–

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बताऊँ
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा क्यों हकलाऊँ
जनकवि हूँ मैं क्यों चाटूँ थूक तुम्हारी
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बंदूक तुम्हारी।[1]

प्रतिहिंसा नागार्जुन के काव्य की शक्ति है। नागार्जुन की इस प्रतिहिंसा ने किसी को भी नहीं छोड़ा है, चाहे वह महात्मा गांधी हो, चाहे नेहरू, पुलिस के अफसरों की तो गिनती ही क्या! 'तुम रह जाते दस साल और' नामक कविता में नागार्जुन ने नेहरू के शासन की उपलब्धियों की

चर्चा करते हुए कहा है–

हम चावल लाते एक किलो, दस का दे आते नोट मगर
यों सिकुड़े रहते, सपने में सिलवाते ऊनी कोट मगर
गालियाँ छलकती, बैलों की जोड़ी को देते वोट मगर
हम गाँजा ही बेचा ही करते लेते खादी की ओट मगर।[2]

नागार्जुन जानते हैं कि वास्तव में इस दुनिया में दो दुनिया हैं–एक गरीबों की और एक अमीरों की, एक शोषितों की और एक शोषकों की। सामाजिक-आर्थिक विषमता को नागार्जुन ने जबरदस्त और सीधे ढंग से प्रस्तुत किया है। नागार्जुन की जनवादी चेतना के कारण उनका दुख-दर्द नागार्जुन की कविताओं में पूरी ताकत के साथ व्यक्त हुआ है–

भूसी मिला-मिलकर चीनी
बेच रहा बनिया का बेटा
कंकालों पर बिछा दी गई
खद्दर की सतरंगी चादर
बंदूकें हँस पड़ीं कि देखा
चंदन के चरने का आदर।[3]

नागार्जुन ने हिंदी कविता को इस योग्य बनाया कि वह मायकोवस्की की यह इच्छा पूरी कर सके। उन्होंने बार-बार स्वयं को जनकवि कहा है–

हठधर्मी जनकवि में
जनकवि हो तो तुम्हीं बताओ
मैं जनकवि हूँ।[4]

सन् 1971 में लिखी कविता में 'रहे गूँजते बड़े देर तक' में वे छोटे-छोटे बच्चों से तुतलहाट वाले स्वर में मेले नाम, तेले नाम' सुनते हैं और सोचते हैं कि निर्भय होकर शोषण की बुनियादें वह खोदेंगे। संघर्षरत जनता कहती है–

जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक।[5]

जनवादी चरित्र के अनुरूप नागार्जुन की रचनाशीलता काफी गहरी है। हिंदी के प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन एकमात्र ऐसे कवि हैं। नागार्जुन की कविता का मुख्यांश साधारण जन की जिंदगी और उस जिंदगी के बीच से प्राप्त की गई गहन अनुभूतियों, विचारों और कल्पनाओं से निर्मित है, वह जिंदगी जो जनता जी रही है और जिसे एक बेहतर मानवीय शक्ल देने के लिए निरंतर संघर्षरत है।

नागार्जुन ने अपने जनचेतना का साक्ष्य देते हुए सामाजिक जीवन के स्तर पर प्रात होनेवाली गरीबी, भुखमरी, अभाव, शोषण एवं अमानवीय स्थितियों का प्रचुर मात्रा में चित्रण किया है। कवि अपने समाज और जनजीवन के प्रति अपनी स्पष्ट एवं दृढ़ प्रतिबद्धता खुलकर व्यक्त करता है–

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित एवं 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
विवेकी भीड़ की 'भेड़िया धसान' के खिलाफ

 ISSN 0975-735X

अंध-बधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए
अपने-आपको भी 'व्योमह' से बारंबार उबारने के खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।[6]

'प्रेत का बयान' कविता में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाली जनता के दारिद्रय की कसक पूरी मार्मिकता से व्यक्त होती है–

धरती थी, माँ थी, बच्चे थे चार
आ चुके हैं दयासागर करुणा के अवतार
अपने ही छाया में,
मैं ही था बाकी
क्योंकि करमी की पत्तियाँ अभी शेष थीं
हमारे अपने पुश्तैनी पोखर में
मनोबल शेष था सूखे शरीर में।[7]

नागार्जुन ने मजूदरों की असहाय स्थिति का खुलकर चित्रण किया है। मजदूरों की स्थिति पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदतर होती जा रही है, उसमें कोई सुधार नहीं आ रहा है। इस स्थिति को उन्होंने 'तालाब की मछलियाँ' कविता में चित्रित किया है–

मैं दरिद्र हूँ
पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके-जैसी जीभ से
मेरा लहू चाटती आई।[8]

हमारे देश में किसान और मजदूरों की स्थिति अब भी गरीब है। आज भी उन्हें भूखे सोने की नौबत आती है। नागार्जुन की कई कविताएँ अनुभववादी हैं। उनकी कविता मिथिलांचल के जनजीवन से जुड़ी है। 'अकाल और उसके बाद' इसका सुंदर उदाहरण है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।[9]

नागार्जुन की सामाजिक चेतना की एक विशिष्टता यह है कि उनकी दृष्टि व्यापक और भावनाएँ उदार हैं। इसीलिए जहाँ एक ओर उनकी कविताओं में किसानों एवं मजदूरों के जीवन की विभिन्न स्थितियों एवं अनुभवों की व्यापक रचनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है वहीं दूसरी ओर मध्यम श्रेणी के कर्मचारी, शिक्षक आदि को भी पर्याप्त स्थान मिला है। नागार्जुन इन सबको सर्वहारावर्ग में स्थान देते हैं। इस दृष्टि से 'मास्टर' कविता की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

घुन-खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के साँचे।[10]

निष्कर्ष

नागार्जुन जिस जमीन पर खड़े होकर लाखों सामान्यजन को चित्रित करते हैं वह देश के जनसाधारण की अपनी जमीन अपनी मानसिकता है। नागार्जुन की जनवादी चेतना उनके पूरे

रचनाकार के साथ देश के लाखों साधारणजन के साथ आत्मसात हो गई। नागार्जुन की जनवादी चेतना ने अपने को पूरी तरह डी-क्लास करके देश के जनसाधारण की चेतना के साथ पूरी तरह एकात्म करके उन्हें जनसाधारण के प्रतिनिधि रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

संदर्भ

1. नागार्जुन, प्यासी पथराई आँखें, वाणी प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 45
2. नागार्जुन, बुकलेट, वाणी प्रकाशन कानपुर, कानपुर, पृ॰ 69
3. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, वाणी प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 84
4. नागार्जुन, रत्नगर्भा, वाणी प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 1
5. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरम, वाणी प्रकाशन, कानपुर, पृ॰
6. संपा॰ शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली (खंड 2), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ॰ 130
7. वही, पृ॰ 171
8. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, वाणी प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 157
9. संपा॰ शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली (खंड 2), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ॰ 182
10. वही, पृ॰ 249

Mob. 9765318383
Email : navnathjagtap70@gmail.com

हिंदी सिनेमा में लोकसंस्कृति

डॉ॰ विनीता रानी
एसोसिएट प्रोफेसर
जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सिनेमा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त और प्रभावशाली माध्यम है। सिनेमा मनोरंजन के साथ सामाजिक ताने-बाने को भी हमारे सामने रखता है। अपने शुरुआती दौर में सिनेमा धर्म से प्रभावित रहा। 'सावित्री', 'लंका-दहन', 'हरिश्चंद्र', जैसी फिल्में बनीं। लोगों ने भी धार्मिक फिल्मों को पसंद किया। धार्मिक फिल्मों से मोहभंग होने के बाद तत्कालीन समस्याओं, सामाजिक, पारिवारिक, ऐतिहासिक प्रेमकथाओं तथा युद्धों पर भी फिल्में बनीं। दहेज, वेश्यावृत्ति, जातिप्रथा, जमींदारों का शोषण, परिवारिक समस्याओं तथा कुरीतियों को लेकर भी बेहतरीन फिल्में बनीं। जहाँ साहित्य समाज का दर्पण है वहीं सिनेमा से भी समाज सापेक्ष रहा है। उसमें लोकतत्त्व हमेशा से रहा है। सिनेमा लोकसंस्कृति का वाहक रहा है।

सन् 1957 ई॰ में महबूब खान द्वारा निर्देशित फिल्म 'मदर इंडिया' भारतीय लोकसंस्कृति की परदे पर हुई सबसे सटीक और सशक्त व्याख्या है। फिल्म में लोक के सभी रंग देखे जा सकते हैं। फिल्म के गीत लोकधुनों पर आधारित लोकरंग से सराबोर हैं। 'मदर इंडिया' हिंदी सिनेमा के इतिहास में एक मजबूत फिल्म होने के साथ-साथ भारतीय ग्रामीण लोकसंस्कृति की झलक को हमारे सामने लाती है। गाँव अपनी संपूर्णता में यहाँ साकार होता है। 'घूँघट नहीं खोलूँगी सैंया तोरे आगे', 'गाड़ी वाले गाड़ी धीरे हाँक रे' जैसे गीत लोकधुनों पर रचे गए हैं। दो बीघा जमीन, गबन, गोदान, दो बूँद पानी, परिणति और पहेली जैसी तमाम फिल्मों में हम लोकसंस्कृति की झलक देख सकते हैं। जिसमें किसान जीवन की विडंबना, आजीवन संघर्ष, पसीना और आँसू सभी कुछ है। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'मारे गए गुलफाम उर्फ तीसरी कसम' पर आधारित 'तीसरी कसम' बेहतरीन क्लासिकल फिल्म मानी जाती है। गाँव का दुख-दर्द, निश्छल स्वभाव, भोलापन, स्त्री जीवन की विडंबना तथा निश्छल उदात्त प्रेम को देखा जा सकता है। लोकजीवन की महक को यहाँ महसूस किया जा सकता है। 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे पिंजरे वाली मुनिया' जैसे लोकधुन पर आधारित गीत मेहनतकश ग्रामीणों की मानसिक और शारीरिक खुराक है, जिसे सुनकर वह सारी थकान विस्मृत कर देता है। 'लाली लाली डोलिया में लाली रे दुल्हनिया गीत', किशोरी के मन को गुदगुदाने के साथ बेहद मार्मिक और सहज बिंब है, जिन्हें केवल महसूस किया जा सकता है। नौटंकी जैसे उत्तर प्रदेश के लोकनाट्यों को फिल्म द्वारा भारतीय जनमानस से प्रस्तुत करवाना फिल्मकार का उद्देश्य है, जो लोकसंस्कृति के प्रति निर्माता निर्देशक की अगाध श्रद्धा को प्रकट करता है। राजश्री बैनर के तले बनी 'नदिया के पार' भी लोकरंग में रँगी फिल्म है। इस फिल्म में सोहर गीत, विवाह गीत, मनौती गीत तथा होली के

अवसर पर गाए गए फाग के रंग को भी देखा जा सकता है। बातचीत में भोजपुरी और अवधी भाषा का पुट देखा जा सकता है। 'कौन दिसा में लेके चला रे बटुहिया' जैसे गीत ग्रामीण जीवन की सहजता और सरलता को चित्रित करते हैं। लोक भाषा और लोकधुनों का एक अलग ही सुरूर होता है। 'शोले' फिल्म की मौसी को कौन भूल सकता है। ठेठ भाषा में उनके संवादों ने उनको अमर कर दिया।

मृणाल सेन की 'भुवन शोम' से समांतर सिनेमा की शुरुआत मानी जा सकती है, हालाँकि यह फिल्म लोक को प्रस्तुत करती है। श्याम बेनेगल जैसे निर्देशक लोक की नब्ज को मजबूती से पकड़ते हैं। अंकुर में ग्रामीण पृष्ठभूमि, जमींदारी प्रथा तथा किसानों के अंतहीन संघर्ष को देखा जा सकता है। ग्रामीण भारत की समस्याओं के साथ-साथ दलित महिलाओं का जमींदारों द्वारा भरपूर इस्तेमाल को देखा जा सकता है।

हिंदी सिनेमा ने लोक की विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों द्वारा हिंदीभाषा को समृद्ध करने का काम किया है। 'गंगा जमुना', 'नदिया के पार', 'बैरागी', 'गोपी', 'धड़क', 'परिणीता', 'परिणति', 'दबंग', 'साँड की आँख', 'बत्ती गुल मीटर चालू', 'सुल्तान', 'चैन्नई एक्सप्रेस', 'माउंटेन मेन', 'ड्रीम गर्ल', 'मोतीचूर चकनाचूर', 'बधाई हो', 'दो बूँद पानी', 'पदमावत', 'पीपली लाइव', 'दम लगा के हाइसा', 'आर्टिकल 15', 'काला', 'पैडमेन', 'केसरी', 'वीरजारा', 'पहेली' तथा 'गदर एक प्रेमकथा' जैसी सैंकड़ों फिल्में हैं जो लोकजीवन के लोक खुशबू से सराबोर हैं। वर्तमान में क्षेत्र विशेष की भाषा को इतने सधे तरीके से और सहज सरल रूप में दिखाया जा रहा है। लोक की महक दर्शक को सम्मोहित करती है। आयुष्मान खुराना द्वारा अभिनीत बहुत सी फिल्मों में इसे देखा जा सकता है। जिस प्रकार अँग्रेजी के बढ़ते प्रचार-प्रसार के कारण हिंदीभाषा उपेक्षित हो रही है, ऐसे में क्षेत्रीय लोकभाषाओं की तरफ लौटना एक सुखद एहसास है। अच्छी बात यह है दर्शकों को ये फिल्में करीब लाती हैं, दर्शक इन ठेठ बोलियों के माध्यम से अपने को जुड़ा हुआ महसूस करता है। 'बधाई हो' फिल्म में सुरेखा सीकरी ने जिस प्रकार मेरठी खड़ीबोली में संवाद अदायगी की वह दर्शकों द्वारा खूब सराही गई। इसी प्रकार 'नदिया के पार' और 'तीसरी कसम' जैसी फिल्मों में उसकी ठेठ भोजपुरी भाषा, आंचलिकता को उसके गीतों के माध्यम से बखूबी समझा जा सकता है।

हिंदी सिनेमा अपने मधुर संगीत के लिए भी जाना जाता है। गीत संगीत हमेशा से हमारी लोकसंस्कृति का अंग रहा है। हमारे पर्व, तीज-त्यौहार और रस्मों-समारोहों में ही नहीं, बिजली से अछूते गाँवों में आटा पीसने वाली घट्टियों की घर-घर में, जूतों की चरर-मरर में, पनघट पर जाती गोरी में, धान कूटते समय मूसलों की धप-धप में, रहट की टट्टियों में, चूल्हे की धधकती आँच में, टपकते छान-छप्पर में, मिट्टी में सने नंग-धडंग बच्चों में, खेत-खलिहानों में, जमींदार के जुल्म में, ठठेरे द्वारा बर्तन ढालते समय उसकी टन-टन में, घर बनाने के दौरान छेनी-हथौड़ा की खनन-खनन में हुक्के की गुड़गुड़ाहट में, इसकी गूँज हर तरफ है।

लोकगीत जो गाए जाते हैं उनकी अपनी धुनें होती हैं। संस्कार गीतों की अपनी धुनें होती हैं, श्रमगीतों की अपनी, जातीय धुनों की अपनी। फिल्मों में इन धुनों का खूब प्रयोग हुआ है। इन धुनों पर फिल्मी गीत रचे गए हैं। बहुत बार इन धुनों और गीतों में फेरबदल करके इस्तेमाल किया गया है। आज से लगभग हजार वर्ष पूर्व अमीर खुसरो की रचना 'काहे को ब्याही बिदेस' छाप तिलक सब छीनी रे तोसे नैना मिलाय के' का बहुत बार फिल्मों में इस्तेमाल हो चुका है। 1958

 ISSN 0975-735X

में काला पानी फिल्म का गाना 'नजर लागी राजा तोरे बंगले पर' लोकधुन पर आधारित गाना है, 2012 में ऐजेंट फिल्म में मुजरे के लिए 'दिल मेरा मुफ्त का' लोकधुन का प्रयोग हुआ है। यह बात और है कि यह गाना आइटम सांग बनकर रह गया। 2012 में अनुराग कश्यप द्वारा निर्देशित फिल्म 'गैंग्स आफ वासेपुर' में 'तार बिजली से पतले हमारे पिया' लोकगीत पर आधारित गीत है। जो विवाह में मेहँदी के अवसर पर गाया जाता है। इसमें पारंपरिक चम्मच से ढोलक पीटने पर निकलने वाली ध्वनि का प्रयोग भी हुआ है। 'भाव कोइला के बिकले हमारे पिया' वाली पंक्ति गीत को और भी मार्मिक बना देती है।

लोकधुनों पर आधारित कजरी, चैती, दादरा आदि रागों पर फिल्मी धुनें रची जाती रही हैं। पहले नौशाद, जयदेव, सलिल चौधरी, एस॰डी॰ बर्मन, ओ॰पी॰ नैयर, कल्याण जी जैसे दिग्गज संगीतकारों ने लोकधुनों का जमकर प्रयोग किया। 'कजरारे कजरारे' कानपुर के किन्नरों के लोकगीत का मुखड़ा है, जिसे फिल्म में इस्तेमाल किया गया है। इन लोकगीतों के माध्यम से व्यापक जनसमूह तक पहुँचा जा सकता है। इन लोकगीतों में पंजाब की हीर दिखती है तो बंगाल का बाउल भी। पुरानी फिल्मों में अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, पहाड़ी लोकधुनों का भरपूर प्रयोग हुआ है। लता मंगेशकर द्वारा गाया गया 'हम गवनबा ना जाइबो बिना झूलनी', लम्हें फिल्म का 'मोरनी बागां में बोले आधी रात मा' के अलावा 'अंजन की सीटी में म्हारा मन डोले', 'मुझको राणा जी माफ करना गलती म्हारे से हो गई', 'मैं ससुराल नहीं जाऊँगी डोली रख दो कहारो', 'साड्डा चिड़िया दा चंबा वे' जैसी रचनाएँ लोकगीतों से प्रभावित हैं। 'नदिया के पार' फिल्म का गाना 'जब तक पूरे ना हो फेरे साथ' लोकरंग की थाप के साथ मार्मिकता को बढ़ाता है। वास्तव में लोकगीत ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें पूरा समाज अपनाता है और बालीबुड हमेशा से ही भारत के खूबसूरत लोकगीतों का प्रयोग फिल्मों में करता आया है। लोक की नब्ज से जुड़े इन गीतों को दर्शक हाथोंहाथ लेता है। ओडिशा का 'रंगबत्ती' गीत खुशी के अवसर पर गाया जाने वाला गीत है। इस गीत को पहली बार 1979 में गाया गया था। इसे भारत में अन्य राज्यों में तब लोकप्रियता मिली, जब सन् 2015 में सोनू महापात्रा ने गाया। 'मिशन कश्मीर' गाया गया 'बुंब्रो' कश्मीरी लोकगीत है, जिसे मेहँदी वाली रात गाया जाता है। 'केसरिया बालम' राजस्थान का लोकप्रिय लोकगीत है। यह गाना उन वीर सैनिकों को समर्पित है जो जंग जीतकर अपने घरों को लौटते हैं। 'ददरिया' नामक छत्तीसगढ़ी लोकगीत इसे 'दिल्ली 6' में 'सास गारी देवे देवर जी समझा लेवे, ससुराल गेंदा फूल' फिल्माया गया है। 'इंग्लिश विंग्लिश' में फिल्माया गया गाना 'नवराई माझी' महाराष्ट्रीयन लोकगीत पर आधारित है। 'अंबरसरिया' जिसे फिल्म 'फुकरे' में दिखाया गया है जो कि पंजाबी का लोकप्रिय लोकगीत है। सोनू महापात्रा ने इसे सुरों से सजाया है। एक अन्य पंजाबी गीत 'संदली संदली नैना विच तेरा नाम वै मुंडेया' जो लोगों द्वारा बहुत पसंद किया गया।

फिल्मी गीत और खान-पान से हमारी संस्कृति का खूब पता चलता है। हमारी रुचि और आदतें बनाने में इन फिल्मों का बड़ा योगदान है। हरी मिर्ची के साथ दाल-भात खानेवाले ठेठ पूरबिया को मराठवाड़ा घूमते वक्त बहुत दिनों तक वडा पाव पर गुजारा करना पड़े और ऐसे में अपने गाँव-देहात से दूर जब कहता है कि 'पिपरा के पतवा सरीखे डोले मनवा कि हियरा में उठत हिलोर' तो मन में उत्साह भर आता है, मन फिर-फिर कह उठता है, 'पुरबा के झोंकवा में आओ रे संदेसवा कि चल आज देसवा की ओर।' यही पूरबिया कहता है—'ई है बंबई नगरिया तू देख बबुआ।' बनारसी पान खाकर यही जब बौराता है तो कह उठता है—'खाइके पान बनारस वाला

खुली जाए बंद अकल का ताला', अपनी अस्मिता को बरकरार रखते हुए कहता है–'बुरे भी हम भले भी हम समझिओ ना किसी से कम, हमारा नाम बनारसी बाबू' गाता है।

यही हाल पंजाब की गलियों में मस्ती करते समय मक्के की रोटी और सरसों का साग खाते हुए, बंगाल में लगातार माछ भात से पाला पड़ते किसी दूर प्रदेश के ठेठ आंचलिकता पसंद लोगों की होगी, किंतु इस बहुसांस्कृतिक विविधता वाले देश में सिनेमा ने लोकगीतों के माध्यम से लोगों को जोड़ने का काम किया है। होली के अवसर पर गाया जाने वाला–'जा रे हट नटखट ना छू रे मोरा घूँघट पलट के दूँगी आज तुझे गाली रे, मुझे समझो ना तुम भोली भाली रे...' हर किसी को गुदगुदाता है। वैसे ही 'रंग बरसे भीगे चुनरवाली रंग बरसे', 'होली के दिन दिल मिल जाते हैं', 'होली आई रे कन्हाई' जैसे तमाम गीत आज लोकगीत बन चुके हैं। सिनेमा जहाँ एक ओर लोकगीतों का प्रयोग करता है वहीं दूसरी ओर अनेक गीतों को लोकगीत भी बनाता है। होली पर इन्हीं गीतों की धूम होती है, डीजे हो या रेडियो इन गीतों के बिना होली की मस्ती की कल्पना नहीं की जा सकती।

हिंदी सिनेमा ने लोकगीतों की परंपरा को समृद्ध करने के लिए दूसरी भाषाओं और बोलियों का भरपूर प्रयोग किया है। मुंबई में जब अहिंदी भाषी प्रदेश के लोग आए तो अपने साथ भाषा बोलियों और संस्कृति को भी साथ लाए। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण यहाँ आकर घुलमिल गया। अपनी मिट्टी की खुशबू और संस्कृति से इन्होंने हिंदी सिनेमा को संपन्न बनाया। लाहौर से गुलाम हैदर का मुंबई आना हुआ। वे अपने साथ पंजाबी ढोलक और ड्रम भी लाए। नौशाद जब मुंबई आए तो ढोलक को प्रमुख वाद्ययंत्रों में शामिल किया। ढोलक के बिना लोकधुन या लोकगीत अधूरा है। 'अँखिया मिला के जिया भरमा के चले नहीं जाना' उत्तर प्रदेश की लोकधुन है 'कि मैं झूठ बोल्या कोई ना जी कोई ना', 'नी मैं यार मनाणा नी चाहे लोग बोलियाँ बोलें', 'लारा लप्पा लारा लप्पा लाई रखदा, आड़ी टप्पा आड़ी टप्पा लाई रखदा' में पंजाब की मिट्टी की महक है। 2005 में आई 'पीपली लाइव' में एक छत्तीसगढ़ी गाना है

'चोला माटी के हो राम'। कुछ मुखड़े दक्षिण भारतीय भाषाओं से भी उठाए गए। राजकपूर की फिल्म श्री 420 का 'रमैया वस्ता वैया' को संगीतकार शंकर जयकिशन ने मुंबई में तेलुगू मजदूरों को गाते सुना और फिल्म में डाल दिया और यह गाना अमर हो गया। इस गाने का स्रोत क्या था किसी को शायद ही पता हो।

साठ सत्तर के दशक में पूरबी 'मोरा', 'तोरा' का खूब इस्तेमाल हुआ–'मोरा गोरा रंग लईले, मोहे श्याम रंग दईदे', 'जिया ले गयो जी मोरा साँवरिया', 'मोहेभूल गए साँवरिया आवन कह गए अजहूँ ना आए लीनी ना मोरी खबरिया'। वर्तमान में भी 'मोरा पिया मोसे बोलत नाहीं' जैसे गीत लोक की धड़कन हैं। शैलेंद्र, हसरत जयपुरी और जयकिशन की चौकड़ी को अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों से मिलकर वहाँ का गीत रचने में महारत हासिल थी। उन्हें तमिल का बदकम्मा शब्द इतना पसंद आया कि उन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल राजकुमार फिल्म में 'नाच रे मन बदकम्मा, ठुमक ठुमक बदकम्मा' तथा शतरंज फिल्म में 'बदकम्मा बदकम्मा बदकम्मा बदकम्मा इकड़ बतो रा' किया। हेलेन और महमूद ने इसे बहुत ही सहज रूप में और खूब मस्ती में प्रस्तुत किया है। महमूद पर हैदराबादी हिंदी में फिल्माए गए बहुत से गाने हैं जो बहुत लोकप्रिय तो हुए ही साथ ही महमूद की पहचान भी बन गए। इनमें गुमनाम फिल्म का गाना 'हम काले हैं तो क्या हुआ दिल वाले हैं' इस गीत का मुखड़ा हिंदी में है जबकि अंतरा हैदराबादी हिंदी में है। एक और गाना

 ISSN 0975-735X

जो महमूद पर फिल्माया गया है–'मुत्तुकौडी कव्वाडी हडा प्यार में जो ना करना चाहा वो भी मुझे करना पड़ा'। कुछ अलग ही करने की धुन में 'जे-हाल-मस्कीं-मकुन-ब-रंजिश, बहाल-ए-हिजरा बेचारा दिल है, सुनाई देती है जिसकी धड़कन' जैसे गीत भी रचे गए। यह अमीर खुसरो की कविता से प्रेरित है।

मुंबई सिनेमा का गढ़ है, मराठी भाषा का वहाँ के गीतों पर असर न पड़े ऐसा संभव नहीं है। वहाँ के लोकगीतों और लोकधुनों पर 'रफ्ता रफ्ता देखो आँख मेरी लड़ी है, ए पांडुबा पोरगी फँसली रे फँसली'। महाराष्ट्र की परंपरागत लावनी पर लोकनृत्य और इसमें प्रयुक्त किए जानेवाले गीत संगीत हाव-भाव आदि बालीवुड में खूब देखने को मिलते हैं। हेलेन का 'मुंगला' केटरीना का 'चिकनी चमेली' माधुरी का 'हमको आजकल है इंतजार' जैसे गीतों ने खूब धूम मचाई थी। महाराष्ट्र का गणेशोत्सव भी बालीवुड पर हावी रहा है। 'गोविंदा आला रे', 'मच गया शोर सारी नगरी रे' जैसे गीत भी फिल्मी गीत से लोकगीत बन रहे हैं।

राजस्थानी रोमांच को हम उन टीलों में नाचती नायिका में देख सकते हैं जब वह गाती है 'मोरनी बागां में बोले आधी रात मा' तो उस उल्लास के साथ अपने प्रिय के प्रति प्रेम संवेदना भी व्यक्त करती है। 'पीतल की मोरी गागरी दिल्ली से मोल मँगाई रे, पाँव में घुँघरू बाध के अब पनिया भरन हम जाईं हैं।' जिस प्रदेश में पानी का अभाव हो, वहाँ पानी भरने जाना भी एक उत्सव है। पिया के जाने पर पनघट सबसे पहले सूना होता है 'प्यास बुझेगी तब जीवन की जब घर आए साँवरिया, जा री पवनिया पिया के देस जा इतना संदेसा मोरा कहियो जा'। रोजी-रोटी तलाश में गए पिया को गीतों के जरिए पुकारती है–'मत जाइयो नौकरिया छोड़ के, तोरे पैंइया परूं बलमा', 'तेरी दो टकियां दी नौकरी वे मेरा लाखों का सावन जाए।' लोकसंस्कृति के विविध चित्र बिखरे पड़े हैं। कभी नायिका कहती है–'खत लिख दे साँवरिया के नाम बाबू, वो जान जाएँगे।' नब्बे के दशक में इला अरुण और फाल्गुनी पाठक जैसी लोकगायिका ने भी राजस्थानी लोकगीतों से धूम मचा दी थी। जिस प्रदेश में नीबू पैदा होना बड़ी बात हो वहाँ नीबू पर भी गीत बनते हैं। 'निबँडा निबँडा' गीत भोली अल्हड़ किशोरी के मनोभावों को वाणी देता है। राजस्थानी लोकगीतों की जान 'घूमर' को कैसे भूला जा सकता है। इस तरह के फिल्मी गीत लोकसंस्कृति की परंपरा को आगे बढ़ाने में योगदान देते हैं। गुजरात का गरबा नवरात्रि की विशेष पहचान बन चुका है। पूरे भारत में डांडिया नाइट्स का आयोजन होता है। 'मैं तो भूल चली बाबुल का देस पिया का घर प्यारा लगे', 'के ओढ़नी ओढूँ तो उड़ी उड़ी जाए', 'ढोली तारो ढोल बाजे', 'छोगाडा', 'घनी कूल छोरी', 'ढोलीना', 'रंगतारी' जैसे तमाम गीत हैं जो सिनेमा के माध्यम से एक नई संस्कृति की नींव डालते हैं। जहाँ एक तरफ सिनेमा लोक से सामग्री लेता है, उससे प्रभावित होता है वहीं सिनेमा भी लोक को प्रभावित करने की भरपूर क्षमता रखता है।

हिंदी सिनेमा लोक के परंपरागत वाद्ययंत्रों जैसे नगाड़ा, वीणा, ढोलक, तानपुरा, घूमट, संतूर, सितार, ढोल, एकतारा, डफली, हारमोनियम, बाँसुरी, तबला, बंब, मृदंग तथा खंजरी का अवसरानुकूल बखूबी इस्तेमाल किया है। संगीत के दिग्गज कलाकारों हरिप्रसाद चौरसिया, जाकिर हुसैन, रवि शंकर, अल्ला राखा, बिस्मिल्लाह खां, अमजद अली समय-समय पर अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज कराते रहे हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सिनेमा में लोक चेतना के विश्लेषण से यह पता चलता है कि भारतीय सिनेमा में लोकतत्त्व की जड़ें अत्यंत गहराई तक पैठी हुई हैं। अमिताभ के दौर में

जरूर कुछ निराशा हाथ लगी। लेकिन उसके बाद फिर से कुछ फिल्में आईं जिन्होंने लोकतत्त्व को फिर से स्थापित किया। अब सिनेमा में फिर से गाँव और लोक संवेदना का पुनरुत्थान हो रहा है। आज सिनेमा जिस प्रकार क्षेत्रीय तत्त्वों और ग्रामीण अंचलों तक पहुँच रहा है, वहाँ की लोकधुनों और संगीत को स्थान दे रहा है। वह हमें भविष्य के प्रति आशान्वित ही कर रहा है। गाँव-देहात के अनछुए पहलुओं और व्यक्तियों पर अब फिल्में बन रही हैं। उन मुद्दों पर अब खुलकर बात हो रही है जिन पर सिनेमा में कभी चर्चा नहीं हुई। 'टॉयलेट एक प्रेमकथा', 'बधाई हो', 'विक्की डोनर', 'पैडमेन', 'थप्पड़', 'हाइवे', 'आर्टिस्ट 15', 'पीके', 'बत्ती गुल, मीटर चालू', 'छपाक', 'पिंक', 'हिचकी', 'प्रवोक्ड' जैसी अनगिनत फिल्में हैं जो अब हमारी संवेदनाओं के ज्यादा करीब हैं। सिनेमा लोक की ही अभिव्यक्ति है और लोक संस्कृति को आगे बढ़ाने में हमेशा अग्रसर रही है।

संदर्भ

1. ज्वारीमल पारिख, हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्री, शिल्पी प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
2. सिनेमा और संस्कृति, राही मासूम रजा, वाणी प्रकाशन
3. सिनेमा कल आज और कल, विनोद भारद्वाज, वाणी प्रकाशन
4. हिंदी सिनेमा के सौ वर्ष, निर्दोष त्यागी, भारतीय बुक परिषद, नई दिल्ली 2009
5. हंस, सिनेमा विशेषांक, फरवरी 2013, संपादक राजेंद्र यादव
6. फिल्मी लोकगीत, यहाँ से वहाँ तक, ब्रजेश कुमार झा
7. हिंदी सिनेमा और लोकजीवन, पुनीत बिसारिया

 ISSN 0975-735X

मणि मधुकर के नाटकों में लोकगीत प्रणाली प्रयोग

('दुलारीबाई' और 'इकतारे की आँख' के संदर्भ में)

प्रा॰ रुकसाना अल्ताफ पठाण
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, पुसेगाँव

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में प्रयोग प्रवृत्ति सर्वाधिक रूप में दृष्टिगोचर होती है। हिंदी की नई प्रयोगशील नाट्य परंपरा जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' से शुरु होती है। जगदीशचंद्र माथुर के उपरांत हिंदी में अनेक नई प्रतिभाएँ उदित हुई हैं, जिनमें मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेंद्र वर्मा आदि प्रयोगशील नाटककारों ने हिंदी नाटक और रंगमंच को अपने विभिन्न प्रयोगों द्वारा समृद्ध किया है। इन नई प्रतिभाओं में एक सार्थक नाम मणि मधुकर है, जिन्होंने कथ्य, शिल्प, शैली और मंचीय प्रयोग कर हिदीं नाट्य साहित्य को उजागर किया है।

प्रयोग बदलते हुए युग की माँग है। साहित्य में परिवर्तन होता जा रहा है और नए-नए साहित्यिक प्रवाह विकसित होते जा रहे हैं। साहित्य की सभी विधाओं में आज प्रयोगशीलता बढ़ती जा रही है। वस्तु, शिल्प, शैली आदि के आधार पर प्रयोग होते जा रहे हैं। 'प्रयोग वास्तव में किसी भी कला सर्जना का मौलिक धर्म है और प्रयोग की प्रवृत्ति भी कला के जन्म के साथ ही जन्मी है–जब भी कलाकार कुछ नया सृजन करता है, वह उसका प्रयोग है।'[1]

जब जमाना एक युग के बीच से गुजरता है और जीवनमूल्यों में तेज परिवर्तन होता है, तब प्रयोग की आवश्यकता होती है। प्रयोग युग की माँग है। प्रयोग ही एक ऐसा माध्यम है जिससे साहित्य में पुनर्जीवन आता है। बिना प्रयोग के साहित्य निर्जीव बन जाता है। आधुनिक युग में साहित्य को धारा-प्रवाहित बनाने का प्रभावी माध्यम प्रयोग ही है। प्रयोग ने साहित्यिक सर्जना और चिंतन को एक नई संभावनापूर्ण दिशा दी और अंततः प्रयोग एक दृष्टिबोध, एक मूल्य या सर्जना का मौलिक प्रेरणा तत्त्व बनकर हिंदी में प्रतिष्ठा एक मूल्य या सर्जना का मौलिक प्रेरणा तत्त्व बनकर हिंदी में प्रतिष्ठा पाने लगा। साहित्य ओर समाज का घनिष्ठ संबंध है। इसी कारण साहित्यकार को साहित्य में नवीन प्रयोग करने से पूर्व समाज का विचार करना पड़ता है। व्यापक प्रयोग में महान उद्देश्य रहता है। साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति होती है और परिवर्तित जीवन दृष्टिगोचर होता है।

मणि मधुकर उन विरले लेखकों में से हैं, जिनकी रचनाओं में सतत विविधता, विस्तार और एक प्रयोगोन्मुख जागरण हमें दिखाई देता है। हिंदी के आधुनिक नाटककारों में उनका एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी प्रयोगधर्मिता के दर्शन हमें उनके साहित्य में हो जाते हैं। कथ्य की दृष्टि से मणि मधुकर एक राजनीतिक-सामाजिक नाटककार हैं। वह आम आदमी के पक्ष से संपूर्ण व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हैं। 'मणि के नाटकों में आम आदमी के दुःख, दर्द, आकांक्षा-आशंकापूर्ण जीवन के अंधकारमय वर्तमान और आशाहीन भविष्य के बुनियादी कारणों

की तलाश करते हुए व्यवस्था की विसंगतियों और विडंबनाओं को न केवल उजागर ही किया है, बल्कि उनके लिए जिम्मेदार शक्तियों के खिलाफ संगठित होकर सतत संघर्ष करने की प्रेरणा भी दी गई है।'[2]

मणि मधुकर का 'दुलारीबाई' लोकनाट्य परंपरा का हास्य रस प्रधान नाटक है। यह पूरी तरह से यथार्थवादी नाटक है। इसमें राजनीतिक और सामाजिक भ्रष्टाचार को खुलकर उभारा गया है इस नाटक में नाटककार ने दुलारी के अति कृपण और लोभी विसंगत चरित्र, सौ वर्ष पुराने जूतों के जोड़े, ग्रामीणों की वासनालोलुप दृष्टि और लंपटता एवं कल्लू भांड की भंडैती के द्वारा हास्य रस की सामग्री जुटाई है। प्रस्तुत नाटक का मुख्य नारी पात्र दुलारीबाई है, जो कंजूस नारी का उत्कृष्ट उदाहरण है। मणि मधुकर का 'दुलारीबाई' लोकनाट्य परंपरा का एक ऐसा नाटक है, जो एक साथ लोगों को हँसाता है और उनकी न्यूनताओं तथा लोभी वृत्तियों पर कठोर व्यंग्य करता है।

'इकतारे की आँख' नाटक में नाटककार ने कबीर और उनकी समकालीन परिवेश को नए संदर्भ देकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कबीर के तेजस्वी व्यक्तित्व को लेकर लिखे इस नाटक में पाखंड और अधर्म पर प्रहार किया गया है। मध्ययुगीन भक्तिकाल के संत महात्मा कबीर का व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक धरातल पर अंकित करना मणि मधुकर के इस नाटक की उपलब्धि कही जा सकती है। अपने युग में वर्ग, श्रेणी और धर्म से विघटित समाज में एकात्मता स्थापित करने का जिस महात्मा कबीर ने महामंगल कार्य किया, उसका व्यक्तित्व भी अर्थाभाव की थपेड़े खाकर खंडित हुआ दृष्टिगत होता है। नाटककार मणि मधुकर ने 'इकतारे की आँख' में कबीर के व्यक्तित्व की अपेक्षा तत्कालीन वातावरण को अधिक महत्त्व देकर नाटक लिखा है और वह अनेक जगह मंचित हो चुका है।

मणि मधुकर ने 'दुलारीबाई' और 'इकतारे की आँख' नाटक में लोकगीतों का काफी प्रयोग किया है। नाटककार की यह गीत संरचना सोद्देश्य है।

(अ) मंगलाचरण का विडंबनात्मक प्रयोग—नाटककार मणि मधुकर ने दुलारीबाई और इकतारे की आँख में संस्कृत नाट्यशैली के मंगलाचरण की नई व्याख्या करके आज की राजनीति पर कठोर व्यंग्य किया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणपति आदि प्राचीन मिथकों को तोड़-मरोड़कर आज के राज नेताओं की ढोंगबाजी पर व्यंग्य किया है। 'इकतारे की आँख' नाटक में नाटककार ने गणपति वंदना के स्थान पर ठाकुर साहब की वंदना पर जोर दिया है। इस वंदना में 'आधा ठाकुर आधा गणेश' का समावेश किया गया है। प्रस्तुत गणेश वंदना में आज के राजनेताओं पर करारा व्यंग्य किया है। आज के नेताओं का पेट गणपति के पेट जैसा स्थूल होता है। वे लड्डू खाते हैं। लड्डुओं में पिस्ता, मेवा, बादाम, ज्यादा होता है। इन लड्डुओं को खाकर वे दिनभर देशसेवा करते हैं और रात को वेश्यागमन कर जनोद्धार का स्वप्न देखते रहते हैं। निम्नलिखित गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

गायक मंडली : आओ, पहले हम विनायकजी की वंदना करें।
उनके मोटे-थुलथुल पेट के ऊपर लड्डू धरें।
गायक एक : लड्डू में पिस्ता हो खूब, बादाम और मेवा।
गायक मंडली : खाकर ठाकुर करेंगे दिन-भर देश की सेवा
गायक दो : रात को कोठे के मुजरे में बैठे टाँग पसार के।
बाई के संग सोकर देखें सपने जन उद्धार के।[3]

 ISSN 0975-735X

(आ) शेरो-शायरी का प्रयोग–दुलारीबाई नाटक में मणि मधुकर ने शेरो-शायरी का अच्छा प्रयोग किया है। यह प्रयोग मुख्यतया पुतला-एक और पुतला-दो, सूत्रधार तथा ननकू मोची के माध्यम से किया गया है। नाटक के प्रारंभ में पुतले शेर में यह बात स्पष्ट करते हैं कि आज लोग व्यर्थ ही बकवास करते हैं और अपने ही नशे में चूर रहते हैं। आज लोगों के पाँव जमीं पर नहीं पड़ते हैं। अपनी लड़खडाती जुबां में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, बड़े बड़े खयाल रचते हैं और स्वर्गीय सुख देखना चाहते हैं। ऐसे लोगों पर नाटककार ने व्यंग्य किया है। शेर की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

पुतला एक : पाँव के नीचे जमीं की क्या जरूरत, दोस्तो।
पुतला दो : हम खयालों में उड़े और आसमां पैदा करें।[4]

नाटककार ने आज के मनमौजी और स्वच्छंदी लोगों पर इस शेर के द्वारा व्यंग्य कसा है।

प्रस्तुत नाटक में मणि मधुकर ने देहाती लोकनाट्य मंडली की व्यथा पर भी शेर के माध्यम से प्रकाश डाला है। वास्तव में लोक रंगकर्मी वफादार होते हैं, लेकिन उन्हें उनकी वफादारी की ही सजा मिल जाती है। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहती है। जिंदगी में वे हमेशा पिटते रहते हैं और जब दर्शक किसी लोकनाट्य को पसंद नहीं करते हैं, तब इन रंगकर्मियों को मार खानी पड़ती है। शेर की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

वैसे तो जिंदगी में सदा पिटते रहे हम
नाटक में उनसे मार ही खाएँ तो क्या करें।[5]

नाटक का एक पात्र ननकू मोची वास्तव में शायरों का नक्काल है। उसने अपने शेरों के माध्यम से दुलारीबाई के चरित्र पर प्रकाश डाला है। दुलारीबाई अपने पुश्तैनी जूते पहनकर जब चलती है, तब उसके जूतों की खटर-पटर आवाज निकलती है और वह ऐसे चलती है कि राजा-महाराजाओं की भी तबीयत मचलने लगती है। ननकू मोची का निम्नलिखित शेर द्रष्टव्य है–

तेरे कदमों की आहट फट्ट से पहचान लेते हैं।
हसीना, तेरी बांकी चाल पै हम जान देते हैं।[6]

(इ) **पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए लोकगीतों का प्रयोग**–मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोकगीतों के बड़े ही सटीक प्रयोग किए हैं। इन गीतों के माध्यम से नाटककार ने कुछ पात्रों का परिचय कराया है, तो कुछ विभिन्न परिस्थितियों को भी रेखांकित किया है। नाटक के प्रारंभ में ही गायक मंडली दुलारीबाई का परिचय देते हुए कहती हैं कि ये दुलारीबाई बिल्ली जैसी चौकन्नी है और दौड़-दौड़कर एक एक कौड़ी अपने दाँत से पकड़ती रहती है। उसे कोई जोंक कह सकता है तो कोई खटमल की मौसी। लेकिन दो पैसे का नफा अगर हो जाता है तो उसके पैर जमीन पर टिकते ही नहीं। निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

जोंक कहे कोई इसको या फिर खटमल की मौसी
दो पइसे का नफा हो तो पैदल पहुँचे चंदौसी।[7]

दुलारीबाई नाटक में प्रार्थना गीत द्वारा पुश्तैनी जूतों के कारण होनेवाली दुलारीबाई की मन:स्थिति, कृष्ण के भक्तों की मुनाफे की लालसा और काले धन वालों द्वारा मंदिर का बनाना आदि पर व्यंग्य कसा गया है। प्रार्थनागीत के प्रारंभ में दुलारीबाई का जो चित्रण किया गया है, वह बड़ा ही मार्मिक है। उदाहरण दृष्टव्य है–

हरे क्रिस्ना, हरे क्रिस्ना...

क्या होगा दुलारीबाई का?
संकटमोचन! दूर करो अब, विपदा के सारे अँधेरे
मंदिर के सामने से जूते उठाएँ, ऐसे तो चोर बहुतेरे
बेचारों की लाज बचा
हरे क्रिस्ना...[8]

प्रस्तुत नाटक में कल्लू भांड राजा के वेश में रंगमंच पर प्रवेश करता है और वह जीवन की परिभाषा करता है कि जीवन एक झंझट जरूर है, लेकिन उस झंझट का मुकाबला करना चाहिए और मानव को अपनी निराशा को त्याग देना चाहिए। तब ही वह जीवन में कामयाब हो सकता है। गायक मंडली के गीत के निम्नलिखित बोल जीवन की परिभाषा को स्पष्ट करते हैं–

जीवन है झांसा, पलट दे पासा, तज दे निराशा
एक तमाशा-अच्छा-खासा बनाया जिओ।[9]

(ई) कबीर की विचारधारा के लिए प्रयोग–मणि मधुकर ने इकतारे की आँख नाटक में कबीर की कुछ साखियाँ और कुछ पदों को कुछ मात्रा में अपभ्रष्ट रूप देकर एक तरह से लोकगीतों का ही प्रयोग किया है। मणि मधुकर ने कबीर की साखियों में चित्रित बाह्य आडंबर को अपनी मनगढंत साखियों द्वारा व्यक्त किया है। उन्होंने बाह्य आडंबर के बारे में विचार व्यक्त किए हैं कि साधु बाहरी तौर से वेश बनाकर साधु बन जाता है, लेकिन भीतरी तौर से उसमें भंगार ही रहता है। वह दाढ़ी-मूँछ का मुंडन करता है, लेकिन अपने मन को साफ नहीं करता है। गायन मंडली के द्वारा नाटककार ने बाह्य आडंबर का विरोध निम्नलिखित पंक्तियों में बताया है–

साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चोर
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भंगार
दाढ़ी मूँछ मुंडायके, हुआ घोटमघोट
मन को क्यों नहिं मूँडिये, जामें भरिया खोट।[10]

साथ-ही-साथ कबीर ने संतों को उपदेश करते हुए कहा है कि हे संतों, वास्तव में लोग पागल हो गए हैं। उन्हें झूठे वचनों और आश्वासनों में विश्वास है और वे सच्चाई का विरोध करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

संतो देखऊ जग बोराना
साँच कहे तो मारन धावै, झूठ जग पतियाना
संतो देखऊ जग बोराना।[11]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकनाट्य आमतौर पर आम आदमी का नाटक है जिसमें साधारण जनता का ही चित्रण मुख्यतया किया जाता है। मणि मधुकर ने अपने नाटकों में लोककथाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ये कथाएँ लोक प्रचलित हैं, तथा इतिहास, पुराण आदि से भी बीज के रूप में ले ली गई हैं। इन लोककथाओं को नाटककार ने आधुनिक जीवन संदर्भ में चित्रित करने का प्रयास किया है। इन लोकनाटकों में लोकगीतों का भी अच्छा प्रयोग मिलता है। उन्होंने लोकगीतों के माध्यम से संस्कृत नाट्यशैली में प्रयुक्त मंगलाचरण का विडंबनात्मक प्रयोग किया है। साथ-ही-साथ शेरो-शायरी का प्रयोग करके नाटक

अधिक रोचक बना दिया है। इतना ही नहीं नाटककार ने पात्रों के चरित्र चित्रण तथा जीवन-विषयक कुछ विशिष्ट सूत्रों को व्यक्त करने के लिए लोकगीतों का प्रयोग किया है। इन लोकगीतों की भाषा आम आदमी की भाषा है।

संदर्भ

1. डॉ॰ सुषम बेदी, हिंदी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में, पराग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1984, पृ॰ 4
2. संपादक डॉ॰ विजयकांतधर दुबे, साठोत्तरी हिंदी नाटक (डॉ॰ गिरिराज शर्मा 'गुंजन', साठोत्तरी हिंदी नाटक : सामाजिक संदर्भ, लेख), नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृ॰ 52
3. मणि मधुकर, इकतारे की आँख, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980, पृ॰ 33
4. मणि मधुकर, दुलारीबाई, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1985, पृ॰ 15
5. वही, पृ॰ 19
6. वही, पृ॰ 22
7. वही, पृ॰ 14
8. वही, पृ॰ 46
9. वही, पृ॰ 68
10. मणि मधुकर, इकतारे की आँख, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980, पृ॰ 54
11. वही, पृ॰ 55

साठोत्तरी उपन्यासों में पारिवारिक जीवनमूल्यों के नए प्रतिमान

कु॰ मेघा संभाजी तोडकर
हिंदी विभाग
महात्मा गांधी ज्यु॰ कॉलेज, सावळज
ता॰ तासगाँव जि॰ सांगली

साठोत्तरी उपन्यासों में पारिवारिक जीवनमूल्यों के नए प्रतिमान इस विषय में पारिवारिक जीवन का मूल आधार विवाह है। साठोत्तरी विवेच्य उपन्यासों में विवाह-संबंधी नई दृष्टि का विवेचन प्राप्त होता है। परंपरा से भिन्न-भिन्न नारी का यह रूप स्पष्ट नजर आता है। वह खुद-साठोत्तरी उपन्यासों में चित्रित नारी का वर्णन संघर्षमय नारी, समस्याग्रस्त नारी पीड़ित नारी अधिकार और स्वतंत्र नारी का चित्रण किया है।

साठोत्तरी शब्द : अर्थ एवं व्यापकता

साठोत्तरी शब्द साठ + उत्तर + ई से व्युत्पन्न शब्द है। साठोत्तरी शब्द में पहला शब्द साठ है। यह हमें गिनती का बोध देता है। साठ का तात्पर्य है–वह संख्या जिसमें छः दस आते हों अर्थात् 60 पैगजलद्ध, लेकिन साहित्य जगत् में यह साठ शब्द अपना व्यंजक अर्थ भी रखता है, कोशकार ने 'उत्तर' शब्द के अनेक अर्थ सुझाए हैं। यथा–'उत्तर दिशा संबंधी, ऊपर वाला, ऊँचा, पीछे आनेवाला, पिछला, श्रेष्ठ (लोकोत्तर) अतीत, अधिक-से-अधिक (अष्टोत्तरशत): वाक, शक्तिशाली, पार करने या किया जाने वाला। 'साठोत्तरी' शब्द का जो अर्थ अब प्राप्त होता है, वह है 'सन् 1960 के बाद के उपन्यास।

जीवन मूल्य

समाज की स्थापना तथा सामाजिक जीवन में स्थायित्व लाने के लिए जीवनमूल्यों की आवश्यकता होती है। संस्कृति मनुष्यों की होती है पशुओं की नहीं। सद् और असद् का विवेक भी मानव में ही होता है। यही विवेक उसे उन जीवनमूल्यों से जोड़ने को प्रेरित करता है जो किसी समाज के विकास के मापदंड होते हैं। अतः मूल्यों की कल्पना मानव जीवन के संदर्भ में ही की जा सकती है। वस्तुतः सत्य एवं शिव से युक्त दृष्टिकोण ही मूल्य है जो किसी मानव समाज के स्थायित्व के लिए आवश्यक है। सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् से युक्त इच्छित या वांछित ही मूल्यवान हो जाता है।

डॉ॰ देवराज जी ने कहा है कि 'मूल्य किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस दूसरे प्रश्न के उत्तर से संबंधित है कि मनुष्य किन चीजों को मूल्यवान समझता है। अंततः मूल्यवान वस्तु वह है जिसकी मनुष्य कामना करता है।'[1] जीवन में मूल्य अथवा पुरुषार्थ चार हैं–धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। हिंदी उपन्यास ने भारतीय समाज के मूल्य संक्रमण को आत्मसात् करते हुए अपनी यात्रा के सोपान तय किए हैं। सन् साठ के बाद के उपन्यास इस दशक में मूलगत परिवर्तनों को स्थापित करते हैं।

 ISSN 0975-735X

पारिवारिक जीवनमूल्य : नए प्रतिमान

मूल्यों के निर्माण में परिवार पहली सीढ़ी होती है जिस पर चढ़कर मानवीयता के लक्ष्य को प्राप्त करना आसान होता है। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। परिवार समाज की प्राथमिक इकाई होने के कारण व्यक्ति जन्म से ही परिवार के साथ संबद्ध है। परिवार के स्वरूप और महत्त्व की चर्चा वेदों और स्मृतियों में उपलब्ध है। इनमें गृहस्थ की चर्चा वेदों और स्मृतियों में उपलब्ध है। इनमें गृहस्थ जीवन के संबंध में जो सुंदर भाव प्रकट किए गए हैं वे वैदिक संस्कृति की एक महान निधि हैं। परंपरागत धारणा के अनुसार पारिवारिक जीवन में परस्पर एकता, सौहार्द और सद्भावना होनी चाहिए। पति-पत्नी को भी चाहिए कि वे आपस में मधुर और स्नेहसिक्त वाणी का व्यवहार का व्यवहार करें। संक्षेप में भारतीय परिवार के स्वरूप निर्माण में प्रेम, एकता, सद्भावना, आज्ञाकारिता का महत्त्व बताया गया है। ये गुण परिवार को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। इनके अभाव में परिवार टूटता है।

पारिवारिक जीवन का मूलाधार विवाह है। अत: विवाहोपरांत पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति और अन्य परिवार वालों के प्रति प्रेमभाव का निर्माण होना आवश्यक है। परंतु आधुनिक युग में पारिवारिक प्रेमभाव का अभाव दिखाई देता है। आर्थिक विवशता नारी को नौकरी करने पर मजबूर बनाती है। अब वह केवल बेटी, बहू, पत्नी और माँ नहीं, आई॰ए॰एस॰ अफसर, प्राध्यापिका, डॉक्टर, टाइपिस्ट, क्लर्क आदि भी है। उसकी दोहरी भूमिका के कारण विवाह विच्छेद, अवैध यौन-संबंध मातृत्व नव्यबोध, भ्रूणहत्या जैसे नए-नए पारिवारिक प्रतिमानों का निर्माण होने लगा है। विवेच्य साठोत्तरी उपन्यासों में पारिवारिक जीवनमूल्यों के नए प्रतिमानों का विवेचन अधिक मात्रा में पाया जाता है।

विवाह संबंधी नई दृष्टि

साठोत्तरी उपन्यासों में विवाह-संबंधी नई दृष्टि का विवेचन प्राप्त होता है। विशेषतया नारी अब विवाह के लिए माता-पिता पर अवलंबित नहीं रहती। परंपरा से भिन्न उसका यह, रूप स्पष्टत: नजर आता है। वह खुद-अपने जीवनसाथी का चुनाव करती है और विवाह को अपना अधिकार मानती है। उसके लिए विवाह एक पवित्र धार्मिक बंधन नहीं है। वह तो विवाह को केवल एक सर्टिफिकेट मानती है। अब विवाह शर्तों पर तय होता है। विवाहोपरांत स्वच्छंद प्रेम उसे अनुचित नहीं लगता। डॉ॰ छाया देवी घोरपड़े कहती हैं–

परिवार में यदि बेटी नौकरी करके जीवनयापन करती है तो उसे लगता है कि विवाह आदि बातों में भी उसे स्वयं निर्णय लेने का अधिकार है। अत: वह माता-पिता की अनुमति से वर चुनने के स्थान पर स्वयं अपने पति का चुनाव करती है।'[2]

तारा (समुद्र में खोया हुआ आदमी)–तारा मध्यवर्ग परिवार की बेटी है। घर की आर्थिक स्थिति अत्यंत अभावग्रस्त होने के कारण वह नौकरी करने लगती है। नौकरी के कारण तारा के परिवार को सहायता मिलती है, पर साथ-ही-साथ परिवार में वह प्रमुख बन जाती है। माता-पिता की अपेक्षा उसका महत्त्व बढ़ता है। अत: वह सभी बातों में स्वयं निर्णय लेने लगती है। इतना ही नहीं वह हरबंस नामक युवक को चाहने लगती है और उसके साथ विवाह करने का निर्णय भी लेती है।[3] अब हरबंस के लिए उसके रहन-सहन में परिवर्तन आता है। उसके इस परिवर्तित रूप के संबंध में उसकी बहन समीरा सोचती है–जिसके साथ कोई लड़का जुड़ जाता

है, वह कितना बदल जाती है। उसके नाक-नक्श उभरने लगते हैं।[4] तारा का यह आचरण उसकी स्वयं निर्णय लेने की प्रवृत्ति का ही द्योतक है। माता-पिता की परवाह किए बिना वह अपने मतानुसार आचरण करती है और हरबंस के साथ खुलेआम घूमती है।

विवाह एक सर्टिफिकेट

वास्तव में विवाह में दो आत्माओं का पुनीत मिलन है। मंगलमय जीवन की शुरुआत इस मंगलकार्य से की जाती है। परंतु कभी-कभी पुरुष का स्वच्छंद जीवन नारी के जीवन को अभिशप्त बना देता है। ऐसा जीवन बिताने वाली नारी को लगता है कि विवाह तो बस एक सर्टिफिकेट है।[5]

नयनतारा (रेखाकृति)–'रेखाकृति' उपन्यास की नयनतारा का विवाह एक ऐसे स्वच्छंद वृत्ति के पुरुष से होता है। जो जीवन केवल उपभोग के लिए मानता है। खाओ-पिओ और मौज मनाओ–इस धारणा को जीवन में प्रथम स्थान देनेवाला यह पुरुष अपनी पत्नी को भी उसी प्रकार जीने के लिए विवश करता रहता है। यौन-संबंधों में पत्नी को पीड़ा पहुँचाने की हवस उसे अंधा बना देती है। अगर पत्नी कुछ कहे तो वह उसकी जुबान बंद कर देता है। अत: नयनतारा को लगता है, 'बस शादी तक सर्टिफिकेट है, बेदर्दी से एक औरत को जो तुम्हारी बीवी है, टार्चर करो, रेप करो और कोई आप पर उँगली न उठा सके। रिश्तों का स्कॉचटेप आपको बेजुबान कर देता है।'[6] परंपरागत नारी पति के अत्याचारों को चुपचाप सहती आई है परंतु नयनतारा पति का विरोध करती है। परिणामत: वह पति द्वारा त्यागी जाती है। इससे दो बच्चों की माँ बनी नयनतारा का विवाह की पवित्रता तथा धार्मिक बंधन से विश्वास उठ जाता है। उसे तो विवाह केवल पति को पत्नी के साथ मनमाने ढंग से पेश आने के लिए दिया गया सर्टिफिकेट लगता है। अत: पति-पत्नी संबंधों की सड़ांधपूर्ण जिंदगी से ऊबकर नयनतारा पति का घर छोड़कर चली जाती है।

विवाह एक कॉन्ट्रेक्ट

आज के युग में विवाह शर्तों के आधार पर किए जाते हैं। कभी-कभी माता-पिता एवं परिवार के खातिर यदि नारी विवाह करती है तो भी वैवाहिक जीवन की शुरुआत करने से पूर्व कुछ शर्तें रखती नजर आती है। विवाहपूर्व और विवाहोत्तर करार करने वाली नारियाँ विवाह के मूल उद्देश्य से दूर जाती हैं और कुछ अन्य बातों को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान देती हैं।

तरुनिका (बीते हुए)–तरुनिका एक शिक्षित युवती है। वह अपने विचारों के अनुसार जीवन बिताना चाहती है। परंपरागत रूढ़ियों और बंधनों के प्रति उसके मन में अनास्था है। देव नामक पुरुष उसके सामने विवाह प्रस्ताव रखता है। दोनों के बीच विवाह की कुछ शर्तें तय होती हैं, जिसके अनुसार विवाहोपरांत दोनों की अपना-अपना जीवन स्वतंत्र रूप से बिता सकेंगे। देव उसे प्यार दे या न दे, पर उसके लिए ही रोटी-कपड़े की व्यवस्था अवश्य करेगा और उसकी पढ़ाई भी जारी रखेगा।[7] देव की शर्तों को सुनकर तरुनिका स्वयं निर्णय लेती है कि रस्म-रिवाजों की दीवारों में हमेशा के लिए चुनी जाने की अपेक्षा शर्तों के अनुसार ही विवाह करती है। अपनी पढ़ाई में रुकावट नहीं आएगी और रोटी, कपड़ा, मकान की चिंता भी नहीं रहेगी। यही सोचकर वह देव को पति रूप में स्वीकारती है।

विवाह : एक शारीरिक आवश्यकता मात्र है

आधुनिक शिक्षित नारी का विवाह के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित होता दिखाई देता है। अब

उसे विवाह केवल शारीरिक आवश्यकता मात्र लगता है। अत: विवाह के प्रति जो परंपरागत धारणा थी वह विवेच्य उपन्यासों में खंडित होती दिखाई देती है।

मिति (टेराकोटा)–'टेराकोटा' उपन्यास की मिति उच्चशिक्षित नारी है। वह अविवाहित रहने का निश्चय करती है। पिताजी के यह पूछने पर कि वह शादी करना क्यों नहीं चाहती? मिति झट से कहती है–'इसलिए कि जबरदस्ती इस पाखंड में पड़ना नहीं चाहती।'[8] उसे विश्वास है कि जिंदगी बगैर किसी बंधन से भी जी जा सकती है। वह मानती है कि विवाह मात्र एक शारीरिक आवश्यकता है, उससे अधिक कुछ नहीं। मिति विवाह को केवल शारीरिक आवश्यकता समझती है। इसलिए वह रोहित नामक युवक से विवाहपूर्व यौन-संबंध रखती है परंतु उसके साथ विवाह-बंधन में बँधना नहीं चाहती, क्योंकि उसकी दृष्टि में शरीर की अनेक जरूरतों में सेक्स भी एक जरूरत है और सेक्स के लिए विवाह करना उसे मंजूर नहीं हैं।

दहेज का निषेध

विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है जिसको पूरा करना प्रत्येक पिता का कर्त्तव्य होता है। वैदिककाल से ही भारतीय समाज में प्रत्येक पिता अपनी कन्या को नया घर बसाने के लिए यथाशक्ति धन देता आया है। विवाह के समय अपनी शक्तिनुसार धन-दान देना पिता का धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता रहा है। कालांतर से चली आ रही यह पवित्र सामाजिक परंपरा, जो धार्मिक कृत्य के रूप में मानी जाती रही है, वर्तमान में आधुनिक अर्थप्रधान युग की आकांक्षाओं व इच्छाओं के बोझ से दब गई है।[9] आज तो सचमुच दहेज समस्या ने नारी जीवन को अभिशप्त बना दिया है। वह व्यक्ति के स्थान पर व्यापार-विनियम की वस्तु बन गई है। शिक्षित नारी को अब यह बात खलने लगी है और वह दहेज लेने वाले पुरुष को ठुकराने लगी है।

चरित्रा (टुकड़ों में बँटा इंद्रधनुष)–चरित्रा एक शिक्षित युवा नारी है। दहेज के कारण किए जानेवाले अन्याय-अत्याचारों को पढ़कर उसका नारी मन व्याकुल हो उठता है। वह निश्चय करती है कि वह दहेज लेने वाले पुरुष के साथ विवाह नहीं करेगी।[10] इसी निश्चय के कारण वह शिरीष नामक युवक को अपने पति के रूप में स्वीकार करती है, जो उससे कम योग्यता वाला है। शिक्षा के कारण अब नारी समझने लगी है कि दहेज लेना और देना कानूनन अपराध है। दहेज लेने वाले जितने दोषी हैं, उतने ही दहेज देनेवाले भी दोषी है। अत: दहेज निषेध करने वाली चरित्रा अपने से कम से योग्यता वाले पुरुष को पति के रूप में स्वीकारती हैं।

अंतरजातीय और अंतरधर्मीय विवाह

परंपरा से एक अलिखित नियम था कि विवाह अपनी जाति और धर्म में किए जाने चाहिए। इस नियम के अनुसार अपनी जाति, बिरादरी और धर्म से परे दूसरी जाति, बिरादरी या धर्म के युवक तथा युवती से विवाह करना अनुचित माना गया है। लेकिन विवाह की यह मान्यता अब परिवर्तित होती दिखाई देती है। शिक्षित नारी अब विवाह में जाति-धर्म को महत्त्व नहीं देती है।[11]

सुमित्रा (भीतर का घाव)–'भीतर का घाव' उपन्यास की सुमित्रा भी अंतरजातीय विवाह के प्रति आस्थावान है। वह अपने देवर से कहती है–'यदि सच्चा प्रेम हो तो मुस्लिम, किश्चियन किसी से भी शादी की जा सकती है।'[12]

अंकिता (एक जमीन अपनी)–'एक जमीन अपनी' की अंकिता भी सुधांशु नामक युवक के साथ अंतरजातीय विवाह करती है। कोर्ट में यह विवाह संपन्न होने के डेढ़ महीने बाद

वह माँ से कहती है, 'हमने रजिस्टर्ड मैरिज कर ली।[13]

सीमा (अंतराल)–'अंतराल' उपन्यास की सीमा न जाति को महत्त्व देती है, न धर्म को। इतना ही नहीं, परधर्मीय युवक को अपना जीवनसाथी बनाने को भी तैयार है। उसे जाति-धर्म की बातें दकियानूसी लगती हैं। वह मुसलमान जाति के युवक से मैत्री करती है। यह बात उसकी माँ को अच्छी नहीं लगती। उसकी माँ द्वारा यह पूछने पर क्या वह एक मुस्लमान से विवाह करेगी? तब सीमा कहती है कि 'ब्याह करना हो तो भी हर्ज क्या है?'[14] सीमा का यह कथन उसके अंतरधर्मीय विवाह-संबंधी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। विवाह में धर्म और जाति के बंधन अब निरर्थक लगने लगे हैं। नारी भी अब इन मान्यताओं को व्यर्थ मानती है।

पुनर्विवाह और विधवा विवाह

आधुनिक युग की नारी अब अपने अधिकारों के प्रति केवल सजग ही नहीं है, तो अपने अधिकारों का वह जीवन में प्रयोग भी करती दिखाई देती है। आज नारी को कानून द्वारा पुनर्विवाह और विधवा-विवाह की अनुमति मिली है। अत: परित्यक्ता और विधवा नारी आज विवाह बेदी पर दो बार चढ़ने में हिचकिचाती नहीं। पुनर्विवाह के कारण परित्यकता एवं विधवा नारियों का शोषण कम होने लगा है। परिवार एवं समाज द्वारा पीड़ित इन नारियों को कानून ने सहारा दिया है। अत: धीरे-धीरे ही क्यों न हो सही पुनर्विवाह करने के लिए नारी तैयार हा रही है।

इरा (दोहरी आग की लपट)–'दोहरी आग की लपट' उपन्यास की इरा का पति धोखेबाज आदमी निकलता है, तो उसे धोखेबाज, ठगी पति से तलाक लेने की सोचकर देवजी नामक विधुर के साथ पुनर्विवाह करने के लिए स्वीकृति देती है।[15]

शकुन (आपका बंटी)–'आपका बंटी' की शकुन का विवाह अजय नामक पुरुष से होता है। दस साल के वैवाहिक जीवन में उन्होंने केवल संबंधों को सहा है। अंत में दोनों एक-दूसरे से घृणा करने लगते है। शकुन घर छोड़कर नौकरी करने चली जाती है। परिणामत: अजय पत्नी से तलाक लेकर दूसरी शादी करता है पति के दूसरे विवाह से शकुन घायल होती है। और पति से प्रतिशोध लेने की भावना से डॉ॰ जोशी के साथ पुनर्विवाह कर उनके घर चली जाती हैं।[16]

निष्कर्ष

पारिवारिक जीवनमूल्यों के प्रति आज की नारी इतनी जाग्रत हुई है कि वह नैतिकता के धरातल पर नए-नए प्रतिमानों की खोज में भटक रही है। नैतिकता के धरातल पर नए-नए प्रतिमानों को वह अपने पारिवारिक जीवन में विविध तरीकों से अपना रही है, जिनमें विवाह, विवाह-विच्छेद, पुनर्विवाह तथा विधवा विवाह-संबंधी नई दृष्टि महत्त्व रखती है।

संदर्भ

1. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ॰ देवराज, प्रकाशन, पृ॰ 160
2. साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवनमूल्य, पृ॰ 166
3. समुद्र में खोया हुआ आदमी, कमलेश्वर, संस्करण 1991, पृ॰ 18
4. वही, पृ॰ 10
5. साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य, पृ॰ 167
6. रेखाकृति, डॉ॰ कुसुम अंसल, प्रथम संस्करण 1989, पृ॰ 47
7. बीते हुए, शुभा वर्मा, प्रथम संस्करण 1980, पृ॰ 31

8. टेरा कोटा, लक्ष्मीकांत वर्मा, प्रथम संस्करण 1971, पृ॰ 179
9. नारी चेतना और अपराध, एम॰ ए॰ अंसारी, प्रथम संस्करण–1990, पृ॰ 48
10. टुकड़ों में बँटा इंद्रधनुष, प्रभा सक्सेना, प्रथम संस्करण 1980, पृ॰ 81
11. साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में परिवर्तित जीवन मूल्य, पृ॰ 173
12. भीतर का घाव, डॉ॰ देवराज, द्वितीय संस्करण 1971, पृ॰ 75
13. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, प्रथम संस्करण 1990, पृ॰ 14
14. अंतराल, मोहन राकेश, द्वितीय संस्करण 1973, पृ॰ 176
15. दोहरी आग की लपट, डॉ॰ देवराज, प्रथम संस्करण 1973, पृ॰ 74
16. आपका बंटी, मन्नु भंडारी, तेरहवाँ संस्करण 1990, पृ॰ 121

मो॰ 7558572924

'मैं पायल' उपन्यास में किन्नर जीवन की त्रासदी और समाज की मूल्यहीनता

प्रवीण चौगुले
शोधछात्र, हिंदी विभाग
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

'मैं पायल' महेंद्र भीष्म का किन्नर जीवन पर आधारित उपन्यास है। सन् 2016 में प्रकाशित इस उपन्यास में उपन्यासकार ने किन्नर गुरु पायल सिंह का जीवन-संघर्ष तथा किन्नर जीवन के विभिन्न पहलुओं का उद्घाटित किया है। इसमें उन्होंने समाज की किन्नरों की प्रति मूल्यहीनता और किन्नर जीवन की त्रासदी पर प्रमुखता से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किन्नरों को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ता है। किन्नर होने के कारण किन्नर बच्चों को बचपन में परिवार में, बाद समाज में प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। इसके बाद किन्नर समुदाय की प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। हर जगह पर किन्नरों को समाज की मूल्यहीनता का सामना करना पड़ता है। मनुष्य की तरह समाज उन्हें जीने नहीं देता। इसी का चित्रण महेंद्र भीष्म ने किन्नर पायल के माध्यम किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास की पायल का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बहुराजमऊ गाँव में एक क्षत्रिय परिवार में एक लड़की के रूप में होता है। पिता उन्नाव में एक सेठ के यहाँ ट्रक ड्राइवर का काम करते हैं। ट्रक ड्राइवर में होनेवाली सभी बुराइयाँ उनमें हैं। अपने काम के चलते ज्यादातर समय वे घर के बाहर ही रहते हैं। लड़का होने की आस बैठे पिता रामबहादुर तीन लड़कियों के बाद पायल अर्थात् जुगनी के रूप में चौथी लड़की होने के कारण उससे इतनी नफरत करते हैं कि उसका मुँह देखना भी उचित नहीं समझते। परंतु जब मालूम होता है कि पायल किन्नर है तब घर में हडकंप मच जाता है। पायल की माँ और बड़ी तीन बहनें उससे पूर्ववत प्यार करती हैं लेकिन पिता की क्रूरता की हद हो जाती है। पिता जब भी घर आते शराब पीकर पायल समेत बहनों की जमकर पिटाई करते हैं। उन्हें क्षत्रीय वंश में इस प्रकार हिजड़े का जन्म अपनी शान के खिलाफ लगता है। इस संदर्भ में पायल कहती है–'जब कभी पिताजी दारू के नशे में कोसते, गाली देते, 'ये जुगनी! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है...आदि जाने क्या-क्या वे बकते रहते थे।'[1] उन्हें हमेशा समाज में अपनी बेइज्जती का डर सताता है। इसलिए वे उसे बार-बार कोसते और प्रताड़ित करते रहते हैं।

जब पायल अर्थात् जुगनी बड़ी हो जाएगी तब लोग उसकी शादी के बारे में पूछेंगे इसलिए वे उसे जबरदस्ती लड़के के कपड़े पहनाना शुरू करते हैं। पायल बुचरा किन्नर होने के कारण उसकी शरीर की रचना और स्वभाव लड़की की तरह और लिंग अविकसित है। इसलिए लड़का बनकर रहना उसे स्वभाव के विपरीत लगता है। कभी-कभी उसकी बड़ी बहनें उसे लड़की की तरह सजाती हैं तब उसे सुकून महसूस होता है। यह बात पिता के समझ में आ गई तो वे उसकी

 ISSN 0975-735X

जमकर पिटाई करते हैं। वे उसे किन्नर-सुलभ स्वभाव के अनुसार बर्ताव करने नहीं देते। लड़कों के कपड़ों में पायल का दम घुट जाता है। इसी प्रकार पिता द्वारा पायल को प्रताड़ित करना और अपने मन के अनुसार बर्ताव करने के लिए मजबूर करना यह उनकी मूल्यहीनता ही मानी जा सकती है। इसमें पायल के मानवाधिकारों का हनन हो जाता है। स्कूल में जब वह लड़के के कपड़े पहनकर जाती है तब अन्य साथी उसका मजाक उड़ाते हैं। इससे पायल के मन को बहुत दुख होता है। पिता अपनी क्षत्रिय वंश की मान-मर्यादा के लिए पायल की भावनाओं को बलि देते हैं। पिता जब घर में रहते तब पायल को हमेशा लड़कों के ही कपड़ों में रहना पड़ता है। जब पिता घर में नहीं होते तब बड़े भाई राकेश की निगरानी उस पर रहती है।

एक दिन पायल की बहनें पायल को लड़की की तरह सजाती हैं। इसी दौरान पिताजी काम से अचानक घर वापस आते हैं। पायल को लड़की के पोशाक में देखकर वे बहुत गुस्सा हो जाते हैं। शराब के नशे में चूर पिताजी जमकर उसकी पिटाई करते हैं। इतना ही नहीं तो गुस्से में उसके सब कपड़े फाड़ देते हैं। इस संदर्भ में पायल कहती है, 'मेरी फ्रॉक का पिछला हिस्सा पिताजी के हाथों आ चुका था, जिसे उन्होंने एक झटके में टुकड़े-टुकड़े कर दिया। मेरी बाल चोटी नोच ली और मुझे बालों से पकड़ बुरी तरह पीटने लगे। वे मुझे मारते जा रहे थे अपने हाथों से, पैरों से और मेरे शरीर से लड़कियों के कपड़े हटाते गए। मारते, गरियाते, घसीटते वह निरंकुश हो उठे थे, गुस्से में अपना आपा खो चुके थे।'[2] इतना ही नहीं तो चमड़े की चप्पल को पानी में डुबोकर वे उसकी बेहोश होने तक पिटाई करते हैं। शराब के नशे में वे भूल जाते हैं कि वे अपनी ही संतान को पीट रहे हैं। चाहे वह किन्नर क्यों न हों? उसमें उस बच्चे का क्या दोष? उनकी क्रूरता की इतनी हद हो जाती है कि वे इस किन्नर बच्चे के अस्तित्व को ही हमेशा-हमेशा के लिए मिटाना चाहते हैं। वे पायल को घसीटते हुए अँधेरे में गौशाला में ले जाते हैं। वहाँ पर उसे फाँसी के फंदे पर लटका देते हैं। इसी दौरान वे पायल के पैर के नीचे से ईंटे निकालना भूल जाते है इसलिए उसकी जान बच जाती है। पिता का इस प्रकार का मूल्यहीन, अनैतिक व्यवहार साफ-साफ मानवाधिकार का उल्लंघन ही है। इस प्रकार संतान किन्नर होने के कारण समाज की मान-मर्यादा के लिए उसके अस्तित्व को मिटाने का प्रयास किन्नरों पर किया जानेवाला बहुत बड़ा अन्याय है। इसमें उस बच्चे का कोई दोष नहीं होता।

पिताजी के इस बर्ताव के चलते पायल के मन में अपने जीवन के प्रति नफरत हो जाती है। वह अपनी जीवन-यात्रा को खत्म करने के इरादे से चुपचाप घर से निकलती है। पायल पहले गाँव के पास स्थित कुएँ में डूबकर और बाद में रेल के नीचे कूदकर आत्महत्या का प्रयास करती है लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती। इसके बाद उसे जिंदगीभर किन्नर जीवन की त्रासदी तथा समाज की यातनाओं को भुगतना पड़ता है।

घर त्यागने के बाद उसे पग-पग भूख-प्यास और समाज की वासनांध नजरों का शिकार होना पड़ता है। अपने पैतृक गाँव बहराजमऊ से उन्नाव जाते समय ही उसे ट्रेन में एक प्रौढ़ व्यक्ति के वासनांधता का सामना करना पड़ता है। पायल के अकेलेपन का फायदा उठाकर वह व्यक्ति झूठी संवेदना दिखाकर उसके शरीर को सहलाने का प्रयास करता है। पैसे का लालच दिखाकर उसका यौन शोषण करने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में पायल बताती है–'मेरी ओर उसने बीस रुपए का नोट बढ़ाते कहा, 'ले रख ले और बाथरूम में आ जाना।' इतना कह वह बाथरूम की ओर इशारा कर चला गया।'[3] इस प्रकार उपन्यासकार ने उस प्रौढ़ व्यक्ति के माध्यम से समाज की

मूल्यहीनता की ओर संकेत किया है। वह प्रौढ़ व्यक्ति पायल को ट्रेन के शौचालय में बुलाकर उसके शरीर का उपभोग करना चाहता है लेकिन पायल उसके झाँसे में नहीं आती। उन्नाव स्टेशन पर उतरने के बाद उसे जोरदार भूख लगती है। वह उस प्रौढ़ व्यक्ति द्वारा बर्थ पर रखे पैसे ट्रेन से उतरते समय उठाती है। इन्हीं पैसों से सामोसे खाकर प्लेटफार्म पर ही लेट जाती है। इसी दौरान वहाँ एक सिपाही उसके पास बैठकर उसके छाती को सहलाने लगता है। बाद में उसे अँधेरे में ले जाकर उस पर जबरदस्ती करने का प्रयास करता है लेकिन इसी दौरान दूसरे प्लेटफार्म पर एक प्रथम दर्जे का अधिकारी आने के कारण उसे फौरन जाना पड़ता है। वह सिपाही के चंगुल से भी बच जाती है। समाज के कुछ लोगों का अनैतिक व्यवहार किन्नरों का जीना हराम कर देता है। समाज उसे आसानी से जीने नहीं देता। इस प्रकार समाज की मूल्यहीनता प्रस्तुत उपन्यास में जगह-जगह पर दिखाई देती है।

समाज में अकेली लड़की के रूप में रहना उसे असंभव हो जाता है। इसलिए पायल उन्नाव रेलवे स्टेशन पर एक नहा रहे लड़के के कपड़ चुराकर पहनने लगती है। इससे उसे समाज की वासनांध नजरों से बचने में सहायता मिलती है। नहीं तो अकेली लड़की को देख समाज के वासंनाध भेड़िये हमेशा खाने के लिए दौड़ते हैं। परिवार त्यागने के बाद पायल को बार-बार भूख की समस्या का सामना करना पड़ता है। यही भूख उसे बार-बार अपने परिवार की याद दिलाती है।

इसके बाद पायल उन्नाव से कानपुर आ जाती है। कानपुर में पायल की मौसी है लेकिन वह कहाँ रहती है उसे मालूम नहीं है। इसलिए उसे गंदी जगह पर भिखारियों की तरह रहने के लिए मजबूर होना पड़ता है। कानपुर स्टेशन पर पायल भिखारियों के साथ रहती है। वह भिखारियों के बीच जब-जब रहती वह एक दिन भी भूखी नहीं सोती। भिखारियों को जो भी कुछ मिलता उनमें से कुछ वे पायल को भी दे देते। इसलिए तो पायल कहती है कि वे भिखारी जरूर थे लेकिन दिल के राजा थे। जो कुछ उनके पास होता वह मिल-बाँटकर खाते। इस सभ्य समाज की तरह स्वार्थांध प्रवृत्ति उनमें नहीं दिखाई देती। इसलिए पायल को गरीब भिखारियों में जो मानवता दिखाई देती है वह सभ्य समाज में नहीं दिखाई देती। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने इस सभ्य समाज का पायल के संदर्भ में एक प्रसंग चित्रित किया है–एक दिन पायल को बहुत भूख लगती है। वह स्टेशन पर खाना खा रहे दो व्यक्तियों से खाने के लिए कुछ देने की याचना करती है। इस दौरान वे उसे खाना देने के बजाए गालियाँ देकर भगा देते हैं। उनमें से एक व्यक्ति पायल को गाली देते हुए कहता है–'चल भाग साले, पता नहीं कहाँ-कहाँ से चले आते है...? बड़ा आया भूखा हूँ साहब कहने वाला।' पहला सहयात्री मुझे डाँटते हुए बोला। 'पता नहीं इन सालों को इनके माँ-बाप पैदाकर भीख माँगने क्यों छोड़ देते हैं?'[4] इस प्रकार उपन्यासकार ने किन्नर जीवन की त्रासदी को बहुत बेहतरीन ढंग से चित्रित किया है।

स्टेशन पर पुलिसवाले सोने नहीं देते। इसलिए ट्रेन में दातून बेचनेवाले अनवर के साथ दातून बेचकर उसकी झोपड़ी में सोने के लिए जाती है। एक दिन अनवर की चोरी करते समय ट्रेन के नीचे आ जाता है और उसकी मौत हो जाती है। अनवर की मौत से पायल के सामने फिर से रहने और खाने की समस्या खड़ी हो जाती है। उसे कानपुर में पंडितजी की चाय की दुकान में काम करना पड़ता है। यहीं पर अप्सरा टॉकीज के ठेकेदार संतोष सिंह से पहचान होने के कारण अप्सरा टॉकीज में काम मिलता है। परिणामस्वरूप उसके जीवन में थोड़ी-बहुत स्थिरता आ जाती है लेकिन बढ़ती आयु के साथ उसके शरीर में आनेवाले किन्नर-सुलभ बदलाव के चलते फिर

से समस्या खड़ी हो जाती है। छाती में आनेवाला उभार तथा लड़कों की तरह पतली आवाज के चलते इन सारी बातों को छिपाना उसे मुश्किल हो जाता है। यहाँ पर भी उसे समाज की मूल्यहीनता का शिकार होना पड़ता है। यहाँ का प्रमोद चौकीदार उसे हमेशा छेड़ने का प्रयास करता है। इसलिए पायल अप्सरा टॉकीज का काम छोड़ने का विचार करती है। काम पर न जाने के कारण उसे फिर से भूख का सामना करना पड़ता है। इस संदर्भ में पायल कहती है–'मारे भूख के मेरे प्राण निकले जा रहे थे। पानी पी-पीकर कितने दिन तक रह सकती थी। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ की स्थिति में। मैं दिनभर घूमती-फिरती रहती और रात को रेलवे स्टेशन में आ जाती।'[5] इसी दौरान भीख माँगने वाले गिरोह के लोग उसे जबरदस्ती उठा ले जाते हैं। यहाँ पर भी उसे उनके शोषण का सामना करना पड़ता है। दिनभर काम करने के बावजूद उसे दाने-दाने के लिए तरसना पड़ता है। यहाँ के करीब सभी बच्चे परिवालों की प्रताड़ना से घर से भागे थे। कुछ बच्चे अच्छे घर के भी थे। पायल इस नरक से भागने का भी प्रयास करती है लेकिन वह नाकाम हो जाती है। यहाँ पर किए जानेवाले बच्चों पर अत्याचार के संदर्भ में पायल कहती है–'मारपीट के साथ मुझे कई-कई रोज तक भूखा रखा गया। भूख क्या होती है, यह मुझे यहाँ पता चला। भूख क्या-क्या समझौते करा देती है, यहीं पता चला। मेरे सारे हौसले पस्त पड़ गए थे, उफ्! आज भी उस नरक को याद करने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अपने भाग्य की नियति मानकर मैं अपने दिन काट रही थी। वह काला-खूसट-बदसूरत-नाटा-प्रौढ़ जो मुझे फुसला कर यहाँ लेकर आया था सिर पर सफेद जालीदार टोपी पहने पूरा जल्लाद दिखता था।'[6] इस प्रकार पायल को परिवार त्यागने के बाद किन्नर जीवन की त्रासदी को भुगतना पड़ता है।

एक दिन पुलिस की रेड पड़ने से पायल यहाँ से रिहा हो जाती है। अन्य बच्चों के साथ उसे राजकीय सुधारगृह में रखा जाता है। यहाँ पर उससे घर का पता और परिवार के संदर्भ में जानकारी पूछी जाती है। माँ और भाई उससे मिलने के लिए आते हैं। वे उसे मौसी के यहाँ ले जाते हैं लेकिन मौसी पायल हिजड़ा होने के कारण उसे रखने के लिए तैयार नहीं होती। मौसी का बर्ताव पायल को पसंद नहीं आता। वह वहाँ से बिना बताए फिर अप्सरा टॉकीज में काम के लिए जाती है लेकिन एक दिन फिर उसे प्रमोद चौकीदार की वासना का शिकार होना पड़ता है। इस संदर्भ में डॉ॰ मधु खराटे लिखते हैं–'एक रात भयंकर उमस के कारण पायल नहा रही थी तब प्रमोद ने उसे शायद देख लिया था और रात को उस पर जर्बदस्ती करने लगा कि पायल ने एक जोरदार लात प्रमोद के जाँघों के बीच मारी वह दर्द से चीखने लगा। प्रमोद को रात को अस्पताल ले जाना पड़ा। पायल की असलियत खुल गई थी।'[7] इस प्रकार प्रमोद द्वारा पायल पर जबरदस्ती करने का प्रयास करने पर अप्सरा टॉकीज में पायल के किन्नर होने का भेद खुल जाता है। उसे वहाँ काम करना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार पायल को बार-बार किन्नर जीवन की त्रासदी को भुगतना पड़ता है।

इसके बाद संतोष सिंह की पहचान पर ही उसे पूनम टॉकीज में काम मिल जाता है। यहाँ पर वह प्रोजेक्टर चलाने काम, डांस, मिमिक्री, गाना आदि सीख लेती है। आयु के साथ उसके शरीर में आनेवाले परिवर्तन के चलते वह लड़के के बजाए लड़की बनकर रहने का विचार करती है। आकाशवाणी, दूरदर्शन या आर्केस्ट्रा में काम करने के विचार से वह कानपुर से लखनऊ में आ जाती है। यहाँ पर गुरुमाई के डेरे के किन्नर उसे जबरदस्ती डेरे में ले जाते हैं। उसे किन्नरों की तरह रहने के लिए मजबूर किया जाता है। जब पायल इसका विरोध करती है तब गुरुमाई उस पर गुस्सा हो जाती है। इस संदर्भ में पायल कहती है–'एक दिन तो जैसे बम फट पड़ा हो, गुरुमाई

चीखते-चिल्लाते मेरे पास आई। उस समय उनका चेहरा बड़ा डरावना था। मेरे पास आते ही उन्होंने एक जोरदार झापड़ मेरे बाएँ गाल पर जड़ दिया। एकदम मर्दाना हाथ बाप रे!'[8] गुरुमाई उसे जबरन अन्य किन्नरों के साथ बधाई माँगने के लिए कहती है। पायल नहीं मानती तो उसे भूखा रखकर प्रताड़ित किया जाता है। गुरुमाई के डेरे के लगभग सभी किन्नर नशा, व्याभिचार आदि मूल्यहीनता के शिकार हुए दिखाई देते हैं। खुद गुरुमाई नशे की शिकार दिखाई देती है। डेरे के किन्नर खुलेआम देह-व्यापार करते हैं। कई लोग उनके डेरे में हमेशा पड़े रहते हैं। इस संदर्भ में डॉ॰ मधु खराटे लिखते हैं–'पायल ने अनुभव किया कि डेरे में दो दर्जन किन्नर थीं और ढोलक बजाने वाले स्त्रैण पुरुष। वहाँ सभी नशा करते थे, यौन-क्रीड़ा करते थे। संक्षेप में गुरुमाई का डेरा नशा, व्याभिचार का अड्डा था।'[9] गुरुमाई सिर्फ किन्नरों द्वारा बधाई टोली मिलनेवाले पैसे से मतलब रखती है। उन्हें किन्नरों के भविष्य के बारे में कोई चिंता नहीं है।

डेरे में आनेवाला पप्पू गुंडा पायल को छेड़ता है पायल उसका विरोध करती है तब वह उसकी जमकर पिटाई करता है। पायल को बचाने के लिए कोई किन्नर नहीं आता। इस प्रकार उपन्यासकार महेंद्र भीष्म ने गुरुमाई के डेरे के माध्यम से किन्नरों के डेरे में चलनेवाली मूल्यहीनता पर भी प्रकाश डाला है। पायल गुरुमाई के डेरे में रहकर उसे भी किन्नर जीवन की आदत हो जाती है लेकिन वह अन्य किन्नरों की तरह अनैतिक व्यवहार नहीं करती। बाद में वह खुद अपना किन्नर समुदाय बनाकर उसकी गुरु बन जाती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'मैं पायल' उपन्यास में उपन्यासकार महेंद्र भीष्म ने किन्नर जीवन की त्रासदी को चित्रित करते हुए समाज की मूल्यहीनता पर चोट की है। प्रस्तुत उपन्यास की पायल को पग-पग पर समाज की मूल्यहीनता का सामना करना पड़ता है। पायल के जीवन की त्रासदी यह है कि किन्नर होने के कारण उसे पहले अपने परिवार को त्यागना पड़ता है, बाद में हर जगह पर समाज की मूल्यहीनता का शिकार होना पड़ता है। हर जगह पर समाज की वासनांध नजरें उसका जीना हराम कर देती हैं। फिर भी वह अपनी मेहनत के बल पर जिंदगी को सँवारते हुए आत्मनिर्भर जीवन जीती है। समाज द्वारा की गई मूल्यहीनता का वह डटकर सामना करती है लेकिन अन्य किन्नरों की तरह इस मूल्यहीनता का शिकार नहीं बनती। इस प्रकार उपन्यासकार महेंद्र भीष्म ने उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक किन्नर जीवन की त्रासदी को चित्रित करते हुए समाज की मूल्यहीनता पर प्रकाश डाला है।

संदर्भ

1. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण, दिसंबर, 2016, पृ॰ 26
2. वही, पृ॰ 38
3. वही, पृ॰ 46
4. वही, पृ॰ 61
5. वही, पृ॰ 75
6. वही, पृ॰ 77
7. डॉ॰ मधु खराटे, हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2018, पृ॰ 138
8. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, पृ॰ 97
9. डॉ॰ मधु खराटे, हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श, विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2018, पृ॰ 140

मो॰ 9764470531

साठोत्तरी काव्य में प्रगतिशील चेतना

डॉ॰ सविता शिवलिंग मेनकुदळे
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा

साठोत्तरीकाल का साहित्य तत्कालीन युगीन परिस्थितियों की उपज है। अँग्रेजों का अत्याचार, पूँजीपतियों द्वारा जनसामान्यों का शोषण, उच्चवर्ग का निम्नवर्ग पर अत्याचार आदि सामाजिक विसंगतियों को नष्ट करने के लिए साहित्यकारों ने अपनी लेखनी उठाई। साठोत्तरी काव्य में अभिव्यक्त विचारों में प्रगतिशील चेतना स्पष्ट है। समाज के हर शोषित और पीड़ित व्यक्ति की वेदना को वाणी देने का प्रयास प्रगतिशील कवियों ने किया है। मुक्तिबोध की रचनाओं में शोषित और सामान्य जनता के प्रति गहन आस्था, सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष, अनास्था तथा अनाचार का डटकर विरोध, आक्रोश चित्रित है। नागार्जुन की प्रगतिशील रचनाएँ साधारणजन को एक बेहतर मानवीय शक्ल देने के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। जनसाधारण की दयनीय स्थिति को ऊपर उठाने के लिए वे कहीं-कहीं आक्रोश के साथ शासनतंत्र एवं शासकों पर भी कुठाराघात करते हैं। सर्वेश्वर जी ने अपनी कविताओं में आज की व्यवस्था और भ्रष्ट राजनीति पर तीक्ष्ण प्रहार किया है। कवि केदारनाथ अग्रवाल भारतीय जनसाधारण, देश के किसान, मजदूर तथा निम्न सर्वहारावर्ग के जीवन के प्रति आस्था रखते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में देश की राजनीति और शासन के दमनचक्र से शोषित-पीड़ित जनता का आक्रोश व्यक्त किया है। धूमिल की प्रगतिशील चेतना राजनीतिक षड्यंत्र का पर्दाफाश करके सर्वहारावर्ग को न्यायप्रविष्ट बनाना चाहती है। कवि लीलाधर जगूड़ी की कविताएँ मानव विरोधी षड्यंत्र के विरोध में आक्रोश एवं विद्रोह प्रकट करती हैं। कृषकों की दयनीय स्थिति का यथार्थ कवि ने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है।

प्रस्तावना

मानव समाज का संपूर्ण परिवेश तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। उसका यथार्थवादी चित्रण करना ही प्रगतिशील साहित्यकारों का वैशिष्ट्य है। साहित्य के संदर्भ में 'प्रगतिशीलता' या 'प्रगतिवाद' का आरंभ सन् 1936 ई॰ से माना जा सकता है। सन् 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर की प्रेरणास्वरूप हुई। इसके लखनऊ में हुए प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष प्रेमचंदजी ने साहित्य की प्रगतिशीलता पर विशेष बल दिया। द्वितीय अधिवेशन में भी प्रगतिशीलता पर विशेष जोर दिया गया। सन् 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ और फासिज्म ने प्रगति को पूर्ण रूप से समाप्त करने का प्रयत्न किया। फासिज्म को समाप्त करने के लिए दिल्ली में प्रगतिशील लेखक संघ का तृतीय अधिवेशन संपादित किया गया। इन अधिवेशनों का मुख्य उद्देश्य साहित्यकारों की प्रगतिशील चेतना पर प्रकाश डालना था।

प्रगतिशील चेतना की पृष्ठभूमि

प्रगतिशील चेतना के उद्‌भव और विकास में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक

तथा सांस्कृतिक आधार प्रमुख रहे हैं। सन् 1857 की क्रांति के बाद राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई और भारतीय संघ की स्थापना हुई। धीरे-धीरे भारतीय समाज में जनजागरण हुआ एवं अनेक श्रमिक आंदोलन, अखिल भारतीय किसान सभा तथा भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस आदि को प्रतिस्थापित किया गया। मुगल तथा अँग्रेजी शासनकाल में स्थित अव्यवस्थित सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज तथा रामकृष्ण मिशन की स्थापना की गई। 20वीं सदी तक अँग्रेजी शिक्षा के प्रसार तथा वैज्ञानिक विकास से सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ। आर्थिक परिस्थितियाँ अँग्रेजों के आगमन से प्रभावित हुईं। प्राचीन उद्योग व्यवसाय नष्ट कर दिए गए। आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज उच्च, मध्य और निम्न इन तीन वर्गों में विभक्त हो गया।

प्रगतिशील साहित्य की पृष्ठभूमि में भारतेंदुकाल का विशेष योगदान रहा है। द्विवेदीयुग में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, सनेही, श्रीधर पाठक आदि कवियों ने तत्कालीन समाज का सजीवता से चित्रण किया। छायावादीयुग प्रेम, वैयक्तिकता तथा कल्पनाओं का युग रहा है फिर भी 'चंद्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त' नाटकों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का भाव दिखाई देता है। प्रसाद की 'कामायनी' का संघर्ष तत्कालीन स्वतंत्रता के संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। रांगेय राघव लिखते हैं, 'छायावाद में यथार्थ प्रत्यक्ष रूप में नहीं था, किंतु उसने चेतना को झकझोर दिया और व्यापकता की ओर व्यक्ति को आकर्षित किया।'[1] प्रगतिशील चेतना के प्रस्फुटन में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारण तो थे, लेकिन प्रमुखता आर्थिक अव्यवस्था की थी। विदेशी शासनकाल में भारतीय जनजागरण हुआ। भारतीयों में राजनीतिक एकता तथा राष्ट्रीयता की भावना जाग उठी।

साठोत्तरी काव्य में प्रगतिशील चेतना

साठोत्तरी कविता का मूल स्वर विद्रोही है। तत्कालीन समाज में व्याप्त विकृति, विसंगति तथा स्वार्थवादिता के विरुद्ध साठोत्तरी कविता में एक स्वर उभरा, जो विद्रोही था। मुगल तथा अँग्रेजी शासनकाल में समाज अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठा और शासन व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन करने लगा। बंगाल के नक्सलबाड़ी और तेलंगाना का किसान विद्रोह, युवा आंदोलन, आपातकाल, असम और पंजाब की समस्या आदि घटनाओं में प्रगतिशील चेतना दिखाई देती है। साठोत्तरी कवियों के काव्य में इसी परिवेश का परिणाम चित्रित है। समाज के हर शोषित और पीड़ित व्यक्ति की वेदना को वाणी देने का प्रयास प्रगतिशील कवियों ने किया है। सामंती प्रथा, शोषण, श्रमिकों और आम नागरिकों की बदहाली, किसानों की जर्जर अवस्था, कर्ज, भूख, अशिक्षा, अराजकता, पराधीनता आदि के विरोध में कवियों ने अपनी आवाज बुलंद की है। प्रस्तुत प्रपत्र में साठोत्तरी काव्य के मुक्तिबोध, नागार्जुन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल और लीलाधर जगूड़ी आदि कवियों की प्रगतिशील चेतना का विवेचन किया है।

मुक्तिबोध के काव्य में प्रगतिशील चेतना

कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। उन्हें प्रगतिशील कविता और नई कविता के बीच का सेतु भी माना जाता है। मुक्तिबोध की रचनाओं में शोषित और सामान्य जनता के प्रति गहन आस्था, सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष, अनास्था तथा अनाचार का डटकर विरोध, आक्रोश दिखाई देता है। शोषित-पीड़ित सर्वहारावर्ग के प्रति सहानुभूति उनकी कविता में स्पष्ट है–

अरे जनसंघ ऊष्मा के
बिना व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते
बशर्ते तय करो/ किस ओर हो तुम अब
सुनहरे ऊर्ध्व आसन के/ बदलते पक्ष में अथवा
कहीं उसी से लूटी टूटी/ अँधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन
कहाँ हो तुम?[2]

मुक्तिबोध जी ने 'भूरी भूरी खाक धूल' काव्य-संग्रह की 'बारह बजे रात के' शीर्षक कविता में दुनिया की संपूर्ण पूँजी को एकत्रित करके उसे सुरक्षित रखने के लिए बंदूक, पिस्तौल को सुरक्षा कवच के रूप में दर्शाया है। यहाँ उनकी प्रगतिशील चेतना दिखाई देती है। 'नहीं चाहिए मुझे हवेली' कविता के माध्यम से शोषित, पीड़ित निम्नवर्ग की अस्मिता को व्यक्त किया है। वे उनके अहंकार और आत्मगौरव को राजपथों पर क्रांति की स्वरलहरी के रूप में बजाकर दिखाना चाहते हैं। मुक्तिबोध ने अपनी प्रगतिशील रचनाओं में मानवता को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले साम्राज्यवादियों की कड़ी आलोचना की है। मुक्तिबोध ने 'भूरी भूरी खाक धूल' में प्रगतिशीलता का ही सर्वाधिक गान किया है–

क्योंकि हम/ देखते हैं अनिवार्य
मृत्यु उसे सभ्यता की/ जिसका तुम जाने-अनजाने नित
करते हो समर्थन/ इसलिए तुम हमें
सबसे बड़े शत्रु समझते हो/ क्षमा करो, तुम मेरे बंधु और मित्र हो
इसलिए सबसे अधिक दु:खदाई/ भयानक शत्रु हो।[3]

कवि पुरानी पापपूर्ण परंपराओं, मान्यताओं को समाप्त करने को युद्ध-संघर्ष के लिए जनता को प्रेरित करता है। मुक्तिबोध की प्रगतिशील चेतना प्रखरतम रूप में उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है।

नागार्जुन के काव्य में प्रगतिशील चेतना

नागार्जुन साठोत्तरी प्रगतिशील हिंदी काव्य के सुविख्यात कवि हैं। गरीब शोषित पीड़ित लोगों के पक्ष में जिन साठोत्तरी कवियों ने लिखा है उनमें नागार्जुन शीर्ष स्थान पर हैं। नागार्जुन ने समाज के निम्न स्तर के लोगों को अपनी कविता का नायक बनाया है। 'घिन तो नहीं आती है' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने बोझा ढोते हुए कुली मजदूर का संवेदनात्मक चित्रण किया है–

कुली मजदूर हैं/ बोझा ढोते हैं, खींचते है ठेला
धूल धुआँ भाप से पड़ता है साब का
थके-माँदे जहाँ-तहाँ हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन
आकर ट्राम के अंदर पिछले डब्बे में
बैठ गए हैं इधर-उधर तुमसे सटकर
आपस की उनकी बतकही
सच-सच बतलाओ/ नागवार तो नहीं लगती है
जी तो नहीं कुढ़ता है/ घिन तो नहीं आती है?[4]

महानगर कोलकाता की ट्राम में भेड़-बकरियों की तरह लादे मजदूर हैं। ये मजदूर मिलों, कल कारखानों, समुद्र, गोदियों, सड़कों पर ठेला गाड़ी खींचकर मेहनत करने से पसीने से लथपथ गंदे कपड़ों में हैं। नागार्जुन ने इन्हीं शोषित मजदूरों को जी तो नहीं कुढ़ता, घिन तो नहीं आती है? जैसा सवाल पूछा है। कवि नागार्जुन ने शोषित और पीड़ितों की जिंदगी को अपनी कविताओं में बहुत गहराई तथा मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। नागार्जुन ने विभिन्न विषयों पर कविताएँ लिखी हैं। सामंती व्यवस्था में नारियों की गुलामी का पूरा-पूरा इतिहास बताते हुए 'तालाब की मछलियाँ' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने मछलियों की दासता के समानांतर नारियों की गुलामी का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। एक तरफ जीवन की विकृतियों का सीधा सजीव चित्र खींचा है तो दूसरी ओर यथार्थ के पहलू भी चित्रित किए हैं। नागार्जुन ने शासकों के सभी छल-छद्मों का पर्दाफाश किया है। नागार्जुन की प्रगतिशील रचनाएँ साधारणजन को एक बेहतर मानवीय शक्ल देने के लिए निरंतर संघर्षरत हैं। जनसाधारण की दयनीय स्थिति को ऊपर उठाने के लिए वे कहीं-कहीं आक्रोश के साथ शासन तंत्र एवं शासकों पर भी कुठाराघात करते हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में प्रगतिशील चेतना

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। सर्वेश्वर की कविता में जनवादी चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी कविताओं में लोकजीवन के एक से बढ़कर एक चित्र मिलते हैं। 'कुआनो नदी' शीर्षक कविता में महानगरों से गाँव का शोषण चित्रित है। उनकी कुछ कविताओं में ग्रामीण परिवेश के चित्रण के साथ ही शोषित और पीड़ितों की दयनीय दशा को दर्शाया गया है। सर्वेश्वर जी ने अपनी कविताओं में आज की व्यवस्था और भ्रष्ट राजनीति पर तीक्ष्ण प्रहार किया है–

वह बंद कमरा/ सलामी मंच है/ जहाँ मैं पड़ा हूँ
पचास करोड़ आदमी खाली पेट बजाते
ठठिया खड़ा-खड़ाते/ हर क्षण मेरे सामने से गुजर जाते हैं
झाँकियाँ निकलती हैं ढोंग की विश्वासघात की
बदबू आती है हर बार/ एक मरी बात की।[5]

सर्वेश्वर की कविताओं में राजनीतिक पाखंड, भ्रष्ट व्यवस्था और आज की विसंगतियों का चित्रण मिलता है। उनके 'जंगल का दर्द' संग्रह की कविताओं में सामान्य व्यक्ति की कमजोरियाँ हैं। वे जनता के कवि हैं और व्यवस्था विरोधी भी हैं। 'आग' कविता में वे किसानों, मजदूरों के सम्मिलित रूप से आग बनकर उनमें क्रांति का आह्वान करते हैं। सर्वेश्वर जी 'यह घर' शीर्षक कविता में बुद्धिजीवियों की कायरता पर निरंतर व्यंग्य करते हुए उन्हें समाज में आगे बढ़कर निम्नवर्ग के पक्षधर बनने के लिए प्रेरित करते हैं–

यदि तुम कायरों की/ जिंदगी जिओगे
तो मैं यह घर छोड़कर/ कहीं चली जाऊँगी।[6]

सर्वेश्वर जी ने 'खूँटियों पर टँगे लोग' कविता में प्रगतिशील चेतना को विस्तृत आयाम दिया है। समाज के उपेक्षित निम्नवर्ग को वे अधिकारों के प्रति सचेत और सक्षम बनाना चाहते हैं। उन्होंने स्पष्टतया शाही तानाशाही का भी विरोध किया है और इंसानियत के प्रकाश को समाज में प्रसारित करने की कोशिश की है। 'मृत्युदंड' शीर्षक कविता में उन्होंने सर्वहारा शोषितवर्ग में

 ISSN 0975-735X

आत्मविश्वास उत्पन्न किया है और पूँजीपति वर्ग को जहरीले आदमी के रूप में संबोधित करते हुए उनके प्रति क्रांति का उद्‌बोधन किया है।

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रगतिशील चेतना

केदारनाथ अग्रवाल साठोत्तरी काव्य की प्रगतिशील चेतना के सशक्त कवि के रूप में प्रख्यात हैं। भारतीय जनसाधारण, देश के किसान, मजदूर तथा निम्न सर्वहारावर्ग के जीवन के प्रति कवि अग्रवाल आस्था रखते हैं। उनकी कविताओं में समाज का यथार्थवादी चित्रण है। वे 'हे मेरी तुम' कविता में लिखते हैं–

डंक मार संसार न बदला
प्राणहीन पतवार न बदला
बदला शासन देश न बदला
राजतंत्र का मेघ न बदला।[7]

'मार प्यार की थापें' कविता में कवि केदारनाथ अग्रवाल ने देश की राजनीति और शासन के दमनचक्र से शोषित-पीड़ित जनता का आक्रोश व्यक्त किया है। वे अपने विचारों से भारतीय जनता को शक्तिशाली बनाने का प्रयास करते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की पराजय और जनता की जनवादी भावनाओं की विजय की आकांक्षा भी रखते हैं। मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित कवि केदारनाथ अग्रवाल सर्वहारावर्ग के प्रति उदार तथा पूँजीवाद और शासन के प्रति कठोर दृष्टिकोण रखते हैं।

धूमिल के काव्य में प्रगतिशील चेतना

साठोत्तरी जनवादी कविता के केंद्रीय कवि धूमिल एक प्रख्यात कवि हैं। उनके काव्य में विद्रोह तथा मूल्यों के संकट को वाणी मिली है। शासनतंत्र की सड़ी-गली व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत जनता में नहीं है इस बात से निराश कवि ने आज के परिवेश पर व्यंग्य करते हुए लिखा है–

हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ टोपियाँ बदल गई हैं
और सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल-उछलकर
अपनी जगहें बदल रहे हैं।[8]

धूमिल को संसद और जनतंत्र की वर्तमान स्थिति मंजूर नहीं है। स्वतंत्रता के बाद देश की आपत्तिजनक स्थिति पर चिंता जताते हुए उन्होंने काव्य सृजन किया है। धूमिल अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र को तलाशते हैं। धूमिल के काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक' की 'पटकथा' सबसे लंबी कविता है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ के फलक पर एक मार्क्सवादी रुझान और लेखकीय ईमान के तर्क से सँजोया गया है। इसमें वर्गीय संवेदना, पूँजीवादी सुविधापरस्ती से उत्पन्न आपसी द्वंद्व चित्रित है और इस कविता के माध्यम से कवि धूमिल की प्रगतिशील चेतना का जायजा लिया जा सकता है।[9]

धूमिल की प्रगतिशील चेतना राजनीतिक षड्‌यंत्र का पर्दाफाश करके सर्वहारावर्ग को न्यायप्रविष्ट बनाना चाहती है। उन्होंने 'मोचीराम' कविता के माध्यम से सर्वहारावर्ग की दयनीय

स्थिति को अभिव्यक्त किया है। 'सुदामा पांडे का प्रजातंत्र' नामक कविता-संग्रह में प्रजातंत्र के प्रति उनके मन में आक्रोश और निराशा विद्यमान है। 'प्रौढ़ शिक्षा' नामक कविता में धूमिल जनता की चेतना को झकझोरते हैं। धूमिल की कविताओं में तत्कालीन युग की बेचैनी, आक्रोश, तड़प एवं आम जनता के प्रति लगाव है।

लीलाधर जगूड़ी के काव्य में प्रगतिशील चेतना

लीलाधर जगूड़ी साठोत्तरी हिंदी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रगतिशीलता को विस्तृत आयाम दिया है। इनकी कविताएँ मानव विरोधी षड्यंत्र के विरोध में आक्रोश एवं विद्रोह प्रकट करती हैं। प्रगतिशील युवाकवि की भाँति देश की आजादी को लेकर कवि बेचैन है। देश आजाद होकर भी भ्रष्टाचार, सत्ता लोलुपता, स्वार्थ, जातिवाद, पूँजीवाद, सामंतवाद आदि विसंगतियों से घिरा है। वे अपने काव्य में इन स्थितियों को उभारते हैं। जगूड़ी की कविताएँ मनुष्य एवं समाज के बदलते मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। आज के युवावर्ग की बेरोजगारी की समस्या को कवि अपनी कविता में चित्रित करता है–

इस भीड़ में लपलपाता हुआ
अपने प्रमाण-पत्र पढ़ता हुआ।[10]

भूख की समस्या से ग्रस्त ग्रामीणों के शहरों में जीविकोपार्जन के लिए जाने से सूने घोंसलों जैसी बनी गाँव की स्थिति का यथार्थ उनकी 'अन्यतम' नामक कविता में चित्रित है–

लेकिन गाँव के तमाम चेहरे
सूने घोंसलों में बदल गए
जिनमें वारंट और अकाल
और बाढ़ के समकालीन पंछी
हर एक पत्री को फाँसा देते हुए...उड़ रहे हैं।[11]

लीलाधर जगूड़ी ने 'बची हुई पृथ्वी' काव्य-संग्रह की 'बलदेव खटीक' कविता में भ्रष्ट व्यवस्था के अत्याचारी तंत्र से पीड़ित पुलिस के एक सिपाही के जीवन को चित्रित किया है। कवि की सहानुभूति शोषित श्रमिकवर्ग के साथ रही है। कृषकों की दयनीय गरीबी का नंगा यथार्थ कवि ने अपनी कविताओं में व्यक्त किया है।

निष्कर्ष

प्रगतिशील कविता जीवन की वास्तविकता चित्रित करती है। प्रगतिशील कवियों का दृष्टिकोण जीवनोन्मुखी रहा है। मनुष्य के जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए कवि ने परंपरा की संकुचित सीमाओं को तोड़ा है। उन्होंने एक साथ ही व्यक्ति और समाज, ग्राम और नगर, राष्ट्र और विश्व, वर्तमान और भविष्य, यथार्थ और कल्पना, बुद्धि और भावना आदि तत्त्वों को उनके संश्लेषित रूप में अपनी काव्य चेतना में अभिव्यक्ति दी है। प्रगतिशील चेतना के कवियों का व्यवस्था के प्रति विरोध है। उनकी रचनाओं में शोषित और सामान्य जनता के प्रति गहन आस्था, सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष, अनास्था तथा अनाचार का डटकर विरोध, आक्रोश दिखाई देता है। वे जनता को घर छोड़कर सड़क पर आने का आह्वान करते हैं। सामाजिक विकृतियाँ तथा वर्तमान समाज की विडंबनाएँ प्रगतिशील कवि को काव्य सृजन के लिए उकसाती हैं। इन कवियों ने अपनी प्रगतिशील रचनाओं में मानवता को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले साम्राज्यवादियों की कड़ी

आलोचना की है।

संदर्भ

1. रांगेय राघव, काव्य में यथार्थ और प्रगति, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, संस्करण 1954, पृ॰ 160
2. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1985, पृ॰ 46
3. नेमिचंद्र जैन (संपादक), मुक्तिबोध रचनावली (भाग-2), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980, पृ॰ 83
4. नागार्जुन, चुनी हुई कविताएँ (भाग-2), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981, पृ॰163
5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, गर्म हवाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982, पृ॰ 15
6. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, जंगल का दर्द, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982, पृ॰ 55
7. केदारनाथ अग्रवाल, हे मेरी तुम, परिमल प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण 1981, पृ॰ 12
8. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1972, पृ॰ 124
9. नरेंद्र मोहन (संपादक), लंबी कविताओं का रचना-विधान, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, पृ॰ 172
10. जगूड़ी लीलाधर, इस यात्रा में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977, पृ॰ 9
11. वही, पृ॰ 37-38

साठोत्तरी हिंदी कहानियों में नारी

डॉ॰ वर्षा गायकवाड
हिंदी विभाग प्रमुख
श्रीमती मथुबाई गरवारे कन्या महाविद्यालय, सांगली

1960 के बाद का साहित्य साठोत्तरी साहित्य माना जाता है। इस काल में लिखित कहानियों में पात्रों के मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है। स्त्री पुरुष संबंध में उन्मुक्तता दिखाई देती है। विवाह संस्था में पति-पत्नी के साथ तीसरा व्यक्ति भी मौजूद है। प्रेम की आवश्यकता दिखाई देती है। जीवन में आर्थिक पक्ष प्रधान दिखाई देता है। कहानियों में पात्रों को अनैतिकता, भ्रष्ट व्यवस्था का सामना करना पड़ता है।

समाज में नारी का स्थान गौण है। गृहस्थी, मातृत्व, पति और परिवार की सेवा करना ही उसका धर्म माना जाता है। नारी त्याग की मूर्ति होती है। नारी पुरुष की सहायक या भोगवस्तु मानी गई है। डॉ॰ शीला रजवार ने लिखा है, 'भारतीय संस्कृति में पतिव्रता और पति का अनुगमन करने वाली नारी को पूज्य माना गया है। पतिव्रता को पावन दीप्ति नाम से अभीहित किया है। आज भी संस्कृति की दुहाई देने वाला वर्ग उसके इसी रूप को देखता है।'[1]

स्त्री असहाय बनकर पुरुष के हाथों की कठपुतली बन जाती है। मैत्रेयी पुष्पा की 'ललमनिया' कहानी में ब्रज की शादी में नाचने वाली स्त्री हाथ में आईना लेकर बारातियों को संबोधित करके गीत गाती है और आईने का प्रकाश बारातियों पर डालती है। विवाह में मोहरो ललमनिया बनकर हाथ में आईना लेकर नाचती है। बारातियों में से जो जोगेश उस पर मोहित है उससे शादी करता है। जोगेश के घर शादी मंजूर न होने से मोहरो की अलग व्यवस्था की जाती है। जोगेश मोहरो के घर आता जाता रहता है। मोहरो उस पर विश्वास करती है। पर अपने गाँव वापस लौटने के सिवा उसके पास अन्य कोई रास्ता नहीं है। जोगेश के न आने से मोहरो अकेली रह जाती है। अपनी बच्ची की परवरिश करती है। बारात आने पर नाचने लगती है। तब उसकी बेटी कहती है, 'साबो मौसी कह रही है हमारे बाबू आ गए।[2] मोहरो समझ गई कि बारात जोगेश की है। मोहरो बेबस है। अपने पति के सामने ललमनिया बनकर बेसुध होकर नाच रही है। जोगेश के लिए नारी एक वस्तु है। एक स्त्री का उपभोग करके वह उसे छोड़ देता है, फिर वह दूसरी स्त्री के साथ शादी करता है। पुरुष नारी को अपनी निजी संपत्ति मानकर उसके साथ अन्याय करता है। उसे वस्तु समझकर अपने अधिकार में रखता है।

मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'विद्रोह' में नारी परिस्थितियों का शिकार बन जाती है। आर्थिक अभाव में घर की जिम्मेदारी निभाने हेतु लड़कियों की शादी नहीं हो पाती है। कामकाजी नारी नीना कुमारी प्रौढ़ा है। वह अपने परिवार की जिम्मेदार व्यक्ति बन गई है–'वही सबकी पिता हो और सब उसके बच्चे हो माँ भी बाबूजी थी और इन सबका पेट भरना उसका फर्ज हो गया हो।'[3] विवाह उसके लिए सपना बन गया था। वह घर और ऑफिस के घेरे से ऊब जाती है।

 ISSN 0975-735X

विद्रोह करना चाहती है परंतु वह समझ नहीं पाती कि किस तरह विद्रोह करे।[4] नारी के आगे विद्रोह करने का रास्ता है, पर वह जानती नहीं कि इस मार्ग पर कैसे चले।

पुरुष प्रधान संस्कृति में निर्णय लेने का अधिकार पुरुष का होता है। नारी की इच्छा, उसके विचारों का महत्त्व नहीं होता। 'अभी तो' कहानी की वृंदा पढ़ी-लिखी महिला है। संतान न होने से 18 साल से दुखी है। नारी होने के कारण उसे दुख झेलना पड़ता है। नार्वेकर दंपति से वह मिलती है। वे समाज की सेवा करते हैं। वृंदा को सहारा मिल जाता है। उनका अनुकरण वह करती है। अपंगों की सेवा, प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार वह करती है। स्कूलों में जाकर मातृभाषा का महत्त्व समझाकर अँग्रेजी भाषा का प्रभाव अँग्रेजी स्कूल की पढ़ाई की श्रेष्ठता को कम करना चाहती है। वह कार्यालय, स्कूल डाकखाने में जाकर हिंदी का प्रचार करती है। पत्राचार, आमंत्रण-पत्र, टेलीफोन नंबर, वार्तालाप, अभिवादन में हिंदीभाषा का इस्तेमाल करती है। पीयूष को जन्म देती है। वृंदा का पति अँग्रेजी भाषा को महत्त्व देता है तथा राष्ट्रभाषा को हीन दृष्टि से देखता है। अँग्रेजी स्कूल को महत्त्व देता है। वृंदा के विचार पति के विचारों से मेल नहीं खाते। पति के विचार उस पर दबाव डालते हैं। पति बेटे को अँग्रेजी स्कूल में प्रवेश दिलाता है। वह विवश होकर देखती है और सोचती है, 'क्या किया जा सकता है। इस हीनता के विरुद्ध अभी तो अपने ही उपकरण ढीले-ढाले हैं, अपनी भी निष्ठा पोली-पोची।'[5]

अपने भीतर क्षमता होने पर भी नारी असहाय और विवश बनकर रहती है। बाहर वह स्वतंत्र पहचान बनाती है, पर अपने घर में वह हार जाती है। मन्नू भंडारी की कहानी 'अकेली' में नारी के मन की पीड़ा और अकेलेपन की त्रासदी का चित्रण हुआ है। आज समाज में एकाकीपन कई जगह दिखाई देता है। बुढ़ापे की समस्या इस कहानी में है। बुढ़ापे में किसी का सहारा न हो तो, टूटते हुए रिश्तों का संकट अधिक कठिन हो जाता है। सोमा जीवनभर अकेली रह जाती है।

बुआ के बेटे हरखू की मृत्यु हो गई है। उनके पति संन्यासी बनकर हरिद्वार चले गए थे। पति साल में एक महीने घर आते हैं, पर बुआ के साथ स्नेहहीन व्यवहार करते थे। बुआ दुखी और उदास रहती थी-'उन्होंने कभी पति की प्रतीक्षा नहीं की। उनकी राहों में आँखें नहीं बिछाईं। जब तक पति रहते उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता।'[6] बुआ पड़ोसियों से अच्छे संबंध बनाकर रखती है, पड़ोसियों की सहायता करती है, उनके समारोहों में शामिल होती है। बुआ के पति को बुआ का मिलनसार स्वभाव पसंद नहीं था। वह बुआ को हमेशा डाँटते-फटकारते थे। वहाँ की किसी रिश्तेदारी में एक बार विवाह था। मृत बेटे की अँगूठी बेचकर बुआ अच्छी भेटवस्तु की तैयारी करती है। निमंत्रण आने का इंतजार करती है, पर बुलावा नहीं आता। वह सोचती है-'कैसे सात बज सकते हैं मुहूरत तो पाँच बजे का था।'[7] बुआ जान जाती है, गरीब और अकेले के कोई रिश्ते नहीं होते। सोमा बुआ ने अपने एकाकीपन से उबरने का रास्ता निकाल लिया है।

चित्रा मुद्गल की 'लाक्षागृह' कहानी नारी मन की संवेदना को प्रकट करती है। आधुनिकयुग में कामकाजी नारी पैसे कमाने की मशीन बन गई है। पुरुष उनका आर्थिक शोषण करते हैं। अगर नारी इसे पहचान लेती है तो अपना बचाव कर सकती है।

सुन्नी चालीस वर्ष की प्रौढ़ा है। वह कामकाजी, अविवाहित नारी है। सुंदर न होने के कारण उसका विवाह नहीं हुआ है। पिता देवेंद्र के साथ सुन्नी की शादी तय करते हैं। देवेंद्र शिक्षा व्यवसाय रूप से सुन्नी से कम था, इसलिए सुन्नी इस रिश्ते को ठुकरा देती है। सुन्नी के कार्यालय में सिन्हा नियुक्त होते हैं। दोनों में परिचय मैत्री स्थापित होती है। दोनों विवाह करना

चाहते हैं। सिन्हा शादी से पहले मकान खरीदना चाहता है। यह निश्चित होता है कि थ्री रूम फ्लैट सिन्हा के नाम रहेगा और सुन्नी सारे पैसे भरेगी क्योंकि सिन्हा की तनख्वाह कम है। कार्यालय में एक दिन सुन्नी सिन्हा और उनके मित्र का संवाद सुनकर विस्मित हो जाती है। सुन्नी के साथ शादी करने की बात से दोस्त हैरान थे तब सिन्हा कहते हैं, 'आठ सौ महीने कमाने वाली कहाँ मिलेगी...सौदे की कोई शक्ल सूरत नहीं होती।'[8] यह सुनकर सुन्नी के आत्मसम्मान को धक्का पहुँचता है। वह आवेश में आकर सिन्हा से विवाह न करने का फैसला करती है। वह नौकरी से त्यागपत्र देकर देवेंद्र से शादी करने का निश्चय करती है। सुन्नी की माँ को पता है कि देवेंद्र की शादी एक सप्ताह बाद किसी दूसरी लड़की से होने जा रही है। इस तरह से सुन्नी की हालत 'न घर की न घाट की' जैसी होती है। पर सुन्नी सिन्हा के शादी के सौदे से अपने आपको बचा लेती है। सुन्नी दुख में जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है। पद, पैसा प्राप्त होने पर भी नारी का भविष्य सुरक्षित नहीं है। उसे अपनी योग्यता के अनुसार वर नहीं मिल पाता है।

साठोत्तरी कहानियों में नारी का यथार्थ चित्रण हुआ है। नारी कोमल हृदय की होती है, वह अपनी संवेदना को अभिव्यक्त करती है। साठोत्तरी नारी विद्रोह करती है। वह अपनी क्षमता के अनुसार परिस्थिति को बदलने की भूमिका निभाती है।

संदर्भ

1. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथासाहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, डॉ॰ शीला रजवार, पृ॰ 20
2. ललमनिया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ॰ 150
3. विद्रोह, मेहरुन्निसा परवेज, पृ॰ 171
4. वही, पृ॰ 171
5. दूसरे देशकाल में, राजी सेठ, पृ॰ 78
6. प्रतिनिधि कहानियाँ, मन्नू भंडारी, पृ॰ 31
7. वही, पृ॰ 37
8. मामला आगे बढ़ेगा अभी, चित्रा मुद्गल, पृ॰ 91

जयश्री रॉय की कहानियों में चित्रित नारी

डॉ॰ संजय पिराजी चिंदगे
दे॰आ॰ब॰नाईक कॉलेज, चिखली

नारी प्राचीनकाल से प्रताड़ित एवं उपेक्षित रही है। नारी को पुरुष की दासी एवं मनोरंजन का साधन माना गया। उसे भोग का साधन एवं बच्चे जनने की मशीन माना गया। उसकी आजादी एवं स्वतंत्रता पर आघात किया गया। परंपरा से चले आए गंदे विचारों में वह पिसती आई। वह अबला की अबला बनी रही–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखो में है पानी

हिंदी साहित्य में साठोत्तरी के बाद नारी का रूप बदलता गया। वह अपनी स्वतंत्रता के प्रति सचेत हो रही है। पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में वह कार्य करने के लिए तैयार खड़ी है। साठोत्तरी के बाद की कहानी की बहुत बड़ी खूबी तात्कालिकता की है। वह अपने समय की गंभीर चिंताओं, समस्याओं और ज्वलंत प्रश्नों को तत्काल उत्कटता के साथ गहन कर उसे गंभीरता से प्रस्तुत करती है। पुरानी कहानी का पाठक जब आज की कहानी पढ़ता है तो वह उसका स्वरूप और परिवर्तन देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। अपने इसी रूप परिवर्तन के कारण साठोत्तरी की बाद की कहानी एक नया मोड़ ले रही है। हाल के कुछ वर्षों में कहानी की सबसे बड़ी चिंता बाजारवाद, उपभोगक्तावाद, खुले बाजार की रणनीति का मनुष्य की जीवनशैली पर प्रभाव, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य और जीवनशैली के पूरी तरह बदल डालने के गहराते संकट पर केंद्रित है। प्रौद्योगिकी और तकनीक के द्रुत विकास ने किस प्रकार एक अपसंस्कृति इस पर बाखुशी थोपी है और मनुष्य उसके सामने कितना लाचार बनकर रह गया है। हमारी कहानी संवेदना को अनुभवित करने वाली एक प्रमुख घटक है।[1]

पुरुष प्रधान समाज नारी को कमजोर और बुद्धिहीन मानता है। वह नारी को स्वयं से हीन एवं कमजोर मानता है लेकिन समाज में नारी हर क्षेत्र में अपनी शक्ति का एहसास समाज को करा चुकी है। वह पुरुष से भी आगे निकल चुकी है। जिस तरह सृष्टि में नर का होना आवश्यक बनता है, उसी प्रकार नारी का होना भी उतना ही जरूरी बन जाता है। पुरुष की कामयाबी के पीछे नारी का हाथ होना चाहिए। उसी प्रकार नारी की कामयाबी के पीछे पुरुष का हाथ होता है। यह अमिताभ बच्चन जी की फिल्म सूर्यवंशम में देखने को मिलता है। उसी प्रकार जयश्री रॉय जी की कहानियों में पुरुष-स्त्री के संबंध को एक साथ लेकर चलते हुए दिखाई देते हैं।

नारी को अबला माना जाता रहा है। साथ-ही-साथ समाज उसे कमजोरी की कठपुतली बनाए रखना चाहता है। अब और नहीं कहानी में लेखिका ने बहुत ही सहज ढंग से नारी की आत्मनिर्भरता पर बल दिया है जिससे समाज की विषमताओं को मिटा सके। इस कहानी की पात्र रुक्मा है जिसके पिता धुमल ने उसे एक दलदल में ढकेला है जिसके बारे में चर्चा करना तो दूर,

सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह व्यवस्था पुरुष प्रधान समाज की एक बहुत ही घटिया सोच पर निर्भर करती है। रुक्मा को अपने अनचाहे गर्भ को भी सहना पड़ता है। वह गरीब परिवार से जान पड़ती है। उसका पिता उसे गंदे कामों के लिए विवश करता है, ताकि उसे अपनी दारु मिले और अपनी अय्याशी में कोई कमी न आ सके–'बच्चा बीमार है बाबूजी। कई दिनों से ताप ही नहीं उतर रहा। इधर तीन-चार दिन से कोई ग्राहक भी नहीं आया। सो हाथ भी खाली था। आज तुम आए हो तो कल सुबह उसे डॉक्टर के पास ले जाएँगे, अगर बापू ने पूरा पैसा दारु में न उड़ा दिया हो तो...'[2] रुक्मा एक तो गरीबी से पीड़ित है, तो उसके पिता की अय्याशी का बैंक बनती नजर आती है और उसे अनचाहे बच्चों की माँ भी बनना पड़ता है।

मनुष्य हमेशा सपने देखता है। सपना ही उसका जीवन होता है। सपने ही उसके जीवन की एक आशा होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग-अलग दुनिया होती है और उसी दुनिया में वह अपना अस्तित्व बनाए रखता है और खुश रहता है लेकिन समाज ने पुरुष-स्त्री अस्तित्व के बीच में बहुत गहरी खाई खोदी है जिससे समाज में पुरुष-स्त्री में असमानता का भाव देखने को मिलता है। यह पुरुष प्रधान समाज की एक व्यवस्था है जिसके कारण समाज के दो पाटों के बीच नारी पिसती जाती है। उसका शोषण हर तरीके से होते देखा जा सकता है। जयश्री रॉय की कहानी 'बेटी बेचवा' एक ऐसे समाज को दर्शाती है जिसे आज भी कहीं-न-कहीं पनपता हुआ देख सकते हैं। इस कहानी में एक किसान की कमजोरी एवं गरीबी की दु:खद गाथा है। तो वहीं किसान की बेटी होने से जो भी समस्याएँ हैं उसका शिकार होती है। नारी को सिर्फ भोग की वस्तु माननेवाले समाज में बहुतों मिल जाते हैं। बबुनी ठीक से खिली भी न थी कि उसका विवाह किया जाता है। जिसका विवाह पहले से ही दो बार हो चुका है–'किससे मरम के दु:ख कहे। दिनभर के हाड़तोड़ काम के बाद मन किसी के नरम परस की इच्छा करता है। देह को भोजन-पानी के साथ किसी का संग-साथ भी चाहिए। जी चाहता है, कोई दुलार-भरा स्पर्श तप्त भाल को सहला दे, तो गोर-गार बाँहे प्रेम से हाथ-गोड़ जांतदें।'[3] गंगा, बिसेसर महतो के लड़के जैसे भेड़ियों के कारण किसान अपनी बच्चियों को पति के घर सुरक्षित समझता है। पर बिरजू जैसे व्यक्ति गाँव के कमजोर समाज की लड़कियों को अपने बुने जाल में फँसाते हैं। एक ओर पिता की मजबूरी तो दूसरी तरफ स्त्री पितृसत्तात्मक समाज की व्यवस्था में पिसती नजर आती है–एक वहशी के बाघ जैसे पंजे में फँसी नन्ही-सी चिरई की बेबस फरफराहट और एक ही झनाके से कलाईभर चूड़ियों की तरह टूट गए बहुत सारे सपनों की दूर तक फैली किरचें, बबुनी की कच्ची देह के साथ उसका सब-कुछ तरह-नहस हुआ जा रहा था...[4] एक पत्नी पति के जाल में फँसी है तो उसकी बनाई जिंदगी में जीने के लिए वह नाखुश दिखाई देती है। उसकी बनी व्यवस्था पितृसत्तात्मक समाज की कूटनीतियों का ही परिचायक है। वे मानते हैं कि स्त्री घर-गृहस्थी पर ध्यान दे और अपने पति के कहे अनुसार चले। स्त्री की गुड़िया जैसे पुरुष के द्वारा बनाई जाती है जिससे वह जब चाहे अपनी इच्छाओं को पूरा कर सके। नारी अपने बच्चों के पालन-पोषण में अपनी अहम भूमिका निभाती नजर आती है लेकिन पुरुष अपने पारिवारिक जीवन से पलायन कर मौज-मस्ती में लीन है। भारतीय नारी होने का आदर्शभाव भी इस स्त्री पात्र में देखा जा सकता है।

'पिंडदान' नारी शोषण एवं वृद्ध पुरुष की इच्छाओं से भरे व्यवहार की कहानी है। कमला जोधन बाबू के शोषण का शिकार बनती है। उसकी मृत्यु प्रसूतिगृह में हो जाती है। बच्चा मरा हुआ पैदा होता है। कमला की मृत्यु के सात साल बाद वह कमला की मौसेरी बहन पूनो से शादी करता

हैं। कमला जिस प्रकार से शोषण का शिकार होती है। उसकी मौत का गम जोधन बाबू में नहीं दिखाई देता है। वह सिर्फ स्त्री को अपने भोग-विलास की वस्तु मानता है जिसका पर्दा उसकी दूसरी शादी से तय किया जा सकता है लेकिन उसके मनसूबों का प्रतिरोध करती पूनो का उसके जीवन में उतरना एक ऐसा चिह्न नजर आता है जिसका इतने अत्याचार एवं यातना से जूझती नारी का एकदम उठना स्वाभाविक दिखाई देता है। जोधन बाबू के हर प्रयास को पूनो का प्रतिरोधक स्वभाव उचित ठहराता है–'अचानक घूँघट उतारकर दुल्हन किसी बाघिन की तरह उन पर झपटी थी और इससे पहले कि वे कुछ समझ पाते या सँभलते, उनके सिर से गुच्छाभर बाल नोंचकर ताड़का राक्षसी की तरह अट्टहास कर उठी थी। भय और आंतक से जोधन बाबू बिल्कुल अवश हो आए थे। इसके बाद उनकी दुल्हन ने उन्हें किसी आदमखोर की तरह भंभोड़कर रख दिया था। अचेत होने से पहले वे समझ चुके थे, उनकी तीसरी पत्नी पागल है। कानों में कोई आज भी चीख रहा था तेरे भाग में स्त्री सुख नहीं है रे जोधनिया! मगर आज उनकी पत्नी के हाथों में उनका झोंटा था, जिसे वह निरंतर झिंझोड़े जा रही थी।'[5] जो अंत में जोधन बाबू के माध्यम से एहसास होने के भाव को भी जगाने की चाहत रखती है।

'एक रात' कहानी का प्रारंभ 'चौदह वर्ष की अवस्था में मेरा पहली बार बलात्कार हुआ था।'[6] इस वाक्य से होता है। पहली बार का मतलब यह सूचित करता है कि वह आगे भी बलात्कार से शोषित होती रहती है–'बलात्कार यानी मेरी सुहागरात, यही खूबसूरत-सा नाम दिया है न इसे हमारे समाज ने?'[7] इस कहानी में मंदिरा एक प्रमुख पात्र है। मंदिरा एक ऐसी स्त्री है, जो पुरुष-स्त्री के संबंधों को जीवन के महत्त्वपूर्ण मूल्यों की दृष्टि से देखती है। मंदिरा भारतीय नारी है। उनके चरित्र में आदर्शभाव को देखा जा सकता है। मैंने रुक्मिणी होकर सहेजा है, राधा होकर अराधा है और मीरा होकर त्यागा है, मगर हर रूप में बस पाया ही पाया है। अपने इष्ट को पूरी तरह समर्पित हुए बिना उसे पूर्णता में पाया नहीं जा सकता, यह हर औरत का सच है, फिर वह मांहो, बहन हो या फिर प्रेयसी।'[8] मंदिरा का चरित्र एक ऐसे प्रेम के अभिप्राय को समझाने का यत्न करता है, जो शाश्वत प्रेम से परिचित है। वह प्रेम जिसका कोई अंत न हो, यही अपनी कहानी 'एक रात' में स्पष्ट करती दिखाई देती है। प्रेम शब्द को अर्थहीन करनेवाले पुरुष के प्रति एक प्रकृति है जो वह अपने विचारों एवं मन के भावों को अभिव्यक्त करती है–'प्रेम को बाँधना चाहोगे तो एक दिन यह जरूर खो जाएगा। बंधन में कभी प्यार बँधा है? यह तो हवा की उँगलियों में उलझी खुशबू का झोंका है, मुक्त होकर दूर तक फैलती है, मगर मुट्ठी में बंद होकर मर जाती है।'[9] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष अहंकार के कारण अपनी नकारात्मक सोच को बरकरार रखता है जिससे वह खुद उस खोखले जीवन से नश्वर की तरफ बढ़ता है–'सेक्स एक बहुत खूबसूरत अनुभव है, मगर हमें हमारी देह को जीना चहिए, न कि उसमें मरना-खपना। आत्मा देह में रह सकती है, मगर आत्मा पर देह नहीं लद सकती, वर्ना इसकी यात्रा भी श्मशान की चिता तक पहुँचकर समाप्त हो जाएगी। पुरुष की मानसिकता पर बहुत बड़ा प्रश्न उबरता नजर आता है जिस कारण वह अपने स्वयं के वैचारिक दृष्टि से परिचित हो सके। नारी सिर्फ पुरुष के प्रति विद्रोह करती है, बल्कि इंसानियत की भावनाओं को पुरुष के भीतर जगाना चाहती है। नारी का संघर्ष अपनी पहचान और उसके मानवीयबोध की संवेदनाओं को जोड़ने के लिए है। नारी स्वतंत्र, मुक्त एवं आत्मनिर्भर होना चाहती है। मुक्ति की छटपटाहट को जयश्री रॉय की कहानियों की नारी पात्रों में देखा जा सकता है। आज समाज की इस भ्रष्ट व्यवस्था

का शिकार हर नारी को होना पड़ रहा है।

निष्कर्ष

आज भले ही डींगे हाँकी जाती हैं कि समाज में परिवर्तन हो गया है। नारी स्वतंत्र हो गई है, अब वह अबला न रहकर सबला बन गई है, नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदल रहा है, पर हकीकत कुछ और ही है। नारी आज भी पुरुषी अहंकार की शिकार हो रही है। समाज के हर क्षेत्र में उसका कम-अधिक अनुपात में शोषण हो रहा है और कुछ हद तक वह इस शोषण को चुपचाप सह रही है। विरोध की वृत्ति का आज भी उसमें अभाव पाया जाता है। आज नारी संघर्ष करेगी तो भविष्य में एक सशक्त समाज की स्थापना होगी। आज का समाज उस दहलीज पर खड़ा है।

संदर्भ

1. मीरागौतम (संपादक), अंतिम दो दशकों का हिंदी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ॰ 148
2. जयश्री रॉय, अब और नहीं, ...तुम्हें छू लूँ जरा, (कथा-संग्रह) सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ॰ 33
3. जयश्री रॉय, तुम्हें छू लूँ जरा, कहानी-बेटी बेचवा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ॰ 134
4. वही, पृ॰ 142
5. वही, कहानी-पिंडदान, पृ॰ 203
6. वही, कहानी-एकरात, पृ॰ 9
7. वही, कहानी-एकरात, पृ॰ 9
8. वही, कहानी-एकरात, पृ॰ 17
9. वही, कहानी-एकरात, पृ॰ 16

Mob. 7972932945
Email : spchindage@gmail-com

साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी विमर्श

'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास के विशेष संदर्भ में

डॉ॰ भारत श्रीमंत खिलारे
एसो॰ प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कला वाणिज्य महाविद्यालय, पुसेगाँव, ता॰ खटाव, जि॰ सातारा
सदस्य, हिंदी अध्ययन मंडल, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

महिला उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का नाम अग्रगण्य स्थान पर है। उनकी रचनाएँ भारतीय आँचल का यथार्थ दर्पण हैं। ग्रामीण जीवन का वास्तविक चित्रण इनके लेखन शैली की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। उन्होंने अपने कथासाहित्य का लक्ष्य उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड के परिवेश को बनाया है। उनके उपन्यास नारी चेतना, शोषण एवं संघर्ष के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उन्होंने नारी को परंपरागत मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करने को प्रेरित किया है। उनका समग्र साहित्य अनुभूति की अभिव्यक्ति माना जाता है। अपने पैर तले की जमीन को ही अपनी कर्मभूमि बनाकर लेखिका ने उसमें नारी मुक्ति के बीज बोए हैं।

मैत्रेयी पुष्पा जी का सन् 2002 में प्रकाशित 'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास क्रम से आठवाँ उपन्यास है। जिसे हम लेखिका की आत्मकथा भी कह सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में नारी विमर्श पर चर्चा करना इस आलेख का प्रमुख प्रयोजन है।

'कस्तूरी कुंडल बसै' उपन्यास का कथानक

' कस्तूरी कुंडल बसै' की नायिका कस्तूरी है। इस उपन्यास की सारी कथा और सारे पात्र इसी के चारों ओर घूमते हैं। कस्तूरी का रूप एक आधुनिक स्वाभिमानी नारी का रूप है। वह आरंभ से ही व्यक्तित्व के प्रति संघर्षरत है। जो विवाह के बंधन को नकारकर स्वतंत्र और मुक्त जीवन जीना चाहती है। इसलिए माँ और भाई के कहने पर भी अपनी बात पर अड़ी रहती है। विवाह को अपने रास्ते की सबसे बड़ी समस्या मानती है। इसके मूल में उसका परंपराओं के प्रति विद्रोह है। माँ द्वारा विवाह न करने का कारण पूछने पर उसका उत्तर है कि 'मुझे सती जाने से, जिंदा मरने से डर लगता है।'[1]

माँ और भाई के समझाने पर भी वह विवाह के लिए राजी नहीं होती किंतु भाभी का व्यंग्य उसे कमजोर बना जाता है। भाभी कहती है कि 'लड़की धान का पौधा होती है समय पर उसे दूसरी जगह लगा देना चाहिए, समय पर ना लगाने से पौधा मर जाता है उसकी जड़ें सूख जाती हैं और वह कड़ा हो जाता है जिसे बाद में उखाड़कर फेंक देना पड़ता है। आगे भाभी का कहना है कि 'कैसा गाँव है यह। यहाँ की लड़कियाँ यह नहीं जानती कि जवानी में औरत को रोटी-कपड़ा वही देता है जो उसके संग सोए बैठे! अपना बच्चा पैदा करे। इस घर में बहन का इरादा भईया के संग सोने का हो गया होगा।'[2] यह व्यंग्य कस्तूरी के लिए असहनीय है। कस्तूरी

का विवाह एक प्रौढ़ व्यक्ति से चाँदी के आठ सौ कलदरों के बदले में करा दिया जाता है।

कस्तूरी ने घूँघट की रस्म भी नहीं मानी। मायका भी उसके लिए पराया हो गया। नाममात्र के लिए उसका पारंपरिक रीति-रिवाजों से स्वागत भी उसे व्यंग्य ही लगा। कस्तूरी व्रत-त्यौहारों को भी नहीं मानती है उसका मानना है कि 'ये भुखमरी को मात देने का नायाब तरीका है।' पुत्री के पश्चात हुई पति की मृत्यु ने कस्तूरी के जीवन को एक नया मोड़ दिया। वह संपूर्ण मुक्ति के लिए छटपटाने लगी। वह महिला मंडल में सहायक विकास अधिकारी के पद पर कार्य करने लगी। इसके माध्यम से गाँव-गाँव घूमकर स्त्रियों को नारी शक्ति का परिचय देकर उन्हें रूढ़ि, प्रथा, परंपराओं के विरुद्ध स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना का महत्त्व समझाने लगी। इस कार्य से प्रभावित उसकी सखी 'गौरा' भी इसी के साथ जुड़ जाती है। कस्तूरी महिला कल्याण के लिए निरंतर कार्यरत थी। पर पुत्री की जो उपेक्षा उस समय हुई उसका परिणाम उसे जीवनभर भोगना पड़ा। बेटी को माँ का प्यार नहीं मिल पाया, वह दूसरों के घरों में पलती रही। अत: पुत्री मैत्रेयी माँ कस्तूरी के प्रति सदा असहिष्णु ही रही।

कस्तूरी, मैत्रेयी को भी अपने साँचे में ढालना चाहती है। इसीलिए वह अपने ससुर से कहती है, 'मेरा भरोसा करो दादा जी। मैं अपनी बेटी को पढ़ा-लिखाकर बड़ा करूँगी कि मेरे तुम्हारे बाद वह हमारे दुश्मनों का मुकाबला करें।'[3] किंतु मैत्रेयी का अपना अलग रास्ता था, वह माँ का साथ नहीं दे पाई। पति की मृत्यु के बाद संघर्षरत कस्तूरी को दूसरे विवाह के लिए कहा गया, पर वह न मानी। वह निरंतर स्त्रियों में नई चेतना जगाने का कार्य करती रही। कस्तूरी की मान्यता है कि मात्र पुरुष का साथ स्त्री को कभी आनंद नहीं दे सकता जब तक कि उसके विचारों का आदर न हो।

कस्तूरी के लिए गाँव की नारी को जाग्रत करना अत्यावश्यक है क्योंकि 'ये सब गाँव की गोपिकाओं, रसिकाओं और यशोदाओं के सिवा हैं क्या? निश्चय ही ये मैत्रेयी, गार्गी नहीं हो सकती, कितने ही पुराण सुना लो। इन्होंने अपने संस्कारों के भीतर ही जीवन बिताना तय माना है मानती रहीं।'[4] महिलाओं को नारी शक्ति का परिचय देने वाली कस्तूरी के लिए भाग्य पर भरोसा करना मूर्खता है। इसलिए वह स्त्रियों को जाग्रत करते हुए कहती है, 'हम अपना भाग्य बदल नहीं पाते, पर सँवार तो सकते हैं। जीवनभर दुर्भाग्य पर रोते रहे तो आगे भविष्य नहीं रहेगा। इसलिए नारी को रूढ़ियों से मुक्ति के लिए क्रियाशील रहना चाहिए। उसे अपना भाग्य स्वयं बनाना होगा। इसमें कस्तूरी के माध्यम से स्त्री की मुक्ति की छटपटाहट स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। रूढ़ियों से पीड़ित उपेक्षित नारी अपनी मुक्ति का मार्ग ढूँढ रही है। मैत्रेयी को वह उच्चशिक्षा के लिए दूसरों के घरों में रखती है। पर मैत्रेयी को यह स्वीकार नहीं हैं क्योंकि वहाँ किए गए अत्याचार असहनीय हैं। कस्तूरी इसे समझ नहीं पाती और बेटी को उन्हीं परिस्थितियों को सहने के लिए विवश करती है।

कस्तूरी का आधुनिक नारी रूप मैत्रेयी के विवाह में दिखाई देता है। वह सारी परंपराओं को तोड़ देती है। जाति भेद का विरोध करते हुए कस्तूरी विवाह में निम्न जाति की स्त्री हबीबन से काम करवाती है। कस्तूरी का कहना है, 'गंगाजल की बूँदों से क्या हर आदमी पवित्र हो जाता है? मुसलमान से हिंदू हो जाता है? हिंदू से ब्राह्मण जैसा पूजनीय बन जाता है।'[5] विदाई के अवसर पर कस्तूरी अपनी पुत्री से कहती है, 'लाली ब्याह तो हो गया, परंतु नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना। पाँव-फाँव मत पूजना किसी के भी, तुझे चूल्हे-चौके से बाँधा जाएगा साफ

मना करना, सिंगार-पटार में मत लगी रहना। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी जाना पी-एच॰डी॰ की बात करना, हर बात अपनी इच्छा से करना।' विदाई के अवसर पर पुत्री को ऐसी शिक्षा देनेवाली (माँ) नारी का यह उदाहरण अद्वितीय है।

इस प्रकार स्वाभिमानी, कर्मठ स्त्री का अपनी पुत्री के लिए आशीर्वाद है। विवाह के बाद भी कस्तूरी बेटी को अपने पास ही रखना चाहती है। कारण वैवाहिक बंधनों से मैत्रेयी को बचाना है, पर मैत्रेयी यह नहीं चाहती। वह पति का साथ चाहती है। कस्तूरी बेटी को जनसंख्या नियंत्रण की बात समझाती है। उसके विचार से प्रत्येक स्त्री बच्चा पैदा करने की मशीन बन गई है। कस्तूरी नारी मुक्ति की बात समझाते हुए कहती है, 'वर्षों से, सदियों से औरत ने उन पत्थरों पर पाँव धरकर स्वर्ग देखना चाहा है, जो लाखों गर्मी, बरसातें झेलकर नर्म मुलायम हो गए हैं। यह नहीं समझा कि मुलायम चीज या तो वजन नहीं झेल पाती या इतनी चिकनी हो जाती है कि पाँव फिसल जाए। परटीली काई हर जगह जमा हो रही है और नए जमाने की औरत भी यह नहीं सोच रही कि अब उसे खुरदुरे पत्थर बिछाने हैं।'

कस्तूरी के महिला मंडल का विरोध करते हुए मुख्यमंत्री कहते हैं, 'औरतों का दफ्तरों में, रुरल डेवलपमेंट डिपार्टमेंट में क्या काम? चलो मास्टरनी, नर्स, मिडवाइफ या जनानी-डॉक्टर हो जाओ। नहीं तो घर में रहो। घरेलू काम कौन करेगा। बच्चे कौन पालेगा।'[6]

इन राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करते हुए कस्तूरी का कथन है, 'भाई बड़े चालबाज निकले ये तो देश आजाद होते ही आँखें बदल लीं। गद्दियाँ, कुर्सियाँ, सँभालते ही राजा हो गए। तमाम राजा-महाराजा अपना-अपना फरमान लिए चले आ रहे हैं। रिआया औरत जात थोड़ा-बहुत देकर बहला दो। दूसरा कहता है दिए हुए को छीनकर औकात दिखा दो। औरत घर में रहे, आज्ञा ढोए, सेवा करे, बेटे पैदा करती जाए तब ये हमारे ऊपर अहसान करेंगे। औरतों के बेटों को रोजगार देंगे। बस मर्द होना ही योग्यता है, उसके आगे औरत की तमाम जरूरतें कहाँ ठहरती हैं। देश आजाद किसने मान लिया? औरतों की आजादी तो गुलाम पड़ी है। स्वतंत्रता संग्राम में औरतों ने लाठियाँ खाईं, अस्मत लुटाई उनकी स्वतंत्रता कब आएगी?

अपने अस्तित्व के लिए लड़ती कस्तूरी का कहना है कि 'हम लड़ेंगे ऐसे ही लड़ेंगे जैसे इनके साथ मिलकर अँगरेजों से लड़े थे। हम हक की बात कहें तो ये लाठियाँ चलाते हैं, हमारे कपड़े फाड़कर हमें नंगा करते हैं, हवालातों में कुकर्म करने में हिचकते नहीं। सच मानो तो फिरंगों ने इनते जुल्म नहीं ढाए थे। न जमीन, न जल, न हवा, न इज्जत, न आबरु! सब हमारे आस-पास घिरे मर्दों का है, जब चाहे बख्श दें, जब चाहें उतार लें। पर हम फिर भी लड़ेंगे अपनी जान के लिए, अपनी इंद्रियों के लिए अपने इंसान होने के लिए।'[7]

इन सबका विरोध कर अपने अस्तित्व के लिए लड़ती कस्तूरी पर झूठे आरोप लगाकर उसे जेल भेज दिया जाता है। कस्तूरी की यात्रा गाँव से शुरू हुई और इगलास, अलीगढ़, झाँसी तक पहुँची और वहाँ पूरे क्षेत्र में निर्भय होकर चलती हुई महिला मंडल को गाँव-गाँव फैलाया और प्रदेश की राजधानी लखनऊ में उसकी यात्रा खत्म हो हुई। वह बेटी से कहती है, 'लाली, सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपने हिसाब से आदमी रिवाजों को मानता है, उससे बात नहीं बनती तो धर्मशास्त्रों का सहारा लेता है, वहाँ भी विश्वास नहीं जमता तो गुरु-पैगंबर खोजता है और जब कहीं पेश नहीं जाती तो अपनी अंतरात्मा ही खँगालता है—जो उसका आखिरी आसरा है।'

मैत्रेयी स्वाभिमानी स्वतंत्र विचारों वाली साहसी नारी है। पर माँ का नारी मुक्ति का नारा

उसे स्वीकार नहीं है। कस्तूरी का नारी मुक्ति प्रयत्न उसे अतिवादी लगता है। जहाँ वह अपनी पुत्री से सहज जीवन नहीं दे पाती। नारी को स्वतंत्र बनाने के लिए बेटी को पराया बना देती है। बेटी पर किए अत्याचार उसके समझ से बाहर हो जाते हैं। जिसे मैत्रेयी सहन नहीं कर पाती। प्रत्येक पुरुष के प्रति माँ का संदेह व्यक्त करना मैत्रेयी की दृष्टि में नारी मुक्ति की अतिवादिता है। कस्तूरी के विरुद्ध मैत्रेयी सांसारिक जीवन जीना चाहती है। कस्तूरी दहेज प्रथा का विरोध करती है। इसी कारण मैत्रेयी माँ की इच्छानुसार किसी से भी विवाह के लिए तैयार होती है। मैत्रेयी भी खादी के वस्त्र पहनकर महिला मंडल का कार्य करती है पर अपने मन को नहीं मार पाती उसके मन में रह-रहकर लहरें उठती ही हैं।[8]

मैत्रेयी पर अत्याचार की कोशिशें हुईं। स्कूल का सहपाठी जगदीश, सारस्वत क्लर्क, बी॰डी॰ओ॰, बूढ़ा श्रीप्रकाश, मोंठ कॉलेज के प्रिंसिपल आदि उसे अपनी वासना का शिकार बनाने का प्रयास करते हैं जिसका विरोध करते हुए मैत्रेयी आगे बढ़ती है। मैत्रेयी नारी शोषण का मूल, परिचित व्यक्ति को ही मानती है। 'सौ अनजान लोग कुछ नहीं बिगाड़ सकते किसी लड़की का। कपड़े उतारने के लिए एक परिचित हमदर्द ही काफी है। अपनापन ही तो आसानी से फरेब दे जाता है।'

मैत्रेयी को मित्र की कमी सताती है। बार-बार स्कूल बदलने से कोई उसका अपना न हो सका अनेक लोग उसके मन को छूते रहे पर कोई उसका न हो सका। स्कूल का सहपाठी राघव है, संस्कृत की क्लास में 'कुमारसंभव' पढ़ते हुए मैत्रेयी को टुक-टुक देखता है और पार्वती, अपर्णा लिखकर चिट फेंक देता है। उसने लिखा पहला पत्र पढ़कर मैत्रेयी रातभर ठीक से सो नहीं पाई। राघव एक दर्जी का बेटा था। जो कविताएँ करता था। मन मारने से मन की इच्छाएँ नहीं मरतीं। युवा होती लड़की में अदम्य आकांक्षाओं का स्रोत कहाँ से फूटता है, यह मैत्रेयी नहीं जानती। राघव दृश्य से बेबसी में हट गया क्योंकि उसके पिता गंभीर रूप से बीमार हुए और उसे अपना समय सिलाई की मशीन के हवाले करना पड़ा। उसके बाद एक नाटक में बाज बहादुर उसका हीरो बना। जो उसे एक बस ड्राइवर से बचाता है। इसके पश्चात् उसे शिवदयाल की याद आती है। कुछ दिन बाद वह आर्मी ज्वाइन कर चीन के विरुद्ध युद्ध करने चला जाता है। बाद में नंदकिशोर उसके जीवन में आता है। पर माँ के नियम उसे कहीं स्थिरता नहीं देते। वह अपने-आपसे प्रश्न करती है—वह कौन सा संसार है, जहाँ लड़की अपनी इच्छा से जीवनसाथी चुनती है? विश्वास अर्जित करने का अवसर पाती है। मैत्रेयी मन में अयोध्याप्रसाद के सपने देखती है और माँ उसे डॉक्टर से बाँध देती है तब उसे लगता है—'क्या उसका दिल मंदिर है, ईंट-पत्थरों का मंदिर, जिसमें कोई भी मूर्ति कभी भी स्थापित कर दी जाए?'

स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण सहज रूप में लिया जाता है पर वही स्त्री को झिंझोड़कर रख देता है। कॉलेज में किए गए लड़कियों के परिहास उसे झकझोर देते हैं। चरित्रहीन स्त्रियों का रूप समाज के सम्मुख रखने में वह असफल हो जाती है। उपन्यास में मैत्रेयी का संघर्ष बाल्यकाल से लेकर अंत तक चलता है। अपने विवाह के अवसर पर उसे पति को ठहराने की जगह स्वयं ढूँढनी पड़ती है। मैत्रेयी का विवाह डॉक्टर से होता है। दहेज की माँग पर वह कहती है—'मैंने अग्निसाक्षी करके तुम्हारे साथ सात फेरे लिए हैं। विवाह की रस्म में विश्वास करने वाले तुम यह जान लो कि मुझे ले जाना अब तुम्हारा काम नहीं तुम्हारे साथ-साथ जाना मेरा हक है। इसमें किसी नीति-रीति का दखल नहीं। इसमें धन-संपत्ति की बात कहाँ से आई।'

विवाहोपरांत अन्य पुरुषों से बातचीत संशय की दृष्टि से देखी जाती है। मैत्रेयी पति का हाथ थामकर चलना चाहती थी, पर यह हो नहीं पाया। विवाह होना नारी की मुक्ति मानना उसे स्वीकार नहीं है। विवाह का बंधन मन पर नहीं होता, मैत्रेयी के साथ यही हुआ। मैत्रेयी माँ की ममता और पिता प्रेम प्राप्त करना चाहती है, पर दोनों उसे नहीं मिल पाते। डॉक्टर मैत्रेयी को त्यागकर चले जाते हैं। मैत्रेयी उन्हें सहचर नहीं मान पाती–'जो संकट मेरे हैं, बस मेरे ही हैं। तुम उनको और भी गहरे बनाओगे और घाव की तरह कुरेदोगे, तुम जाओ सहचर होने का भ्रम क्यों देते हो?'

मैत्रेयी की दृष्टि में स्त्री होना स्त्रीत्व का अभिशाप है। स्त्री ही स्त्री की शत्रु है। जो उसकी भावनाओं को समझ नहीं पाती। मैत्रेयी को माँ का संतानोत्पत्ति को लेकर किया गया व्यंग्य कठोर लगता है। मैत्रेयी के विचार में स्त्री को मादा तो बना दिया, पर पक्षियों से अलग मस्तिष्क भी दे दिया, जो उसे सोचने पर मजबूर करता है। स्त्री चाहे कितनी आधुनिक हो जाए उसका शोषण रूप मात्र बदला है। प्रत्येक युग में नारी 'नारी' ही रही है। उसके विचार मात्र समय बिताने के मनोरंजन माने जाते हैं। पर मैत्रेयी इन सबसे परे नारी के अस्तित्व की स्वतंत्र स्थापना चाहती है।

मैत्रेयी अपनी बेटी से भी अपनी तरह स्वतंत्र, स्वाभिमानी और साहसी जीवन बिताने की आशा रखती है। इसलिए वह उसे घर की छत पर ले आती है और आकाश का अनंत विस्तार दिखाती है। मानो उसे कह रही हो इसी तरह तुम्हें विशाल बनना है।

नारी-शिक्षा और नारी-चेतना की आधारभूमि

'कस्तूरी कुंडल बसै' की आत्मकथा में मैत्रेयी की माँ कस्तूरी देवी शादी करना नहीं चाहती थी। उसे अपनी पढ़ाई पूरी करनी थी और उसे खुद के पैरों पर खड़ा होना था। लेकिन अपनी माँ-भाभी के कारण उसे अधेड़ उम्र के आदमी से शादी करनी पड़ी। शादी के कुछ सालों बाद ही पति की मृत्यु हो गई और कस्तूरी में एक अलग चेतना ने जन्म लिया। समाज के प्रति विद्रोह करके कस्तूरी ने अपनी पढ़ाई पूरी की। अपनी छोटी बच्ची को दादा के पास रखकर उसने अपनी दसवीं तक की शिक्षा पूरी की और समाज कल्याण ऑफिस के महिला मंडल कार्यालय में नौकरी करने लगी। कस्तूरी की यही जिद थी कि वह अपनी बेटी मैत्रेयी को भी इस काबिल बनाए। मैत्रेयी ने एम॰ए॰ (हिंदी साहित्य), बुंदेलखंड कॉलेज, झाँसी में पूरा किया। पढ़ाई के लिए मैत्रेयी को बहुत सारे अत्याचारों से गुजरना पड़ा। कई संघर्षों और शोषण का सामना करना पड़ा।

अन्याय की प्रतिक्रिया स्वरूप नारी की आत्मचेतना

'कस्तूरी कुंडल बसै' आत्मकथा में मैत्रेयी की माँ कस्तूरी विधवा होने पर अपनी शिक्षा पूरी करके सरकारी नौकरी करती दिखाई देती है। सती रेशम कुँवर की कथा पलटकर सुनाने वाली स्त्री ने विधवा कर्त्तव्य नहीं पढ़ा, निंदा, अपमान या हानि-लाभ का लेखा-जोखा नहीं किया। अनदेखे खतरनाक रास्तों पर कस्तूरी ने सचमुच किसी विराट दुनिया में अकेले ही तय किया दिखाई देता है। यहाँ पर अपने पर होने वाले अन्याय की प्रतिक्रिया ही कस्तूरी की आत्मचेतना को जगाती रही है। इस संदर्भ में मैत्रेयी का कहना है, 'क्या माँ ने सचमुच शिक्षित होने के लिए शिक्षा ली थी? अपने खुले हुए मन को और खोलने के लिए? या वह इस गाँव की औरतों के लिए नजीर बनना चाहती थी कि आजादी के बाद का भारत स्त्रियों के चलते यह रूप लेगा।'[9] मैत्रेयी पुष्पा भी कॉलेज में पढ़ते समय अपने पर होने वाले अन्यायों का प्रतिकार करती दिखाई देती हैं।

नारी-विमर्श और नारी-चेतना

नारी जब से बल रूप में प्रस्तुत होती है तब उसे समाज में अपने पैरों पर खड़े होने के लिए मदद भी होती है। प्राचीनकाल की नारी शिक्षा से वंचित रही। वर्तमानकाल में नारी को पढ़ने का अवसर मिला। फलतः नारी आत्म उन्नत हुई। अपनी मर्जी से नारी नौकरी करके घर में आर्थिक मदद भी करने लगी है। आज लड़कियों के माता-पिता उन्हें पढ़ाने लगे हैं। ताकि यदि उसके वैवाहिक जीवन में कोई कठिन परिस्थिति आ जाए तो वह अपना गुजारा स्वयं कर सके। विवेच्य आत्मकथा में नारी पढ़ी-लिखी, नौकरी पेशा तथा उद्योगशील भी दिखाई देती है। वह अपने परिवार की मदद के लिए नौकरी भी करती है। नौकरी न करे तो उनकी हालत बहुत बुरी नजर आती है। नारी को यदि स्वाभिमान से जीना है तो उसे आत्मनिर्भर होना आवश्यक है। क्योंकि समाज की रीति ही यह है कि जिस व्यक्ति के पास पैसा है वही व्यक्ति समाज में पूजनीय तथा माननीय बन सकता है। नारी कठिन परिस्थिति में भी नौकरी के बल पर समाज में मान-सम्मान के लायक बन जाती है। इसी विमर्श के फलस्वरूप नारी स्वतंत्र रूप से जिंदगी जीने के लिए समर्थ बन रही है। अपनी समस्याओं को हल करने के लिए भी वह काफी सफल हो रही है। नारी विमर्श की यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है।

नारी विमर्श का ठेठ मतलब है नारी के बारे में गंभीरता से सोचना। नारी का 'स्व', अस्मिता, स्वाभिमान आदि के बारे में गंभीरता से सोच विचार करना और अन्यायपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन की माँग करना ही नारी विमर्श है। शिक्षा के परिणामस्वरूप आजादी के बाद नारी विमर्श को उत्तरोत्तर बल मिला। विगत दो दशकों से नारी विमर्श की संकल्पना को अधिक बल मिला।

'कस्तूरी कुंडल बसै' की मैत्रेयी पुष्पा ने प्रिंसिपल द्वारा किए गए बलात्कार के प्रयास से अपना बचाव खुद किया है। माँ कस्तूरी जब प्रिंसिपल से माफी माँगने के लिए कहती है तब मैत्रेयी बड़ी निडरता से माफी माँगने से इंकार करती है। इससे यही लगता है कि मैत्रेयी में अन्याय का विरोध करने की चेतना है।[10]

बंधनों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप नारी

'कस्तूरी कुंडल बसै' की कस्तूरी देवी ने अपने पति के गुजर जाने के बाद सभी बंधनों को तिलांजलि देकर अपनी शिक्षा पूरी की फिर सरकारी नौकरी पाकर उसने अपना और बेटी मैत्रेयी का जीवन सँवारा। यह चेतना का ही फल है। नारी में चेतना न होती तो वह कुछ कर नहीं पाती। कस्तूरी ने अपनी बेटी मैत्रेयी को भी अपने अनुशासन में ही रखकर पाल-पोसकर बड़ा किया। उसकी बी॰ए॰ में पढ़ती लड़की एक दिन बोली, 'माताजी, मेरी शादी करा दो।' कस्तूरी महिला मंडल योजना की सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त ग्रामसेविका थी। उसने बीसियों परित्यक्त विधवा स्त्रियों का उद्धार किया था। कस्तूरी खुद पढ़ी-लिखी होने की वजह से वह किसी बंधनों में बँधने वाली नहीं थी और वह अपनी बेटी मैत्रेयी को भी बिना शिक्षा पूरी किए शादी जैसे बंधनों में बाँधना नहीं चाहती थी। शिक्षा से ही नारी में चेतना दिखाई देती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत उपन्यास भारतीय स्त्रियों के लिए जागरण की कथा है। यह मैत्रेयी का ऐसा उपन्यास है, जिसमें माँ, बेटी, विधवा, नौकरी पेशा महिला, छात्रा, पुरुषों की बुरी निगाह की शिकार युवती, बिना भाई तथा बाप की विवाह योग्य बेटी और पत्नी आदि के जरिए नारी के

विविध रूप व्याख्यायित हैं लेकिन पुरुष प्रधान समाज के संदर्भ में ही नारी के दो रूप प्रस्तुत हैं, जिन्हें वर्तमान समय में हम अपने इर्द-गिर्द ही पा सकते हैं।

संदर्भ

1. पुष्पा मैत्रेयी, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन (प्रा॰लि॰), नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ॰ 10
2. वही, पृ॰ 16-17
3. वही, पृ॰ 29
4. वही, पृ॰ 42
5. वही, पृ॰ 225
6. वही, पृ॰ 295-96
7. वही, पृ॰ 298
8. डॉ॰ क्षीरसागर केशव, कस्तूरी कुंडल बसै : नारी संघर्ष का दस्तावेज, ए॰बी॰एस॰ पब्लिकेशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2015, पृ॰ 72
9. पुष्पा मैत्रेयी, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन (प्रा॰लि॰), नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ॰ 43
10. डॉ॰ गायकवाड क्रांति, समकालीन नारी : जीवन और हिंदी आत्मकथा, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2016, पृ॰ 241

मो॰ 9028490342 / 9970340002

साठोत्तरी कहानी के विविध आयाम

डॉ॰ शहनाज महेमुदशा सय्यद
बलवंत कॉलेज, विटा, ता॰ खानापुर, जि॰ सांगली

भारत की स्वतंत्रता के बाद जनता की मानसिकता एक ओर परंपरागत पुराने मूल्यों से जुड़ी है तो दूसरी ओर नवीन मूल्यों की खोज भी करती है। पारंपारिक मान्यताओं एवं आदर्शों के प्रति साहित्यकारों की नई पीढ़ी में आक्रोश एवं विद्रोह सदा से रहा है, जो वास्तव में समाज में परिवर्तन एवं आधुनिकता की देन है। नई कहानी में पुरानी परपंरा के प्रति विद्रोह युग की संवेदना के अनुकूल ही था। पुरानी मान्यताओं के प्रति प्रश्नचिह्न साठोत्तरी कहानियों की वास्तव एवं मूल प्रवृत्तियाँ हैं जिनकी परिणति निराशा, अकेलापन, संत्रास, कुंठा एवं हताशा में होता है। सन् साठ के पश्चात् उभरा यह कहानी आंदोलन है जिसने मानव जीवन की निरर्थकता, ऊब, और संवेदनहीनता को स्वर प्रदान किया है। साठोत्तरी हिंदी साहित्य मुख्यत: नवलेखन, नई कविता, नई कहानी आदि का युग है जिसमें विद्रोह एवं अराजकता का स्वर प्रधान है। वस्तुत: साठोत्तरी कहानी परिवर्तन का दूसरा महत्त्वपूर्ण दौर है जो 1961 से माना जा सकता है। यह वह समय था जब साठोत्तरी कहानी अलग-अलग आंदोलनों के रूप में खुद को नई कहानी की रूढ़ियों से मुक्त कर अपने बदलाव का परिचय दे रही थी। साठोत्तरी पीढ़ी के कहानीकारों ने ऐसे प्रतिभासंपन लेखक दिए हैं जिन्होंने न केवल मानव जीवन की विसंगतियों को कहानी में अभिव्यक्त किया है, बल्कि शिल्प के स्तर पर भी विविध अभिनव प्रयोग किए हैं।

जब से मानव में सोचने या समझने की प्रवृति का निर्माण हुआ है तब से कहानी का विकास माना जा सकता है। कहानी कहने या सुनने की कला वस्तुत: बहुत पुरानी है परंतु आलोचकों की दृष्टि में आधुनिक संदर्भों में हिंदी कहानी का प्रारंभ आधुनिककाल से हुआ है। आधुनिकयुग में हिंदी कहानी ने अपने पिछले युगों की परंपरा में बँधकर सामूहिक एवं समग्र रूप से जो विरासत पाई थी, उसी को नवीन रूपों में सँवारा एवं निखारा है। नए-नए आयामों, स्थितियों तथा बदलते परिवेश में भी वह परिवर्तन की पक्षधर है। इसी वजह से समय-समय पर कालक्रम के अनुरूप नया रूप धारण करती रही है।

1965 में कलकत्ते में एक कथा-गोष्ठी का आयोजन किया गया था। जिसमें 'नई कहानी' के खिलाफ असंतोष के स्वर उभरे तथा जिसका आगाज इस कथा-गोष्ठी के कुछ ही दिनों बाद आरा (बिहार) में कथा-गोष्ठी के समय में हुआ। यह संगोष्ठी सन् 60 के बाद उभरने वाली कथाकर पीढ़ी की थी, जो अपने-आपको 'नई कहानी' के दायरे से बाहर करना चाहती थी। इनमें प्रमुख रूप से गोविंद मिश्र और विजयमोहन सिंह कर्ताधर्ता थे। इस संगोष्ठी में कमलेश्वर, रवींद्र कालिया, काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, मधुकर सिंह, गंगाप्रसाद विमल आदि कथाकार शामिल थे। यहीं पर साठोत्तरी दौर की कहानियों को 'साठ के बाद की कहानी', 'समकालीन कहानी', 'आज की कहानी', 'अ-कहानी' आदि नाम दिए गए। इसके प्रमुख थे–गंगाप्रसाद विमल।

 ISSN 0975-735X

साठोत्तरी कहानी का विकास बहुआयामी और बहुकोणीय है। इस युग के युवा कहानीकारों ने आक्रोश की मुद्राएँ अपनाईं और अपने युग के यथार्थ को पकड़ा ही नहीं उसे तीव्रता से अभिव्यक्त भी किया। यह कहानियाँ मुख्य रूप से प्रयोगधर्मिता को महत्त्व देती हैं जिसका मुख्य कारण बढ़ती हुई मनुष्य विरोधी दारुण स्थितियों का चित्रण है। इस संदर्भ में डॉ॰ बापूराव देसाई जी कहते हैं–'साठोत्तरी कहानी का मुख्य स्वर युग को नई अर्थवत्ता देना तथा अपने परिवेश को यथार्थ संदर्भों में चित्रित करना है जिनके मुख्य स्वर निषेध एवं विद्रोह के हैं, निषेध आर्थिक विसंगतियों का है और विद्रोह सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध है। अत: स्थापित मूल्यों के अस्वीकार के कारण इसमें तीखापन आ गया और यह संबंधहीनता या अपरिचय की कहानी बन गई। इसमें भय, संत्रास, अजनबीपन का चित्रण बदलती हुई मानसिकता को अभिव्यक्ति देने के लिए किया गया है।' साठोत्तरी आंदोलन में ज्ञानरंजन की कहानियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी कहानियाँ समकालीन सामाजिक जीवन की अनेकानेक परिस्थितियों का खुलासा करती प्रतीत होती हैं। साठोत्तरी कहानिकारों में उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, सूर्यबाला आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं।

साठोत्तरी कहानी आंदोलन के बाद हिंदी कहानी में जो अन्य कहानी आंदोलन हुए, उनमें 1964 में सचेतन कहानी, 1968 में सहज कहानी, 1972 में समांतर कहानी एवं 1979 में सक्रिय तथा जनवादी कहानी आंदोलन सामने आए। नवंबर, 1964 में सचेतन कहानी की शुरुआत सचेतन कहानी के विशेषांक से हुई, जिसका संपादन महीपसिंह ने किया था।

हिंदी कहानी के विविध आंदोलनों में साठोत्तरी कहानी का एक विशिष्ट स्थान है। वास्तविक रूप में यह नई कहानी के विकास का ही एक चरण है परंतु इसे अलग दिखाते हुए यह माना जाता है कि यह कहानी आंदोलन नई कहानी की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई। हाँ, यह सही है कि संवेदना और शिल्प के स्तर पर बहुत कुछ नवीनता नजर आती है। डॉ॰ रामदरश मिश्र इस संदर्भ में कहते हैं, 'साठोत्तरी कहानी नई कहानी की बुनियादी बातों को लेकर ही भिन्न-भिन्न तरह से अपना विशिष्ट स्वरूप निर्मित करने की चेष्टा करती है। इसीलिए मैंने नई कहानी का विश्लेषण करते हुए सामान्य रूप में उसकी व्याप्ति आज तक मान ली है।'

सचेतन कहानी–सचेतन कहानी आंदोलन साठोत्तरीयुग का प्रथम आंदोलन है जो नई कहानी के नितांत भिन्न भूमि पर स्थित है। इस कहानी आंदोलन का संपादन महीपसिंह ने किया। उन्होंने 'सचेतन' को एक दृष्टि बतलाते हुए कहा, 'वह दृष्टि जिसमें जीवन जीया जाता है और जाना भी जाता है। यह कहानी जीवन को नए तरीके से देखती है, उन्हीं के शब्दों में... मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है। सचेतन कहानी में जीवन दृष्टि, यथार्थ दृष्टि एवं परिवेश दृष्टि का नया रूप नजर आता है। इसके अन्य प्रवक्ता राजीव सक्सेना इस बारे में कहते हैं, 'सचेतन कहानीकार मनुष्य को सर्वांग और संपूर्ण रूप में देखना चाहते हैं, अचेतन और अवचेतन अस्तित्व से लेकर उसके सचेतन रूप तक और उसके सचेतन रूप को मानव व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णयकारी मानते हैं।' इस कहानी में घुटन को बार-बार दुहराया नहीं गया, बल्कि मनुष्य के आत्मविश्वास को प्रकाशित एवं प्रस्थापित किया गया। इस कहानी ने मानव और मानवता की खोज की। इन कहानीकारों में महत्त्वपूर्ण हैं–महीपसिंह, बलराज पंडित, वेद राही, मनहर चौहान, रामकुमार भ्रमर, धर्मेंद्र गुप्त, कुलभूषण इत्यादि। इसमें महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं–मनहर चौहान की 'बीस सुबहों के बाद' धर्मेंद्र गुप्त की 'मोड़ से पहले' योगेश गुप्त की 'एनक्लोजर', महीपसिंह की सन्नाटा, कील, पानी और पुल इत्यादि।

इन कहानियों में कथ्य पर अधिक बल दिया गया, उसके शिल्प पर नहीं। इनमें मध्यमवर्गीय महानगरीय जीवन को चित्रित किया गया। सचेतन कहानी का अध्ययन तीन तत्त्वों के आधार पर किया जा सकता है–दृष्टि, अभिव्यक्ति और सक्रिय निरंतरता। इस कहानी आंदोलन में नैराश्य, बौद्धिक तटस्थता और अनास्था का प्रत्याख्यान किया गया एवं व्यर्थता, आत्मपराभूत एवं मृत्यु भय का परिहार किया गया। सचेतन कहानी में आत्म सजगता के साथ संघर्षेच्छा भी देखने को मिलती है। इसने पश्चिम से आयातित जीवन मूल्यों–निराशा, कुंठा, अनास्था, अकेलापन आदि का विरोध किया और भारतीय परिवेश के भीतर सहज गति से प्रवहमान जीवन स्थितियों को स्वीकार कर संघर्षशील चेतना की सक्रियता पर बल दिया। यह कहानी सही अर्थों में मानव-जीवन की आत्मसजगता, जागरूकता एवं संघर्षशीलता की कहानी है। उसके लिए परिवर्तित परिवेश को स्वीकार करके जीना ही सक्रिय होकर जीना है। इसने सातवें दशक में कहानी की जड़ता को तोड़ा और उसे फिर जीवन की ओर मुड़ने के लिए प्रेरित किया।

अकहानी आंदोलन–यह आंदोलन साठोत्तर युग का दूसरा आंदोलन है जिसके अंतर्गत व्यक्ति अकेला देखा गया, न तो वह किसी के साथ है, और न कोई दूसरा उसके साथ है। इन कहानियों के पात्रों में अतीत और भविष्य के लिए कोई स्थान ही नहीं है और वर्तमान भी केवल नाममात्र है। वह क्षण या मूड के रूप में निःशेष बनकर रह गया है तथा पूर्णतः आत्मकेंद्रित है। निराशा, हताशा, बेकारी, मोहभंग नई कहानी में समाई हुई थी, वह साठ के दशक में और भी गहरा हो गए। आदर्श और स्वप्न के बचे मानव-मूल्य भी टूटकर चूर-चूर हो गए। उस समय के युवाओं के पास न कोई स्वप्न थे, और न ही कोई उम्मीद। इसी समय अकहानी आंदोलन का विकास हुआ, जिसमें विद्रोह, निषेध के साथ बेरोजगारी, मतलबपरस्ती, राजनीतिक पतन, संबंधहीनता आदि की तीखी अभिव्यक्ति हुई। साथ ही विद्रोह चेतना का मूल अर्थगत वैषम्य बन गया। इन कहानियों में आम आदमी के जीवन में अर्थाभाव के प्रति रोष दिखाई दिया। जिसे देख कई विद्वानों ने अकहानी पर विदेशी कहानी एवं विदेशी लेखक गिंसबर्ग का प्रभाव माना और अकहानी को पश्चिम में चले 'एंटी स्टोरी मूवमेंट' की अनुकृति तथा उसका हिंदी संस्करण माना। डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल कहते हैं–'अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल्य की स्थापना का अस्वीकार।' अकहानी कहानी के स्वीकृत मानदंडों को तोड़ती है एवं जीवन-संदर्भों को कहीं अधिक खुलेपन से व्यक्त करती है। गिरिराजकिशोर की 'पेपर वेट', 'फ्राकवाला', रवींद्र कालिया की 'काला रजिस्टर', 'कोजी कॉनर,' में उस दौर की व्यवस्था के आतंक को हम महसूस कर सकते हैं। दूधनाथ सिंह की 'स्वर्गवासी', रामनारायण शुक्ल की 'किसी शनिवार को' आदि में बेकारी की स्थिति का वर्णन है। इस दौर को व्यक्त करते हुए शिवकुमार मिश्र के अनुसार–'समूची रचनाशीलता के संदर्भ में वह मोहभंग, विभ्रमों, व्यवस्था के स्वैराचार और अतिशयता के विरुद्ध संवेगात्मक, जिहादी किस्म की प्रतिक्रियाओं का दौर था, मूल्यों के विलोप या अपहरण के उन्मादी रोष के तहत मूल्यहीनता, निषेधवाद और व्यर्थताबोध में प्रमाण कर जाने, शहादत के भ्रम में आत्मघाती चेष्टाओं का, क्रांतिकारी लफ्फाजी और फार्मूलाबाजी का दौर था।' इसकी अभिव्यक्ति उस समय के तकरीबन सभी कहानीकारों में नजर आती है जिसमें प्रमुख हैं– दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', ज्ञानरंजन की 'पिता', कृष्णबलदेव वैद की 'त्रिकोण' श्रीकांत वर्मा की 'शवयात्रा', 'साध', 'संवाद' आदि महत्त्वपूर्ण है।

अकहानी का संबंध मूल्यों से उतना नहीं है जितना समकालीन जीवन के टूटे हुए,

असंगत, अंतर्विरोधग्रस्त यथार्थ से है। इसमें जीवन का यौन-सत्य प्रबल रूप से सामने आता है। संरचना में यह नई कहानी का परवर्ती रूप है एवं चेतना में काफी दूर तक मूल्यहीन हो चुके समकालीन मध्यमवर्गीय समाज की संक्रात वास्तविकता से जुड़ी हुई है।

सहज कहानी–सातवें दशक के उत्तरार्ध में कहानी के संबंध में कुछ व्यक्तियों के मन में कला के प्रति अतिरिक्त आग्रह के कारण सहजता के अभाव की चिंता हुई। 1968 में अमृतराय जी ने 'नई कहानियाँ' पत्रिका का स्वामित्व स्वीकारा एवं उसमें सहज कहानी की वकालत की और कहानी में कथा-रस को जरूरी बताया। इन्होंने किसी भी बने-बनाए साँचे का विरोध किया तथा अपनी बात बलपूर्वक प्रस्तुत करने की कोशिश की परंतु उन्हें अन्य लेखकों का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। सहज कहानी न तो व्यापक आंदोलन बन पाया न किसी तरह का नया रचनात्मक उन्मेष कर पाया। यह आंदोलन केवल पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित होकर रह गया।

समांतर कहानी–साठोत्तरी कहानी के अंतिम चरण में समांतर कहानी आंदोलन सामने आया। सन् 1972 के दौरान कमलेश्वर ने इसका नेतृत्व किया। उन्होंन सारिका पत्रिका के संपादन की टिप्पणियों के माध्यम से यह कार्य आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त इस कथा आंदोलन का समर्थन कई लघुपत्रिकाओं–समझ, अब, सतत, कथ्य, शिलालेख आदि में लेख लिखकर भी किया गया। डॉ॰ विनय इसके सिद्धांतकारों में थे। कामतानाथ, रामवचन राय, इब्राहीम शरीफ, ललित मोहन अवस्थी के आलेखों का उन्होंने प्रकाशन किया। इस कहानी में सामान्यजन की वकालत करते हुए इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ विनय ने लिखा, 'समांतर कहानी का नायक 'सामान्यजन' लोकजीवन में ग्रस्त और त्रस्त हैं। वह अतिवामपंथी का क्रांतिकारी मन भी नहीं और सामंतवादी चेतना में पालित-पोषित, अपनी स्थिति को सहज स्वीकारने वाला व्यक्ति भी नहीं, उसके पास चारों ओर आर्थिक वृत्त में टूटता खुद का व्यक्तित्व है, दूसरी ओर समय की सापेक्षता में जन्म लेने वाली द्विविधा रहित अपराजेयता भी।' समांतर कहानी ने 'आम आदमी' की बात की, उसकी प्रतिष्ठा की। यह कहानी बड़ी सहजता से जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। इतना ही नहीं जनसामान्य से सीधी बातें करने का समर्थन करती है। तात्पर्य यह है कि कहानी आम आदमी के द्वारा आम आदमी के लिए लिखी गई है।

समांतर कहानी को वामपंथी विचारधारा से जोड़कर देखा जाता है परंतु ऐसा नहीं है। यह समय और परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने पर बल देती है परंतु यह मानना होगा कि इसका रुझान वामपंथी विचारधारा की ओर रहा है। इस आंदोलन के चर्चित कहानीकारों में मधुकर सिंह की 'हरिजन सेवक', 'भाई का जख्म', निरुपमा सेवती की 'तलाश के बाद' , 'आतंक के बीज', जितेंद्र भाटिया की 'शहादतनामा', से॰ रा॰ यात्री का 'अँधेरे का सैलाब', रमेश उपाध्याय, मृदुला गर्ग आदि प्रमुख हैं।

सक्रिय कहानी–1979 में राकेश वत्स ने 'मंच' पत्रिका के माध्यम से 'सक्रिय कहानी' आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने दो विशेषांकों को निकालकर इसकी शुरुआत की। इस संदर्भ में उन्होंने कहा था, 'सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है, आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ, एहसास और बोध की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक-निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर, पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ और फिर बाहर की जन-आंदोलन और बदलाव विरोधी काली शक्तियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सर लेती है।' यह कहानी वर्तमान आर्थिक,

सामाजिक, शोषण के विरोध को अपनी मूल संवेदना मानती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो यह समांतर कहानी एवं जनवादी कहानी के बीच की कड़ी नजर आती है तथा यह इन कहानियों का मिश्रण प्रतीत होती है। विशेष बात यह है कि इन तीनों आंदोलनों की दृष्टि वामपंथी है, परंतु सक्रिय कहानी सक्रिय पात्रों और सक्रिय विचारों की कहानी है। इस कहानी में पुराने मूल्यों को विस्थापित करने और नए मूल्यों की स्थापना करने के लिए संघर्ष है। यह समाज के उत्पीड़न एवं शोषण के चक्र को तोड़ना चाहती है। दरअसल, इन आंदोलन में आम आदमी को केंद्र में लाने की बात की गई थी परंतु यह आंदोलन भी अधिक समय तक चल न सका। इस कहानी में रमेश बतरा की 'जंगली जुगरफिया', राकेश वत्स की 'उसका हिस्सा', 'काले पेड़' आदि आते हैं। लेखकों में महत्त्वपूर्ण हैं–सुरेंद्र कुमार, चित्रा मुद्गल, रमेश बतरा, धीरेंद्र अस्थाना आदि।

जनवादी कहानी–जनवादी कहानी आंदोलन को किसी एक व्यक्ति या पत्रिका ने घोषणा करके शुरू नहीं किया। बल्कि यह प्रगतिवादी आंदोलन का नया संस्करण है जो सामाजिक समता, वर्ग-संघर्ष और जनतंत्र मानवीय मूल्य आदि अवधारणाओं को अभिव्यक्त करती है। इस आंदोलन की शुरुआत सातवें दशक के अंत में होती है लेकिन आठवें दशक में इन कहानियों की विशेष पहचान बनती है। इसकी पृष्ठभूमि में रमेश उपाध्याय जी कहते हैं, 'सन् 1975 में जब आपातकाल के रूप में जनवाद पर आक्रमण हुआ और बहुत से प्रगतशील साहित्यकारों ने उसका विरोध करने के बजाए समर्थन किया, तब तो यह प्रश्न वर्तमान और भविष्य से जुड़कर अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन गया। यही वह समय है, जब जनवादी साहित्य अस्तित्व में आया। यह वह पृष्ठभूमि है, जिसमें से जनवादी कहानी उभरकर सामने आई।' जनवादी कहानियों में शोषण के विरुद्ध संघर्ष की स्थिति की रूपायित नहीं है, बल्कि जनसंघर्ष को कमजोर बनाने वाले तत्त्वों की पहचान भी कराती है तथा अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए शोषण से मुक्ति के लिए संगठित संघर्ष करने की प्रेरणा भी देती है। इस दृष्टि से रमेश उपाध्याय की 'देवीसिंह कौन?', 'पानी की लकीर', नमितासिंह की 'समाधान', इसराइल की 'फर्क', श्रीहर्ष की 'भीतर का भय', काशीनाथसिंह की 'सुधीर घोषाल', 'मुसई चा', असगर वजाहत की 'दिल्ली पहुँचना है', उदयप्रकाश की 'टेपचू' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। यह कहानी न तो शिल्प की तलाश में भटकी है, न भाषा के बनावटीपन से मोहग्रस्त है, बल्कि वह पेट की भूख से जूझते आम आदमी की लड़ाई में सक्रिय है और पूरी सहानुभूति के साथ उसका पथ आलोकित करते हुए उसे न्याय दिलाने के लिए बेचैन है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी कहानी आंदोलनों ने समय-समय पर अपने रूप में कई परिवर्तन किए। जिसकी वजह से हिंदी कहानी कोष निश्चित समृद्ध हुआ। इसके विविध कहानीकारों ने समाज के विविध परिवर्तन को कहानी में उतारते हुए सामाजिक सार्थकता सिध्द की। यह वह समय था जहाँ चारों ओर विषमताओं का ताना-बाना था। सामाजिक एवं राजनीतिक कहानियों में पूँजीवादी, सामंतवादियों की हृदयहीनता, शासनतंत्र की क्रूरता, निर्ममता को अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार से हिंदी कहानी प्रेमचंदयुग से काफी आगे निकल चुकी है। साठोत्तरी कहानी अनेक आंदोलनों से गुजरती हुई अब यथार्थ से सीधा साक्षात्कार कराने में सक्षम है। यह कहानी, कहानी के विधान को ताक पर रखकर अनुभूति, चिंतन तथा संवेदना की तन्यमयता और प्रामाणिकता को कहानी का रूप देने के लिए अग्रसर है।

संदर्भ

1. डॉ॰ बापूराव देसाई, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण

2000, पृ॰ 37
2. डॉ॰ रामदरश मिश्र, हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1993, पृ॰ 1
3. महीपसिंह, सचेतन कहानी : हिंदी कहानी पहचान और परख , सं॰ डॉ॰ इंद्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन दिल्ली, वर्ष 1975 पृ॰ 90
4. सचेतन कहानी, रचना और विचार, पृ॰ 12
5. डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल, समकालीन कहानी का रचना विधान, सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, वर्ष 1967, पृ॰ 103
6. आधुनिक हिंदी साहितय : विविध आयाम, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2000, पृ॰ 109
7. पल-प्रतिपल (पत्रिका), अंक 45, अतिथि संपादक-ओम भारती, पृ॰ 60
8. सक्रिय कहानी की भूमिका, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चडीगढ़, संस्करण 1979, पृ॰ 13
9. जनवादी कहानी : पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं॰ 2000, पृ॰ 11

मो॰ 9834779148

साठोत्तरी हिंदी गजलों में सामाजिकता

डॉ॰ विनोद प्रभाकर चन्नाळे
हिंदी विभाग
महाराष्ट्र उदयगिरी महाविद्यालय, उदगीर जि॰ लातूर

हिंदी साहित्य में साठोत्तरी गजलों का अनन्य साधारण महत्त्व है। गजल व्यक्ति के अंतर्मन की अभिव्यक्ति को प्रकट करती है। हिंदी साहित्य में गजल की सुदीर्घ, विस्तृत परंपरा रही है। यह तो निर्विवाद है कि गजल काव्य की सबसे अधिक लोकरंजक एवं लोकप्रिय विधा रही है। गिने-चुने शब्दों में अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त एवं प्रभावी माध्यम है। प्रेम और शृंगारिकता के भावों को प्रकट करनेवाला एक सशक्त माध्यम गजल रहा है। इसीलिए गजल जनमानस में आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक गजल का महत्त्व दिखाई देता है।

'गजल' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है प्रेमिका से वार्तालाप। गजल एक ऐसी काव्य-विधा है जिसका केंद्रीय बिंदु यह प्रेम है। इसीलिए प्रेम की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम गजल को माना जाता है लेकिन साठोत्तरी हिंदी गजलों में सामाजिकता को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य और समाज का अटूट संबंध होता है। समाज के सभी विषयों को साहित्य में देखा जा सकता है। साहित्य में समाज के सुख-दु:ख, आशा-निराशा, वेदना आदि का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। इतना ही नहीं बल्कि साहित्य समाज को नई प्रेरणा, नई ऊर्जा, नए विचार, नए आदर्श एवं नई दिशा प्रदान करता है। साहित्य में समाज के हर पहलू को बड़ी ही बारीकियों से प्रकट किया जाता है। किसी भी देश के साहित्य में हमें वहाँ के समाज की मान्यताएँ, रीति-नीतियाँ, व्यवहार, जीवन-मूल्य आदि के दर्शन होते हैं।

समाज समस्याओं से पूर्णत: मुक्त किसी भी युग में नहीं हुआ है। प्रत्येक युग में समस्याएँ रही है। जिसके फलस्वरूप आधुनिक भारतीय समाज में जीवन-मूल्यों का पतन होता रहा है। साठोत्तरी युग में देश की स्थिति दयनीय रही है। देश में आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, बेकारी, सांप्रदायिकता, महँगाई, आतकवाद, अलगाववाद आदि अनेक समस्याएँ दिखाई देती हैं। इसीलिए समसामायिक सामाजिक स्थिति को हिंदी गजलकारों ने यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है।

भारतीय सामाजिक जीवन स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व अपनी कुछ मान्यताएँ एवं जीवन मूल्य थे, जिनका पालन हर एक व्यक्ति करता था। आजादी के पश्चात उसमें अनेक परिवर्तन हमें दिखाई देते हैं। 1960 के बाद सामाजिक मूल्यों का पतन होते हुए हमें दिखाई दोता है उसी को साठोत्तरी गजलकारों ने अपनी लेखनी से प्रस्तुत किया है। साठोत्तरीयुग में भारतीय पीढ़ियों का संघर्ष अधिक उग्र रूप में उभरकर सामने आया है। नई पीढ़ी ने प्रत्येक स्तर पर पुरानी पीढ़ी से संघर्ष किया और उसे नकारा भी है। सन् 1960 के बाद राजनीति समाज नीति पर इतनी हावी हो

 ISSN 0975-735X

गई कि राजनीति से अलग समाज का स्वतंत्र अस्तित्व ही जैसे समाप्त हो गया है। इसी वजह से सामाजिक पतन हो रहा है।

साठोत्तरी सामाजिक स्थिति के ऊपर डॉ॰ प्रतिमा सक्सेना लिखती हैं, 'मोहभंग से लेकर आज की बिगड़ती हुई स्थितियों तक पूँजीवादी तबका खूब पनप रहा है। बड़े घरानों के अतिरिक्त नव-धनाढ्यों का एक बहुत बड़ा वर्ग रक्तबीज की भाँति बढ़ रहा है। समाज में सामंतवर्ग पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है। वह पंचों, सरपंचों, भूमिपतियों, बड़े जोतदारों, छोटे-बड़े नेताओं और दलालों के रूप में आज भी विद्यमान है। इसलिए शोषण कम नहीं हुआ है, बल्कि बढ़ा ही है। सत्ता, अर्थतंत्र और धर्म की सशक्त ताकतें लाचार आदमी को लूटने में लगी है। उसकी अस्मिता और शील अब सुरक्षित नहीं है। आम आदमी की दयनीय स्थितियों और त्रासदियों के लिए उत्तरदाई ताकतों के उद्देश्यों को बेनकाब करना, जनता में आत्मविश्वास तथा एक व्यापक आंदोलन की सक्रिय भूमि तैयार करने में सहयोग देना, आज के साहित्यकार के लिए बुनियादी सरोकार बन गए हैं। हिंदी के साहित्यकार बखूबी अपने इस दायित्व का निर्वाह भी कर रहे हैं। हिंदी के गजलकारों ने आज के सामाजिक यथार्थ को गहराई के साथ पहचाना है।'

हिंदी गजलकारों ने समाज के यथार्थ को गजलों के माध्यम से सामने लाने का प्रयास किया है जिसमें वह सफल भी रहे हैं। समाज का यथार्थ चित्रण करना ही उनकी रचनाधर्मिता का प्रधान उद्देश्य रहा है। सामाजिक जीवन के यथार्थ एवं विसंगतियों तथा विद्रूपताओं को उसने अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया है। हिंदी गजलकारों ने उस युग की परिस्थिति को समाज के सामने रखा है। साठोत्तरी गजलकारों ने अपने समय के यथार्थ से आँख नहीं चुराई, बल्कि खुली आँखों से यथार्थ को देखा तथा उसे अपनी कलम से प्रस्तुत भी किया है।

साठोत्तरीयुग में मानवतावाद का विघटन हुआ है। मनुष्य के हृदय में किसी के प्रति भी सहानुभूति नहीं है। मानव मानवतावादी न रहकर स्वार्थ से भरा पुतला बनता जा रहा है। समाज में प्रेम, अपनापन, त्याग, बलिदान और समर्पण का भाव नष्ट होता जा रहा है। मनुष्य-मनुष्य के बीच स्नेह समाप्त होता जा रहा है। एक वक्त था जब मानवता सबसे ऊपर थी लेकिन आज केवल द्वेष, मत्सर और विघटन की स्थिति बनी हुई है। पहले बेगानों में भी अपनापन होता था किंतु आज अपनों में भी इन बातों का महत्त्व नहीं रहा है। कृष्ण सुकुमार अपनी गजलों में लिखते हैं–

प्यार, अपनापन, समर्पण आजकल कुछ भी नहीं
ये वो पौधे हैं कि जिनमें फल-फूल कुछ भी नहीं।

साठोत्तरी गजलों में नारी शोषण एवं अत्याचार का यथार्थ चित्रण किया है। उस समय स्त्री को व्यक्ति न मानकर वस्तु माना गया है। नारी शोषण का एक पहलू अनमेल विवाह की कुप्रथा भी है। प्राचीनकाल से आज तक दरिद्रता और गरीबी के कारण कितनी ही युवतियों को अधेड़ उम्र के व्यक्तियों के साथ विवाह करने के लिए बाध्य किया जाता है। इसे भी गजलकारों ने अपनी गजलों में प्रस्तुत किया है। भोगवादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण वर्तमानयुग में बलात्कार जैसी त्रासद घटनाएँ बढ़ रही हैं। नारी जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया है। कई गजलकारों ने इस व्यवस्था के विरोध में अपनी कलम चलाई है। व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने वाली पुलिस भी इसके लिए अपवाद नहीं है। पुलिस थाने में भी नारियों के साथ बलात्कार किए जाने की कई घटनाएँ सुनाई देती हैं, जिन पर सुरक्षा का दायित्व है वही अन्याय-अत्याचार करते दिखाई देते हैं। यदि कोई नारी अत्याचार के विरुद्ध उठ खड़ी होती है तो

गवाह के अभाव में उसे न्याय नहीं मिल पाता और वह समाज की उपेक्षा के फलस्वरूप आत्महत्या करने हेतु या किसी कोठे की जीनत बनने के लिए विवश हो जाती है–

रूप लुटता था, रूप लुटता है
लूट का सिलसिला पुराना है।

औरतों के चरित्र को लेकर
मर्द का सोचना पुराना है।

मौका मिलते ही सिर उठाएगा
आदमी भेड़िया पुराना है।

'रेप' के केस में गवाह बिना
'कोर्ट' का फैसला पुराना है।

यौन-अपराध को हवा देता
'काम' का देवता पुराना है।

आज के युग में 'कॉलगर्ल' सही,
तन का पेशा बड़ा पुराना है।

नैतिकता को लेकर साठोत्तरी गजलों में मार्मिकता से प्रस्तुतीकरण हुआ है। आज समाज में नैतिकता के मापदंड बदल गए हैं। आज बेईमानी, झूठ और फरेब बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। आज जो भी आदमी ईमानदारी और सच्चाई पर चलता है उसे बहुत पीड़ा पहुँचती है। सच्चाई, ईमानदारी और विश्वास सब ग्रंथों से स्वर्णाक्षर बन गए हैं। समसामायिक जीवन में पैसा इतना महत्त्वपूर्ण हो गया है कि उसके सामने नैतिकता भी शून्य बनती जा रही है। उच्च परिवार में भी धन-प्राप्ति हेतु छल-कपट, धोखाधड़ी, कालाबाजारी जैसे हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। इसे बड़े ही यथार्थ के साथ गजलों में प्रस्तुत किया गया है–

नैतिकता का पतन हो गया, अनुशासन का ढाँचा ढीला
काली-चोर बाजारी करता, बड़ों-बड़ों का कुटुम कबीला।

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को गजलों में प्रमुखता से सामने लाने का प्रयास साठोत्तरी गजलकारों ने किया है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण समाज का वातावरण दूषित हो गया है। भ्रष्टाचार एक ऐसा दलदल है जिसमें सभी के पाँव धँसे हुए हैं। देश में आम आदमी के लिए कई योजनाएँ बनती हैं लेकिन वह उनसे लाभान्वित नहीं हो पाते। देश की संपूर्ण व्यवस्था भ्रष्ट हो चुकी है। शासकीय कार्यालयों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। सिफारिशों के इस दौर में प्रतिभा की कोई कीमत नहीं रह गई है। प्रतिभा कुंठित हो रही है एवं जिसके पास सिफारिश है वे पद, प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञान, प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं रहा। यह आज के वर्तमानयुग की सबसे बड़ी त्रासदी है।

धुंध का वातावरण है इन दिनों
कैद कुहरे में किरण है इन दिनों।

कुर्सियों पर है सिफारिश मूढ़तम
और प्रतिभा को ग्रहण है इन दिनों।

एक भी मानक अखंडित है नहीं
मूल्यों पर आक्रमण है इन दिनों।

1960 के बाद आतंकवाद और अलगाववाद सबसे बड़ी समस्या इस देश में उभरकर आई है। उस वक्त अलगाव की प्रवृत्ति कश्मीर, पंजाब, आसाम, झारखंड आदि क्षेत्रों में प्रस्तुत हुई थी। अलगाववाद और आतंकवाद की घातक प्रवृत्ति देश के विकास एवं एकता में बाधक सिद्ध हुई है। सुजलाम्-सुफलाम् कहलाने वाला भारत देश आतंक तथा अलगाववाद के कारण आज भी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। आतंकवादियों की हरकतें इतनी बढ़ जाती है कि व्यवस्था को नियंत्रण करने हेतु शहर में कर्फ्यू की घोषणा करनी पड़ती है, जिससे जनजीवन पर प्रभाव पड़ता है। वक्त के साथ गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी आदि समस्याएँ उभकर आ रही हैं जिससे देश का आर्थिक नुकसान हो रहा है। आतंकवाद और अलगाववाद के कारण अनेक घर तबाह हुए हैं। साठोत्तरी गजलकारों ने उसे मार्मिकता से प्रस्तुत किया है–

जीवन के सपने मत देखो इन हत्यारी रातों में
अपनी जान गँवा बैठोगे तुम भी बातों बातों में।

कुछ तो सोचो कुछ तो देखो आखिर साजिश किसकी है
कौन थमाता है बंदूकें हत्यारों के हाथों में।

रूखी-सूखी जो मिलती है वो भी अब छिन जाएगी
आ मत जाना इन लोगों की चिकनी-चुपड़ी बातों में।

आम आदमी की वेदना और निराशा को गजलों के माध्यम से समाज के सामने उभारने का प्रयास साठोत्तरी गजलकारों ने किया है। आम आदमी की वेदना के दुष्यंतकुमार ने अपनी गजलों में प्रस्तुत किया है। 'मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ। यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं आज के मनुष्य से है।' आम आदमी की विवशता, सहनशीलता, महँगाई, गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार आदि को गजल का विषय बनाया है। आज का आम आदमी अभाव में जी रहा है। समाज की स्थितियाँ आम आदमी को यह सोचने पर विवश कर देती हैं कि वह किस आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में जी रहा है। क्या यही वह स्वतंत्र देश है जिसकी कल्पना हम लोगों ने की थी? उसे इस वातावरण से घुटन-सी महसूस होने लगी है। आज का आदमी टुकड़े-टुकड़े जिंदगी जी रहा है। उसकी समस्त इच्छाएँ और आकांक्षाएँ उपेक्षित हो रही हैं। यथा–

न हो कमीज तो पावों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।

साठोत्तरीकाल से समाज की स्थिति बिगड़ती चली गई है। सामाजिक मूल्यों का पतन होने लगा है। सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, संवेदना, मानवता आदि भाव आज नहीं के बराबर हैं। समाज में अन्याय-अत्याचार को खामोशी से बर्दाश्त करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। आज समाज में नफरत ही नफरत दिखाई दे रही है। समाज में मानवतावादी तत्त्व पूरी तरह से चरमरा गया है। व्यक्ति केवल स्वार्थ के लिए जीवन व्यतीत कर रहा है। मानवी मूल्यों की समाज में उपेक्षा हो रही है।

क्या नई ताजा लिखूँ, सारा शहर बीमार है
लेखनी आहत हुई है, जिनकी मामा।

ये अहिंसा, सत्य, नेकी, धर्म सब बदनाम हैं

झूठ से राहत हुई है, जिनकी मामा।

अत: कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य में साठोत्तरी गजलकारों ने सामाजिक स्थिति के यथार्थ रूप का चित्रण किया है। सामाजिक परिवेश को गजलों में चित्रित किया है। मूल्यों का विघटन, महानगरों की विद्रूपता, नई सभ्यता और फैशन, आम आदमी की पीड़ा, आतंकवाद, समाज की बिगड़ती स्थिति को यथार्थता के साथ समाज के सामने गजलों के माध्यम से चित्रित किया गया है। समाज के हर पहलू को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ

1. आधुनिक हिंदी गजल और आधुनिकता बोध, प्रतिमा सक्सेना
2. समकालीन हिंदी गजल, संपादक मधुर नज्मी
3. चाँदनी का दु:ख, जहीर कुरेशी
4. वातावरण खराब हो चला, अवधकिशोर सक्सेना
5. धार के विपरीत, चंद्रसेन विराट
6. बर्फ से ढका ज्वालामुखी, विजयकुमार सिंघल
7. साये में धूप, दुष्यंतकुमार
8. घर तलाश कर, पुरुषोत्तम प्रतीक

अज्ञेय के काव्य साहित्य का शिल्प विधान

प्रा॰ कैलास बबन माने
बलवंत कॉलेज, विटा, ता॰ खानापुर, जि॰ सांगली

हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर 'नई कविता' एवं 'प्रयोगवाद' के प्रमुख कवि अज्ञेय अर्थात् 'सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन' बहुआयामी व्यक्तित्व एवं एकांतमुखी प्रखर कवि रहे हैं। अज्ञेय जी ने हिंदी काव्य क्षेत्र में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद इस विशिष्ट शैली का प्रचलन कराया। काव्य के विकासात्मक स्वरूप में भाषिक संरचना की दृष्टि से प्रयोगवाद और नई कविता दोनों को नवीन शैलीगत प्रयोगशीलता के साथ परिवर्तित जीवन मूल्यों, नूतन अर्थछवियों और कथ्य तथा शिल्प की नूतन भंगिमाओं से उपलब्ध कराया है। अज्ञेय का हिंदी काव्य जगत में प्रवेश वस्तुगत एवं शिल्पगत परिवर्तनों के सूत्राधार के रूप में दिखाई देता है। छंद बंधन तोड़ने की घोषणा अज्ञेय से पूर्व 'निराला' द्वारा की गई दिखाई देती है, किंतु शिल्प के स्तर पर परिवर्तन अज्ञेय की प्रमुख उपलब्धि है। हिंदी साहित्य में 'अज्ञेय' के आर्विभाव से काव्य जगत में जो परिर्वतन आया, वह हिंदी काव्य को 'नई कविता' मानक लाने का सोपान सिद्ध हुआ। जहाँ तक अनुभूति और संवेदना के भाषिक रूपांतरण का प्रश्न है संभवत: निराला के पश्चात अज्ञेय ही ऐसे कवि रहे हैं जिन्होंने अपने काव्य शिल्प में सबसे अधिक प्रयोगशीलता दिखाई है।

प्रस्तावना–बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी अज्ञेय जी का साहित्य 1960 के पूर्व और पश्चात भी प्रकाशित हुआ है। विषय की गरिमा बनाए रखते हुए अज्ञेय के साठोत्तरी काव्य के उदाहरणों के माध्यम से उनके काव्य साहित्य पर प्रकाश डाला जा रहा है। अज्ञेय जी के 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षणभर', 'बावरा अहेरी', 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये' और 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959) इसके साथ ही तीन तार सप्तकों का प्रकाशन आदि कविता-संग्रह 1960 से पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं। तत्पश्चात 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर मुद्रा', 'पहले मैं संन्नाटा बुनता हूँ', 'महावृक्ष के नीचे', 'नदी की बाँक पर छाया' आदि काव्य-संग्रहों के साथ ही 'सदानीरा' काव्य-संग्रह (खंड 1 व 2) आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

अज्ञेय के काव्य शिल्प का अध्ययन करते समय शिल्प के संबंधी विचार प्रकट करना आवश्यक हो जाता है। अत: 'शिल्प' शब्द की व्युत्पत्ति संदिग्ध मानी जाती है। संस्कृत ग्रंथ 'उणादी कोश' के अनुसार 'शिल्प शब्द' समाधौ धातु से 'प' प्रत्यय और शील को ह्रस्व लगाकर बनता है। व्ही॰एस॰ आपटे के मतानुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति शिल + पवम् है। आधुनिक हिंदी साहित्यकार और आलोचक शिल्प, शिल्पविधि तथा शिल्प विधान तीनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में करते हैं। अज्ञेय अपनी कविता में प्रयोगशीलता का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। उनके प्रयोग में एक सचेष्ट खुलापन दिखाई देता है। ऐंद्रिय अनुभूति को यथावत रखनेवाले बिंब है, किंतु ये समस्त सुपरिचित और मौलिक प्रतिक भी है। सही अर्थों में अज्ञेय शब्द शिल्पी हैं,

लेकिन इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि वाक्यातीत कुछ अर्थ हैं, जिन्हें ढूँढने का प्रयास इन्होंने कम नहीं किया है। अज्ञेय के काव्य में स्थित शिल्प की विवेचना इन पाँच तत्त्वों की दृष्टि से की जा सकती है–

संशोधन के महत्त्वपूर्ण बिंदु–अज्ञेय के काव्य साहित्य में शिल्प विधान इस शोधकार्य के महत्त्वपूर्ण बिंदु–(1) भाषा शिल्प, (2) प्रतीक और मिथक, (3) बिंब विधान, (4) छंद, (5) मुहावरे, (6) अलंकार।

भाषा शिल्प–अभिव्यक्ति के समस्त माध्यमों में भाषा सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम है। भाषा जितनी सूक्ष्म, भाव संप्रेषक, संदर्भ गर्भित, स्थितियों की व्यंजक एवं कलात्मक होगी अभिव्यक्ति उतनी ही सूक्ष्म और पौढ़ होती है। अज्ञेय का काव्य साहित्य भावमुक्ति का साधन है। संवेदना को जीव और जगत् से ग्रहण कर उसे तकने और पकने के साथ संप्रेषित होने की बीच की प्रक्रिया माना है जिसमें मुक्ति का साधन अभिव्यक्ति है। अज्ञेय के भाषा-संबंधी विचारों में उनके सर्जक के धर्म की ओर इंगित होने का अभास प्रकट होता है। इन्होंने शब्द और भाषा से अलग मौन द्वारा भी नीरवता खोजने का प्रयास किया है। 'आँगन के पार द्वार' कविता में गृहीत और प्रस्तुत अनेकानेक नवीन और व्यंजक शब्दों के अविष्कार हुए हैं। शब्दों के स्वछंद प्रयोग भी अज्ञेय के काव्यों में बहुत मात्रा में मिलते हैं। अज्ञेय की लंबी कविताओं के साथ ही लघु कविताएँ भी भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। लंबी कविताओं की बँधी कोई काव्यशास्त्रीय चौखट न होने के कारण कवि ने इसे आंतरिक मजबूती प्रदान की है। इनकी लंबी कविता की रचना-प्रक्रिया एक विशिष्ट कोटि की है। कवि अपने कथन को धीरे-धीरे आरंभ कर बिंबों के प्रयोग द्वारा उसे विस्तार देते हैं फिर आत्मीय रूप में वार्तालाप का प्रयोग करते हैं। 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ' कविता में कवि ने देशज एवं विदेशी (उर्दू, फारसी) शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है–

तो बैठकर अपनी देह के
ददोरे सहला सकता हूँ।
हटाने का शील तो मुझे
बपौती-ददौती में मिला है।[1]

असाध्य वीणा में बिंब, प्रतीक, सौंदर्य, पुरावृत्त, शब्द प्रयोग, शब्द निर्माण आदि तत्त्वों का सम्यक निर्वाह हुआ है। ध्वन्यात्मकता का सहज प्रवाह इस रचना का वैशिष्ट्य है–

हाँ मुझे स्मरण है
बदली-कौंध-पत्तियों पर वर्षा की बूँदों की पट
घनी रात में मछुए का चुपचाप टपकना।
इतनी कोमल, तरल कि झरते-झरते मानो हरसिंगार का फूल बन गई।[2]

'सागर मुद्रा' कविता में सागर और लहर के चित्रण के साथ संवाद शिल्प, संवेदन शीलता, मिथकीय पदावली आदि का सुंदर समन्वय दिखाई देता है–

सागर को प्रेम करना
मरण की प्रच्छन्न कामना है
तो क्या?
मरण अनिवार्य है
प्रेम स्वच्छंद वरण है।[3]

'महावृक्ष के नीचे' संकलन में कवि ने 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' में हीरो, तारे, खिसक गई है धूप, शिशिर का भोर, समाधि लेख, दीन तेरा, बाबू ने कहाँ आदि महँवपूर्ण लघु कविताओं को प्रस्तुत किया है। जिसमें लघुता और गीतात्मकता, पर्याप्त विविधता और विस्तार के साथ भाषा शिल्प की दृष्टि से उनमें सामासिकता, संकेत और प्रतीकात्मकता का प्रयोग प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है–

(1) लोग बहुत पास आ गए हैं
पेड़ दूर हटते हुए
कुहासे में खो गए हैं
और पंछी (जो ऋत्विक हैं)
चुपचाप लगा गए हैं।[4]
(2) झरते-झरते
पिघले वसंत के फूल
डालियों पर उमगाते गए
फलों के नाना-विध आश्वासन
कहाँ-कहाँ, पर चली गई
पिघले जाड़ों की हिमपगडंडियाँ?[5]
(3) ओझल होती सी
मुझे भर कर
सब कट गई तुम्हारी छाया।
मुझको ही सींच भरे
यों खड़े-खड़े जो मुझमें उमड़ा वह
कहना ही आया।[6]

प्रतीक और मिथक–कविता को सहज ग्राह्य बनाने हेतु जिस प्रकार बिंब की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मिथकों की रचना करके कवि प्रभाव संप्रेषण की दृष्टि से कवि द्वारा प्रतीकों की संकल्पना का सृजन होता है। प्रतीक, एकार्थता, भावबोध से संपन्न होते हैं। अज्ञेय की दृष्टि से प्रतीक सत्यान्वेषण का साधन हैं। अज्ञेय जी ने व्यंग्यात्मक प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, मिथकीय प्रतीक, यौन प्रतीक, प्रकृति प्रतीक, वैयक्तिक प्रतीक आदि का सुंदर समन्वय किया है।

व्यंग्यात्मक प्रतीक–अज्ञेय जी ने भग्नदूत, इत्यालम, हरी घास पर क्षणभर, में व्यंग्यात्मक प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'पहले में सन्नाटा बुनता हूँ' के अंतर्गत छपी 'हम घूम आए शहर' कविता में इसका रूप देखा जा सकता है–

राष्ट्रीय महामार्ग के बीचों बीच बैठ
पछाही भैंस
जुगाली कर रही है
तेज दौड़ती मोटरे, लारियाँ
पास आती सकपका जाती है
भैंस की आँखों की स्थिर चितवन के आगे
मानो इंजनों की बोलती बंद हो जाती है।[7]

पौराणिक प्रतीक–अज्ञेय मानवीय मूल्यों के हिमायती कवि हैं। अत: भारतीय धर्म, संस्कृति, एवं इतिहास के गहन अध्ययता होने के कारण उन्होंने पौराणिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने कुंती कुंठा के रूप में, क्रौंच प्रेम के रूप में, द्रौणाचार्य राजनीतिज्ञ के रूप में और इंद्र मनोविकार के रूप में प्रकट किए हैं। इन्होंने 'प्रात: संकल्प' कविता में अरुणिमा को आस्था का प्रतीक संकेतित करते हुए स्वत: स्फूट कल्पना का परिचय दिया है–

ओ आस्था के अरुण! हाँक ला
उस ज्वलंत के घोड़े
खूँद डालने दे
तीखी आलोक कशा के तले तिलमिलाते पैरों को
नभ का कच्चा आँगन!
बढ़जा! जयी!
सँभाल चक्रमंडल यह अपना।[8]

मिथकीय प्रतीक–अज्ञेय जी ने इतिहास की पकड़ से मिथकीय प्रतीकों का उपयोग मिथकीय चरित्रों के आधुनिक जीवन की त्रासदी के उद्‌घाटन हेतू किया है। उन्होंने मिथकीय चरित्र को नैतिक दृष्टांत देते हुए उसे विडंबना का द्योतक बनाया है। समुद्र मंथन, प्रलय, देवासुर संग्राम, तांडव नृत्य की घटनाओं को शेषनाग, क्षीर सागर, मंदराचल, असुर, वज्र, चक्र जैसी संज्ञाएँ देकर प्रतीकात्मकता का प्रयोग किया है। असुर संहार के लिए अस्थि समर्पित करनेवाले दधीचि का मिथकीय प्रतीक अत्यधिक प्रभावी बना दिखाई देता है–

हथौड़ा अभी रहने दो
आओ, हमारे साथ वह आग जलाओ
जिसमें से हम फिर अपनी अस्थियाँ बीनकर लाएँगे
तभी वह अस्त्र बना पाएँगे
जिस के सहारे
हम अपना स्वप्न बल्कि अपने को पाएँगे।[9]

यौन प्रतीक–अज्ञेय की दृष्टि यौन परिकल्पनाओं से आक्रांत है। उनकी कल्पनाएँ दमित और कुंठित यौन भावनाओं के लिए गुलाब की लाल पंखुड़ियों की भाँति उसी प्रकार के प्रतीक के रूप में प्रकट होती है–

दो पंखुड़ियाँ
झरी लाल गुलाब की, तक्ती पियासी
पिया से ऊपर झुके उस फूल को
ओंठ जो ओठों तले।[10]

प्रकृति प्रतीक–अज्ञेय जी ने संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति प्रतीक अपनाए हैं। तटस्थ मन के लिए केंकड़ा, सागर जीवन के लिए, मछलियाँ नेत्र के लिए, द्वीप व्यक्तित्व के लिए, लता देह के लिए प्रतीक के रूप में उनके काव्य के में चित्रित हुए हैं। उन्होंने प्रकृति प्रतीकों के माध्यम से जीवन लक्ष्य एवं मार्ग के आकर्षणों का सुंदर चित्रण किया है–

नदी की नाव
न जाने कब खुल गई

नदी ही सागर में घुल गई
हमारी ही गाँठ न खुली
दीठ न घुली
हम फिर लौटकर फिर गली-गली
अपनी पुरानी अस्ती की टोहों में भरमाते रहे।[11]

मिथक–अज्ञेय जी ने अपने काव्य में मिथकीय प्रयोग बहुलता से किए हैं। उनका मिथकीय परिवेश पौराणिक, रहस्यात्मक और प्रेम भावमूलक अभिव्यक्ति से संपन्न है। सागर मुद्रा के अंतर्गत 'मरण के द्वार पर' शीर्षक कविता में पौराणिक मिथक का उत्तम उदाहरण देखा जा सकता है–

वह जो पंछी
खाता नहीं, ताकता है
पहरे पर एकटक जागता है
होगा जब!
मैं वह पंछी हूँ, जो फूल खाता है
क्योंकि फल, डाल, तरू, मूल
तुम्हीं हो सब।[12]

बिंब विधान–नई कविता में बिंबों के पारंपारिक स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। वास्तव में बिंब योजना किसी भी मानसिक संवेदना, कल्पना बिंदु, मस्तिष्कीय चिंतन के साथ रागात्मक स्फुरण का सशक्त माध्यम है। अज्ञेय जी ने बिंब संयोजन की दृष्टि से अपने काव्य को अद्वितीय बनाया है। उनके काव्य में लगभग बिंबों के समस्त प्रयोग प्रखर रूप से उभरे हुए दिखाई देते हैं। उन्होंने भाव बिंब, दृश्य बिंब, कलात्मक बिंब, प्रकृति बिब, वैज्ञानिक बिंब, स्पर्श बिंब, रंग बिंब, गंध बिंब, ध्वनि बिंब, स्मृति बिंब आदि का लाक्षणिक प्रयोग किया है। स्मृति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

हाय वह शून्य! हाय वह चुंबन!
किससे किसका था वह प्रणय मिलन
किया था किसका मैंने चुंबन!
तेरे या तेरे कपोल का या उस पर आँसू कपोल का
या उस आँसू के छिपी हुई थी विरह जलन
हाय वह शून्य! हाय वह चुंबन![13]

छंद योजना–अज्ञेय जी ने प्राचीन छंदों में समान सच्चाई विद्या, शुद्ध गीता आदि का सृजन किया है। उन्होंने अपने काव्य में प्राचीन परंपरागत एवं नवनिर्मित छंद अपनाए हैं। नवनिर्मित छंदों के अंतर्गत उन्होंने मुक्तछंद और मात्रिक छंद को भी स्थान दिया है। छंदों के क्षेत्र में नवीता की प्रवृत्ति को अपनाते हुए उन्होंने किसी स्थान पर सार और हरिगीतिका तो कहीं वीर और ताटक छंद का मिश्रण करते हुए अपने काव्य को मुखर किया है। वीर और ताटक छंद का एक समिश्रण उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है–

तेरी आँखों में पर्वत की, झीलों का निस्सार प्रसाद
मेरी आँखों में बसा नगर की, गली-गली का हा-हाकार

तेरे उर में वन्य अनिल सी, स्नेह-अलस भोली बातें
मेरे उर में जनाकीर्ण मन, की सुनी सुनी रातें।[14]

मुहावरे–अज्ञेय जी ने मुहारों का अत्यंत कम प्रयोग किया है लेकिन जहाँ भी किया है उससे कथ्य को बल मिला है। मुहावरों के कारण उनके काव्य की अभिव्यक्ति में संप्रेक्षणीयता एवं अद्‌भुत सजीवता समाविष्ट हुई है। उन्होंने सिर ऊँचा करना, रंग बदलना, नाक रखना, लाज रखना, घुटने टेकना जैसे मुहावरों का अर्थ प्रयोग संदर्भ को नई भावभंगिमा प्रदान करने हेतु किया है। हिंदी मुहावरों के साथ ही उर्दू मुहावरों का भी उन्होंने यथास्थान प्रयोग किया है। जैसे–जमीन कुरेदना, मुर्गी का दिल रखना, उमर के दाग धोना आदि।

अलंकार योजना–अलंकार योजना के संदर्भ में अज्ञेय सिद्धहस्त कलाकार के रूप में उभरते हैं। उन्होंने जीवन अनुभव प्रकृति ज्ञान के आधार पर उपमान चयन को प्रधानता दी है। उनके उपमानों में मौलिकता, नवीनता, शुचिता के साथ समकालीनबोध भी दिखाई देता है। अज्ञेय ने अपने कथ्य को प्रभावी बनाने हेतु उपमानों की झड़ी लगा दी है। उन्होंने अलंकारों के विविध भेदों को अपनाते हुए उपमान जुटाए हैं जिसके अंतर्गत रूपक, पुनरुक्ति, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, संदेह के साथ ही समयमूलक अलंकार संबोधन सूचक अनुप्रास, यमक, मानवीकरण आदि अलंकारों को अपनाते हुए अपने काव्य साहित्य को समृद्ध बनाया है। विरोधाभास अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाव बनकर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई यह जली हुई छाया
मानव की सखी है।[15]

निष्कर्ष

स्पष्ट अनुभव होता है कि शिल्प योजना की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य नितांत सरस है। शिल्प का एक भी पक्ष उनसे अछूता नहीं रहा है। अज्ञेय जी काव्य में भाव तत्त्व को जितनी प्रधानता देते हैं उतना ही महत्त्व उन्होंने काव्य के शिल्प को भी दिया है। नई कविता एवं प्रयोगवाद का पुरस्कार करते हुए भी उन्होंने शिल्प परिष्कार के संदर्भ में कोई समझौता नहीं किया। शिल्प के अंतर्गत उनके द्वारा भाषा का अत्यंत पर्यालोकन हुआ है, जिसमें उन्होंने निरतंर परिष्कार, परिमार्जन और भाषा को पौढ़ता प्रदान करने का साहस दिखाया है। उनकी प्रथम चरण की भाषा रोमांटिक जीवनबोध को दर्शाती है; तो दूसरे चरण की भाषा विद्रोहात्मक चेतना को प्रस्तुत करती है। जहाँ एक ओर उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, शब्दावली का प्रयोग करते हुए भाषा को संपन्न बनाया है वहाँ दूसरी ओर भाषा का परिमार्जन भी किया है। उनकी लंबी कविताएँ भी शिल्प की दृष्टि से वैशिष्ट्य पूर्ण रही हैं। अज्ञेय जी के काव्य में प्रतीकों की बहुलता है। उन्होंने प्रतीकों का चयन अधिकतर प्रकृति से किया है। उन्होंने प्रतीक योजना को परिवर्तित संवेदना की समर्थ अभिव्यक्ति हेतु प्रकट किया है। उनके मिथक भी प्रतीकों की भाँति काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होंने पौराणिक मिथकों को सांस्कृतिक नूतनीकरण के साथ यथासंभव प्रकट करने का प्रयास किया है। अज्ञेय जी की काव्य प्रतिभा चिरंतन प्रवाहमय होने के कारण उन्होंने उसकी रचना-प्रक्रिया में नित्य नवीन बिंबों का प्रयोग करते हुए अपनी शैली को चरमोच्च बनाया

है। बिंबों के संयोजन में अज्ञेय जी काव्य कुशल दृष्टि का परिचय देते हैं, जिसके कारण उनका काव्य अप्रतिम बना हुआ है। अज्ञेय जी ने पारंपारिक पद्धतियों का अनुसरन करते हुए तुकांतता, अनुप्रासिकता का प्रयोग भी किया है जिससे स्पष्ट होता है कि नवीनता की प्रवृत्ति को अपनाते हुए भी वे काव्य के मूल स्वभाव और धर्म को नहीं त्यागते। उनकी रचनाओं में छंद वैविध्य होने के साथ भी गेयता भी दिखाई देती है। इसका उत्तम उदाहरण 'अरी ओ करुणा प्रभामय' है, जिसमें उन्होंने अनुरंजनात्मक परिवेश को सूक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनकी कविता छंदबद्धता से छंदमुक्तता की ओर बढ़ती हुई नजर आती है। मुक्तछंद में इन्होंने काव्य की लय पर विशेष बल दिया है। उनके मुहावरों से काव्य के कथ्य को बल तो मिला है साथ ही उसके भाषिक सौंदर्य में वृद्धि भी हुई है। अज्ञेय जी ने अपनी रचनाओं में ध्वनिमूलक, साम्यमूलक, वैषम्यमूलक आदि लगभग सभी प्रकार के अलंकारों को प्रकट किया है जिससे बोध होता है कि उनके द्वारा अपनी कविता में भारतीय तथा पाश्चात्य सभी प्रकार के अलंकार सहज रूप से प्रकट हुए हैं। अत: कह सकते हैं कि अज्ञेय जी का हिंदी काव्य जगत में वस्तुगत एवं शिल्पगत परिर्वतन के रूप में सूत्रपात हुआ है जिससे काव्य को एक नई मानक शैली एवं शिल्प प्रदान हुआ है।

संदर्भ

1. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1969, पृ॰ 16
2. आँगन के पार द्वार, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1966, पृ॰ 72
3. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, अज्ञेय, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 1976, पृ॰ 28
4. महावृक्ष के नीचे, अज्ञेय, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 1980, पृ॰ 18
5. वही, पृ॰ 31
6. वही, पृ॰ 23
7. सदानीरा भाग 2, अज्ञेय, पृ॰ 213
8. कितनी नावों में कितनी बार, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1983, चतुर्थ संस्करण, पृ॰ 06
9. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1969, पृ॰ 27
10. वही, पृ॰ 29
11. वही, पृ॰ 21
12. सागर मुद्रा, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1970, पृ॰ 32
13. सदानीरा भाग-1, अज्ञेय, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 1984, पृ॰ 48
14. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1969, पृ॰ 27
15. अरी ओ करुणामय प्रभामय, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1969, पृ॰ 135

Mob. 9096044023
kailsamane12@gmail.com

साठोत्तरी हिंदी दलित आत्मकथा के विविध आयाम

डॉ॰ गोरखनाथ किसन किर्दत
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, इस्लामपुर

भारतीय समाज व्यवस्था में जिस वर्ग को न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों से हमेशा वंचित रखा गया व शोषित, पीड़ित समाज दलित समाज है। दलित कोई जाति न होकर चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था का एक अंग है। समकालीन साहित्य में अनेक विधाओं में दलितों की समस्याओं के संदर्भ में लिखा गया है। आत्मकथा वह साहित्य विधा है जिसमें लेखक स्वयं अपने विगत जीवन के अनुभवों को लिखता है। हिंदी में मराठी दलित आत्मकथाओं की प्रेरणा लेकर आत्मकथा लिखी जाने लगी। आत्मकथा में साहित्य के सौंदर्य एवं कलापक्ष की अपेक्षा लेखक अपने भोगे हुए यथार्थ को, अभावों को तथा संघर्ष को चित्रित करते हैं।

हिंदी में सर्वप्रथम डॉ॰ भगवानदास की आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' प्रकाशित हुई किंतु मोहनदास नैमिशराय कृत 1995 में प्रकाशित 'अपने-अपने पिंजरे' नामक आत्मकथा से सही मायने में हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन की शुरुआत मानी जाती है। हिंदी की अन्य चर्चित दलित आत्मकथाओं में ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', माताप्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन तक', श्योराजसिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', 'सूरजपाल चौहान की 'संतप्त' एवं 'तिरस्कृत', रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी', डॉ॰ रमाशंकर आर्य की 'घुटन', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', तुलसीराम की 'मुर्दहिया', बी॰आर॰ जाटव की 'मेरा सफर मेरी जिंदगी' आदि आत्मकथाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इन आत्मकथाओं में दलित समाज की विडंबनाओं का स्वर मुखरित होता है। श्योराजसिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में दलित समाज के अंतर्विरोध की त्रासदी को अत्यंत मार्मिकता से व्यक्त किया गया है। प्रस्तुत आत्मकथा एक दलित बालक के जीवन संघर्ष को उजागर करती है। बचपन में ही पिता की मृत्यु, तत्पश्चात माँ की अन्य दो पुरुषों के साथ शादी, जिससे लेखक को हमेशा घृणा, क्रोध, एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ा। सौतेले बाप द्वारा स्कूल से निकाले जाने पर श्योराजसिंह को मजदूरी करनी पड़ती है। जिसमें बेगारी, खेती, बुट्टे पर जाना, चमड़ा कमाना तथा जूते बनाना आदि कई प्रकार के काम लेखक को करने पड़े। इसका वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं, 'तभी से मेरा बचपन मेरा बोझ लेकर मेरे कमजोर कंधों पर सवार होना शुरू हो गया था। बचपन मैं छोड़ नहीं सकता था और भार लेकर दौड़ नहीं सकता था। जीवन की मंजिलें आवाज दे रही थीं। रास्ते अनिश्चित और अपरिचित थे।'[1] अपने पेट की आग बुझाने के लिए लेखक को गाँव में ही नहीं बल्कि शहर में भी मजदूरी करनी पड़ती है लेकिन वे जहाँ भी गए शोषण का सिलसिला निरंतर चलता रहा।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने 'जूठन' आत्मकथा में गाँव के जीवन के साथ ही वर्गवैषम्य और

 ISSN 0975-735X

जातिभेद का वर्णन किया है। गाँव की पाठशाला में अस्पृश्यता का भेद, दलितों का गाँव के बाहर रहना, मांस खाना, गंदगी उठाना, सुअर पालना आदि का वर्णन किया है। लेखक तथा उसके समाज के लोगों को सवर्णों के शादी-ब्याह या तीज पर जूठी पत्तलों पर बचे-खुचे अन्न को एकत्रित कर खाना पड़ता है। दलित उनके साथ बैठकर खाना नहीं खा सकते हैं। लेखक को जब स्कूल में भर्ती किया जाता है तब हेडमास्टर पूरे स्कूल में झाड़ू लगाने का काम करवाते हैं। जाति के नाम पर गाली देना, क्लास में अन्य बच्चों से दूर बैठाना, गिलास से पानी पीने की इजाजत न देना, स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों से वंचित रखना जैसी अनेक सामाजिक समस्याओं और विषमताओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि वर्णभेद और जातिभेद के कारण जिस ब्राह्मण लड़की से लेखक को प्यार हो जाता है, वह लड़की भी लेखक की जाति का पता चलते ही शादी के लिए इंकार कर देती है। वाल्मीकि जी ने 'जूठन' में गाँव की घृणित जाति व्यवस्था, उत्पीड़न, शोषण, सवर्णों की विकृत मानसिकता, अछूतों का नारकीय जीवन, अपमान, आक्रोश आदि का वर्णन प्रस्तुत आत्मकथा में किया है। वाल्मीकि जी लिखते हैं, 'अस्पृश्यता एक ऐसा माहौल है कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तुएँ थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो दूर फेंको।'[2] आत्मकथा में व्यक्त यह समस्या उत्तर भारत के संपूर्ण चूहड़ा जाति की है।

मोहनदास नैमिशराय कृत 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथा में मानवाधिकारों के प्रति सजगता की भावना, जाति व्यवस्था के कारण दलितों की उपेक्षा, उच्चवर्ग की एकाधिकारशाही आदि का वर्णन मिलता है। शिक्षा व्यवस्था की दूरावस्था का चित्रण करते हुए नैमिशराय लिखते हैं, 'उनका स्कूल चमारों का था। बहुत कम अध्यापक वहाँ पढ़ाने आते थे। कोई आता तो वह नाक-भौंहें सिकोड़कर पढ़ाता था।'[3] ऐसे ही वातावरण में मोहनदास की शिक्षा पूरी होती है। दलितों के बच्चों को स्कूल में पढ़ते देखकर सवर्णों द्वारा उन्हें हरसंभव अपमानित किया जाता है। एक दिन जब लेखक के पिता किसी बारात में जाते हैं और रात के समय जूते सीने के लिए एक व्यक्ति लेखक के घर आता है और लेखक द्वारा परीक्षा का कारण बताकर उसे टालने का प्रयास करने पर वह व्यक्ति कहता है कि 'तू पढ़-लिखकर क्या गवर्नर बनेगा?' स्पष्ट है कि दलितों को हर समय अपमानित किया जाता है क्योंकि उनका एक ही जुर्म है निचली जाति में जन्म लेना। दलितों में उनकी स्त्रियों की दशा तो और अधिक सोचनीय है। घर में बेटी का पैदा होना, दुखः, कलह, अभाव, लड़ाई-झगड़े का प्रतीक माना जाता है। दलितों को सार्वजनिक स्थानों पर पानी भरने नहीं दिया जाता है। उनका मंदिर प्रवेश निषिद्ध माना जाता है। स्पष्ट है कि दलितों को मानवाधिकारों से वंचित रखा जाता है।

कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' यह आत्मकथा स्त्री-संघर्ष की गाथा है। यहाँ लेखिका को मिला अभिशाप दोहरा है—एक उसके दलित होने का और दूसरा उसके स्त्री होने का। प्रस्तुत आत्मकथा में कौशल्या जी ने अपने जीवन के संघर्षपूर्ण अनुभवों को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। महाराष्ट्र के नागपुर की खलासी बस्ती में लेखिका अपने माता-पिता, एक भाई और दो बहनों के साथ रहती है। प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका ने उनकी तीन पीढ़ियों का चित्रण किया है। लेखिका की आजी, माँ और लेखिका। स्त्री होने के नाते जाति-बिरादरी के बंधन को तोड़ते समय स्वजनों के साथ समाज के तथाकथित उच्चवर्णीय लोगों से किस प्रकार प्रताड़ना, उपेक्षा तथा अपमान सहना पड़ता है इसका यथार्थ वर्णन लेखिका करती हैं। लेकिन दूसरी बात यह भी है कि स्वाभिमान के साथ तीन पीढ़ियों की नायिकाएँ उभरती हुई दिखाई देती हैं। लेखिका उच्चशिक्षित होने के कारण अपनी शादी

का निर्णय स्वयं लेती है। इतना ही नहीं, उच्चशिक्षित बिहारी युवक देवेंद्रकुमार के साथ अंतरजातीय विवाह भी करती है। पारंपरिक रीति-रिवाजों को तोड़कर वह रजिस्टर्ड मैरिज करती है। लेखिका की बस्ती के लोग इस शादी का विरोध करते हुए उनके घर पर पत्थर फेंकते हैं। बस्ती की जवान लड़कियों को वासनांध नजरों से देखना, उनके साथ ज्यादती करना, ताने मरना, गालियाँ देना आदि अनेक प्रकार की अपनी ही बस्ती के लोगों की घिनौनी हरकतों का सामना लेखिका समेत उनकी बहनों को भी करना पड़ता है। अनेक मुश्किलों का सामना करते हुए जिस देवेंद्र के साथ लेखिका ने शादी की थी वह भी पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता का था। वह हमेशा लेखिका पर वर्चस्व दिखाता है, चूँकि कौशल्या कोई नौकरी नहीं करती और घर का सारा बोझ उसी के जिम्मे है। इस बात का अहसास होते हुए भी वह अपनी जिम्मेदारियों को सही रूप से नहीं निभाता। लेखिका को अपने पति से बार-बार अपमानित होना पड़ता है। यही कारण है कि दोनों में हमेशा अनबन होती है और वे अलग हो जाते हैं। अनेक पारिवारिक एवं सामाजिक समस्यओं का सामना करते हुए भी कौशल्या जी डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर जी के विचारों से प्रेरित होकर अखिल भारतीय महिला संघठन की स्थापना करती हैं और अपनी जाति की स्त्रियों में आत्मसम्मान जगाने का कार्य करती है।

सुशीला टाकभौरे जी की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में जीवन की सच्चाई और पुरुषी मानसिकता को उजागर करती है। 'शिकंजा' यानी 'पंजा' जिसकी जकड़ में रहकर औरत को काम करना पड़ता है। लेखिका मनुवादी व्यवस्था के शिकंजे में जकड़ी हुई है। वह पुरुष वर्चस्ववादी समाज व्यवस्था का शिकार होती है। लेखिका के पति उससे 20 साल बड़े हैं, जो पेशे से अध्यापक भी हैं। अध्यापक होते हुए भी अहंकार और क्रोध उनकी मानसिक विशेषताएँ हैं। इसलिए छोटी-छोटी बातों पर भी वे लेखिका को मारते-पीटते हैं किंतु लेखिका है कि जो अपने पति को भगवान का रूप मानकर उनकी हर आज्ञा का पालन करती है। वह पढ़ी-लिखी होने के बावजूद भी परावलंबी है। लेखिका जब स्कूल में अध्यापिका बनती है तब भी उसे अपने वेतन पर अधिकार नहीं मिलता। यहाँ तक कि टिकट के लिए भी उसे पति से पैसे माँगने पड़ते हैं। सुशीला जी का बचपन अभावों में बीता। गाँव में दलित मजदूर महिलाओं का ठेकेदारों, जमींदारों, साहूकारों आदि के द्वारा होनेवाले आर्थिक, मानसिक शारीरिक शोषण का वर्णन लेखिका ने किया है। सुशीला जी की माँ खेत में मजदूरी करती है और साथ में अपनी बेटी को भी ले जाती है। सुशीला गेहूँ की बालियाँ चुनती थी और माँ गेहूँ की सूखी फसल काटकर पुली बनाती थी। ठंड के मौसम में चने के खलीहान में सूखी पटलियों की कटाई से बहुत कष्ट होता था। ज्यादा मेहनत करने के बाद भी मजदूरी बहुत कम मिलती थी। लेखिका लिखती है, 'दिनभर पसीना बहाने के बाद हमारी मेहनत की कमाई बहुत कम दी जाती थी। माँ कभी ज्यादा देने के लिए कहती है तब मालिक कहते हैं जो हिसाब है उसी हिसाब से देंगे, आना होतो आओ नहीं तो मत जाओ।'[4] क्योंकि मालिक जानता था कि दलित मजदूरों के पास मजदूरी के सिवा जीविकोपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं है। जितना मेहनताना मिलता है, उसमें दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना भी मुश्किल हो जाता है। अपनी प्राथमिक जरूरतों को पूरी करने के लिए भी उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। शादी-ब्याह के समय ज्यादा ब्याज देकर या कोई वस्तु गिरवी रखकर कर्ज लेना पड़ता है। दलितों को छप्परनुमा झोपड़ी तथा कच्चे मिट्टी के मकानों में रहना पड़ता है। मकान की छत बारिश में हमेशा टपकती रहती है। दीवारें गीली हो जाती हैं। घर के चारों ओर कीचड़ जम जाता है। लेखिका का अछूत जाति की होने के कारण समाज द्वारा अपमान और उपेक्षा सहन करनी पड़ती है। स्कूल

का चपरासी स्कूल के घड़े से पानी दूर से ही पिलाता था। हिंदू-महाजनों के कुएँ पर दलित पानी नहीं भर सकते थे। लेखिका लिखती हैं, 'कुएँ के हौज का पानी गाय, बैल और भैंस पीते थे, मैं उन्हें दूर से देखती थी मगर कुएँ के पास नहीं जा सकते थे।'[5] इससे स्पष्ट होता है कि दलितों का जीवन पशुओं से भी बदतर था। अनाज की दुकान पर सामान की लिस्ट जमीन पर रखनी पड़ती थी। दुकान का नौकर सामान की पुड़ियाँ बनाकर दूर से ही टोकरे में फेंक देता था। यहाँ तक कि जब लेखिका की माँ बीमार होती है तो डॉक्टर बरामदे में बिस्तर पर सोई हुई माँ को दूर से ही देखता है और गोलियाँ देता है। इससे सवर्णों की अछूत मानसिकता का दर्शन होते हैं लेकिन हद तो तब होती है जब किराए के मकान में लेखिका की सास की मृत्यु होती है और घर की मालकिन उन्हें कहती है, 'यह सब तो ठीक है मगर आप किसी रिश्तेदार के यहाँ ले जाओ ले जाकर वह सब क्रिया कर्म करो। हमारे घर में यह सब नहीं होना चाहिए। आप लाश यहाँ से ले जाओ।'[6] जीवन की कैसी विडंबना है कि मरणोपरांत भी मनुष्य की जाति उसका पीछा करती है। सुशीला जी उच्च शिक्षित और कॉलेज में प्राध्यापिका होने के बावजूद भी झाड़ू वाली जाति के नाम से ही पहचानी जाती है। स्टाफ के अन्य अध्यापक भी उनके घर आने-जाने तथा खान-पान करने से कतराते रहते हैं। उच्च शिक्षित लोगों द्वारा भी दलितों को अपमान और उपेक्षा सहनी पड़ती है।

दलित लेखकों की आत्मकथाएँ उनके वास्तविक जीवन की कथाएँ हैं। इन लेखकों ने अपने भोगे हुए यथार्थ और झेले हुए सुख-दुःखों का यथार्थ चित्रण अपनी आत्मकथाओं में किया है। उनकी आत्मकथाएँ किसी व्यक्ति की कथा न रहकर समाज की व्यथा और कथा बन जाती है। दलितों का नारकीय जीवन, सवर्णों का वर्चस्ववाद, जातिभेद, अस्पृश्यता, गरीबी, शिक्षा की समस्या, अन्याय, दमन और शोषण तथा दलित महिलाओं की दुर्दशा आदि ज्वलंत समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत आत्मकथाओं में मिलता है। श्योराज सिंह कीआत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में जहाँ एक ओर लेखक ने अपने अभावग्रस्त जीवन का वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर उस समाज का चित्रण भी किया है, जिसमें लेखक स्वयं रहता है। मोहनदास नैमिशराय ने सवर्णों द्वारा दलितों पर किए जानेवाले अत्याचारों को अभिव्यक्त किया है। 'अपने-अपने पिंजरे' में दलितों की समस्याओं का चित्रण बिलकुल निर्भीकता और स्पष्टता के साथ किया गया है। कौसल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में दलित स्त्री जाति के अभिशप्त जीवन का वर्णन करती हैं और उनमें आत्मसम्मान जगाने की कोशिश भी करती है। 'शिकंजे का दर्द' में सुशीला जी भारतीय दलित महिलाओं को पीड़ा, दर्द और यातनाओं से मुक्ति दिलाने की प्रेरणा देते हुए तमाम भारतीय महिलाओं को दर्द के शिकंजे से छुटकारा दिलाने की ताकत देती हैं।

संदर्भ

1. श्योराज सिंह बेचैन, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, पृ॰ 31
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, पृ॰ 12
3. मोहनदास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे, पृ॰ 125
4. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृ॰ 67
5. वही, पृ॰ 50
6. वही, पृ॰ 106

Mob. 7020459963
E mail: gorakhnath.kirdat@gmail.com

'अपना गाँव' : हाशिए के समाज की चेतना

डॉ॰ बालाजी वामनराव गायकवाड
सिद्धार्थ कला विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
बुद्धभवन, फोर्ट, मुंबई

हाशिए का समाज अर्थात् 'दलित'। इस दलित शब्द की उत्पत्ति 'दल' धातु से हुई है जिसका अर्थ पिछड़ा, शोषित, रौंदा हुआ और अछूत आदि। जिसे दबाया गया, विकसित होने नहीं दिया, उपेक्षित रखा ऐसा मानव। अन्य नामों से भी संबोधित किया जाता है, जैसे अस्पृश्य, अंत्यज, दास, शुद्र, हरिजन आदि। जो वर्णव्यवस्था, धर्मव्यवस्था को नकारने वाला विद्रोही, संघर्षरत, समाज 'हाशिए का समाज' है। हाशिए के समाज जो शोषित, पीड़ित, गरीब, अछूत हैं, जिनको समाज में अपमानित किया जाता है जिसमें आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, चुभन, घुटन और छटपटाहट है। दलित शब्द आज प्रेरणा और विद्रोह का पर्यायवाची भी बन गया है। शोषित पीड़ितों के प्रति मुद्राराक्षस ने कहा है, 'धर्मसूत्रों तथा दूसरी ब्राह्मण पुस्तकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को छोड़कर जो दूसरी श्रमजीवी जातियाँ थीं उन्हें भारतीय समाज में शूद्र जातियाँ घोषित कर दिया गया था। वस्तुत: यह कामगार और शिल्पी जातिया थीं। अमरकोश में शिल्पी ही शूद्र कहा गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है (अध्याय 208 श्लोक 33-34) शूद्र मजदूर है। शूद्र नहीं होंगे तो परिश्रम का काम कौन करेगा। नरसिंह पुराण (अध्याय 58 श्लोक 10-15) में कहा गया है कि कृषि शूद्र का काम है। यह निर्विवाद है कि तमाम औद्योगिक उत्पादन करने वाले लोगों को भारतीय समाज में हजारों बरस से शूद्र कहकर दुर्दशाग्रस्त जीवन बिताने को बाध्य किया गया।'[1] अत: मनुस्मृति के श्लोक में स्पष्ट रूप में कहा गया है–

एकमेवतूशुद्रस्यप्रभु: कर्मसमादिशत्।
एतेषामेव वर्णानंशुश्रूषामनसूयया।। (मनुस्मृति 1.91)

अर्थात् ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि तीनों वर्णों की बिना शिकायत भाव से सेवा करना शूद्रों के लिए कर्म बनाया है। डॉ॰ सूर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं, 'दलित का अर्थ है जो सामाजिक दृष्टि से पूर्णत: उपेक्षित है, जो वर्ण तथा जाति व्यवस्था के अंतर्गत सबसे आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है, जो शोषित है, पीड़ित है, श्रमिक है, आदिवासी है, जिसकी अपनी कोई पहचान नहीं बन पाई है और जिसके अस्तित्व को भी स्थापित वर्ग ने नकारा है जिसकी अस्मिता को सतत रौंदा जाता है, वह दलित है। इस अर्थ में यह शब्द और उसका आशय बहुत ही व्यापक है। ऐसे नकारे गए श्रमिक, दलित, पीड़ित, शोषित मनुष्य को उसके न्याय अधिकार दिलवाने हेतु जो भी चिंतन प्रस्तुत किया जाए वह मनुष्य के मुक्ति का चिंतन होगा।'[2] इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह महात्मा फुले जी से शुरू होकर एक बड़े सामाजिक आंदोलन में परिवर्तित हो गया। इस शोषित पीड़ितों के मुक्ति आंदोलन की मूल प्रेरणा डॉ॰ बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर रहे हैं। उनके द्वारा चलाए गए विभिन्न आंदोलनों का प्रभाव मराठी साहित्यकारों पर रहा है। बीसवीं शताब्दी के

 ISSN 0975-735X

उत्तरार्द्ध में साहित्य ने एक नया मोड़ लिया। साहित्यकारों ने कल्पना के स्थान पर अपनी अनुभूति के आधार पर अन्याय, अत्याचार, जाति व्यवस्था के खिलाफ चेतना निर्माण करने का प्रयास अपने साहित्य के माध्यम से किया। दलित सौंदर्यशास्त्र पर विचार रखते हुए रमणिका गुप्ता ने लिखा है 'दलित साहित्य ने नए बिंब गढ़े, पौराणिक मिथकों की भाषा बदल डाली। नए मिथक बनाए, गौरवान्वित झूठ और आस्था पर चोट की और चमत्कार को तोड़ा। यह वर्तमान साहित्य के लिजलिजेपन और बासीपन तथा एकरूपी रसवादी प्रणाली से भिन्न है और चमत्कारी कल्पनाओं से बिल्कुल अलग होता है। इसके दायरे में अंधविश्वास, भाग्य, पूर्वजन्म के कर्म, धर्म तथा भगवान नहीं आते।'[3]

दलित साहित्य उन निर्दोष लोगों के लिए जीवन का प्रकाश है, जिन्हें सामाजिक आत्मनिर्भरता की भूख नहीं है। इस समाज में भुक्तभोगी हाशिए पर हैं। दलित साहित्य एक विद्रोही साहित्य के रूप में उभरा है और इस देश में हलचल मचा दी है। दलित साहित्य की कई साहित्यिक कृतियों में उनके द्वारा शोषित समाज जीवन के बारे में विस्तार से उनके द्वारा किए गए उत्पीड़न की घटनाओं का वर्णन किया गया है।

साहित्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इस तरह दलित साहित्य का ध्येय मानव मुक्ति के लिए ईमानदारी से संघर्ष है। दलित साहित्य में पूर्णत: इसका वैचारिक दृष्टिकोण सामाजिकता में बदल चुका है। दलित साहित्य की सामाजिक प्रेरणाओं में मानव जीवन का संपूर्ण स्वाधीनता विकास का आंदोलन को प्रकाशित होता है। 'इन आंदोलन की वैचारिक भूमि का निर्माण रानडे, ज्योतिबा फुले तथा डॉ॰ भीमराव अंबेडकर ने किया है। इन तीनों ने जातिप्रथा, वर्ण-व्यवस्था, अछूत समस्या, जातिवादी सांप्रदायिकता, गैरब्राह्मणों के अधिकार की लड़ाई को तीव्र किया। नए मूल्यों की स्थापना करनेवाला, जातीयता की दीवारों को तोड़नेवाला, मानव में वैचारिक परिवर्तन लानेवाला, सांप्रदायिकता की जड़ मिटानेवाला, नवसमाज व्यवस्था बनानेवाला, मानव को मानव बनाकर जीने की ताकत देने वाला, प्रेरक साहित्य यानी दलित साहित्य।

दलित साहित्य दलितों पर चल रहे अत्याचारों, उत्पीड़न और अछूतों के बारे में विस्तार से दलित समुदायों को बताने में सक्षम रहा है। विभिन्न कवियों ने गरीबी, भूख, पीड़ा, बलात्कार, इच्छामृत्यु, जातिवाद, देवदासी अवस्था इत्यादि जैसे सामाजिक नुकसान पर अपने अद्वितीय लेखन के माध्यम में दलित साहित्य में महान योगदान दिया है। दलित साहित्य की प्रेरणा के परिणामस्वरूप, आज समाज के अधिकांश दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यात शिक्षित लोग सभी क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त कर चुके हैं। हाशिए के समाज की पीड़ा वेदना को लेखकों ने अपनी साहित्य का मूल आधार बनाकर उपेक्षितों को न्याय दिलाने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने लेखन के प्रति लिखते हैं, 'मेरे सामने वे तमाम लोग प्रश्नचिह्न बनकर खड़े हैं जो मेहनतकश हैं, शोषित, पीड़ित और दलित हैं, जिन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था का निकृष्टतम रूप चक्रवाती झंझावातों की तरह सहा है। उसकी बेबस चीखों ने मुझे हमेशा झिंझोड़ा है। कहानी हो या कविता, मैं अपने ही शब्दों से क्षत-विक्षत हुआ हूँ। हिंदी साहित्य की सामंती, ब्राह्मणवादी, प्रवृत्तियों ने जिन विषयों को त्याज्य माना, जिन्हें अनदेखा किया, उन पर लिखना मेरी प्रतिबद्धता है।'[4] ओमप्रकाश वाल्मीकि जिनके संबंध में लिखते हैं उनका गहरा संबंध उस हाशिए के समाज से हैं, जिसे हम दलित के रूप में जानते हैं।

मराठी के बाद उत्तर भारत में हिंदीक्षेत्र में दलित साहित्य आंदोलन को अत्यधिक गति

प्राप्त हुई। साहित्यकार आंबेडकरी दर्शन एवं विचारों से प्रेरित होकर विषमता के विरुद्ध एक बड़ा आंदोलन खड़ा करके नए समाज का निर्माण करने का प्रमुख उद्देश्य दलित साहित्य का रहा है। डॉ॰ विमल कीर्ति ने ठीक ही लिखा है, 'दलित साहित्य केवल दलितों का बोध करानेवाला, दलित पीड़ा को दलित भाव-भावनाओं को दलितों पर होनेवाले जुल्म-ज्यादतियों, अन्याय, अत्याचार आदि को व्यक्त करने वाला साहित्य ही नहीं है बल्कि दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक क्रांति, अन्याय-अत्याचार के जुल्म-ज्यादतियों के प्रति घृणा, नफरत, प्रतिशोध, विद्रोह, नकार की भावना जाग्रत करनेवाला साहित्य भी है। क्योंकि दलित साहित्य आंबेडकरवाद की नींव पर खड़ा है।'[5]

हाशिए के समाज पर लेखन करने वाले साहित्यकारों में प्रमुख हैं–माताप्रसाद, डी॰ आर॰ जाटव, श्यामलाल जेदिया, तुलसीदास, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, कौसल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे, सूरजपाल चौहान, डॉ॰ दयानंद बटोही, सूरजपाल चौहान, कुसुम वियोगी, बुद्धमशरण, हंसरत्न कुमार साँवरिया आदि दलित साहित्यकारों का हिंदी दलित कथासाहित्य को विकसित करना तथा समाज में नई चेतना भर देने में बहुत बड़ा योगदान रहा है।

'अपना गाँव' इस लंबी कहानी के लेखक मोहनदास नैमिशराय जी हैं। मोहनदास नैमिशराय एक महान हिंदी के लेखक के नाम से जाने जाते हैं। 5 सितंबर, 1949, मेरठ (उ॰प्र॰) को मेरठ शहर के एक गरीब परिवार में जन्मे मोहनदास नैमिशराय सुप्रसिद्ध दलित रचनाकार हैं। वे पाँच वर्ष तक डॉ॰ अंबेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, नई दिल्ली में संपादक एवं मुख्य संपादक, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा एवं अन्य विश्वविद्यालयों में विजिटिंग प्रोफेसर रह चुके हैं। पत्रकारिता, रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म, नाटक आदि में लेखन व प्रस्तुति का प्रचुर मात्रा में आपका अनुभव रहा है। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में अध्येता के रूप में 'मराठी और हिंदी दलित नाटक' पर शोधकार्य आपने किया है।

आपकी प्रमुख प्रकाशित कृतियों में प्रमुख हैं–क्या मुझे खरीदोगे, मुक्तिपर्व, झलकारीबाई, जख्म हमारे, महानायक बाबासाहेब डॉ॰ आंबेडकर (उपन्यास); आवाजें, हमारा जवाब (कहानीसंग्रह); सफदर एक बयान, आग और आंदोलन (कविता-संग्रह); अपने-अपने पिंजरे (2 भागों में, आत्मकथा); अदालतनामा, हैलो कॉमरेड (नाटक); भारतरत्न डॉ॰ भीमराव आंबेडकर, आत्मदाह संस्कृति : उद्‌भव और विकास, उजाले की ओर बढ़ते कदम, स्वतंत्रता संग्राम के दलित क्रांतिकारी, बहुजन समाज (शोध-विमर्श); हिंदुत्व का दर्शन, डॉ॰ आंबेडकर और कश्मीर समस्या, भारत के अग्रणी समाज सुधारक (अनुवाद); दलित उत्पीड़न विशेषांक, हिंदी दलित साहित्य (संपादन) आदि। मोहनदास नैमिशराय एक कवि, समीक्षक, कथाकार, नाटककार, के रूप में स्वतंत्र लेखन करते रहे, हिंदी दलित साहित्य को समृद्ध तथा स्थापित करने में आपका बहुत बड़ा योगदान है। आपके इस लेखनकार्य को लेकर कई पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया है।

'अपना गाँव' इस लंबी कहानी 'लहना गाँव' से जुड़ी है। लगभग हजार परिवारों की बस्ती वाला गाँव दो हिस्सों में बँटा था जो एक सवर्ण और दूसरा निम्न चमार जाति के लोग थे। लहना गाँव में ठाकुरों का प्राबल्य अधिकथा। गाँव में स्थित जो चमार दलित जातियाँ थीं जो बरसों से ठाकुर द्वारा अन्याय अत्याचारों से पीड़ित थी। गाँव की परंपरा को ठाकुरों तथा ब्राह्मणों ने

मिल-जुलकर बनाई थी। मंदिर ब्राह्मणों का था तथा हवेली ठाकुरों की थी। बाकी गाँव पर बनियों, कायस्थों, यादवों, कूर्मियों और राजपूतों का कब्जा था। अधिकारसंपन्न जातियों ने उसकी बस्ती के एक-एक आदमी, औरत, बच्चे, बूढ़े को वस्तु बना दिया था। जिसका जब जी चाहा इस्तेमाल कर लिया और जब मन किया एक तरफ फेंक दिया। चमारों की बस्ती में ऐसा कोई एक भी घर खाली नहीं था कि जहाँ ठाकुरों ने अन्याय, अत्याचार न किया हो। ठाकुरों के खिलाफ एफ॰आई॰आर॰ दर्ज करने की हिम्मत अभी तक किसी चमार ने नहीं की थी। 'अपना गाँव' कहानी के घटना में ठाकुर के मंझले बेटे दीपकसिंह ने कबूतरी को नंगा कर सरेआम गाँव में घुमाया। वजह थी कि कबूतरी के पति संपत ने ठाकुर का लिया हुआ पाँच सौ रुपए का कर्जा समय पर लौटा नहीं सका था। अब इस बार अन्याय अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए चमारों का बुजुर्ग हरिया एवं युवावर्ग किसना, संपत, हरफूल, बिरमो का बेटा कुंदन आदि लड़ने के लिए तैयार हो गए हैं।

बरसों पीढ़ी-दर-पीढ़ी से इस तरह ठाकुर द्वारा हो रहे जुल्म, अत्याचार के खिलाफ कभी किसी ने आवाज नहीं उठाई थी किंतु वर्तमान समय में डॉक्टर बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर जी के विचारों के कारण दलितों पिछड़ों में अन्याय, अत्याचार के खिलाफ विद्रोह की भूमिका रही है डॉ॰ बाबासाहब अंबेडकर ने जो त्रिसूत्री दी–'पढ़ो, संगठित बनो और संघर्ष करो।' इस विचार से दलितों पीड़ितों में चेतना का निर्माण हुआ है और आज हम देखते हैं कि शोषण, अन्याय, अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए शोषित समाज आज संवैधानिक दृष्टि से खड़ा हुआ है–'हम अनशन करेंगे, भूख हड़ताल करेंगे। हमारी समाधिया वहीं बनेगीं। अन्न का दाना भी न खाएँगे। उनके मरने के बाद ही अब गाँव के लोग उनके अर्थी को कंधा दें। बहुत सह लिया। ठाकुरों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी जुल्म। अब और न सहेंगे।'[6] संपत का पिता हरफूल अपने अनुभव के आधार पर समझा रहा था कि ठाकुर का कोई कुछ नहीं करेगा। ठाकुर की ऊपर तक पहुँच है किंतु अब यह विद्रोहों का तूफान थमने वाला नहीं था। डॉ॰ बाबसाहब ने कहा था अन्याय करने वाले से अन्याय सहने वाला अधिक गुनहगार है। तभी तो संपत आक्रोश में आकर कहता है, 'भैया हम कब तक कमजोर बने रहेंगे? कब तक गुलामों की तरह रहेंगे?'[7] ठाकुर की पहुँच ऊपर तक क्यों न हो संपत डटकर अन्याय का सामना करते हुए पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करना चाहता है।

दो साल पहले संपत का विवाह हींगना गाँव की बहुत ही सुंदर गोरी-चिट्टी 'छमिया' अर्थात् कबूतरी के साथ हुआ था। छम-छम करती छमिया अपने सुंदरता से पूरे गाँव में चर्चित थी। बस्ती में निकलती तो उसकी पायल की छम-छम हर किसी का ध्यान आकर्षित कर लेती थी। दसवीं तक पढ़ा-लिखा संपत पिछले दो साल से बेरोजगार था उसको लगा कि शहर में जाकर कोई रोजगार ढूँढ लेना चाहिए। इसीलिए वह एक दिन शहर जाने के लिए निकलता है किंतु उसके पास पैसे नहीं थे। संपत नौकरी की तलाश में शहर जाते समय ठाकुर से पाँच सौ का कर्जा लेकर चला गया था। संपत को शहर जाकर आज बीस दिन हो चुके थे। पता नहीं चला था कि उसको कोई और नौकरी मिली है या नहीं।

ठाकुर ने अब तक चमार बस्ती की कई स्त्रियों का यौन शोषण किया था। वह पैसे देकर मूल के साथ ब्याज की एक-एक पाई की कीमत वसूल करता था। औरत ने कबूतरी को ठाकुर के बारे में कहा था, 'ठाकुर मूल तो मूल ब्याज भी नहीं छोड़ता। एक-एक पाई की कीमत चुकानी पड़ती है आसामी को और उसकी नई घरवाली को सबसे पैले।'[8] उस औरत को दिया हुआ कर्ज भी ठाकुर ने पति को खेत में और उसे घर में रखकर वसूल किया था।

हरिया बताता है कि ठाकुर के लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी जात के लोगों पर किस प्रकार अत्याचार करते रहे हैं, 'इसी गाँव में पैदा हुआ था। जवान हुआ और फिर बूढ़ा भी। अब इसी गाँव के मरघट में एक-न-एक दिन लकड़ियों के साथ जला दिया जाएगा। पर इस गाँव में मिला क्या उसे तथा उसकी जात के लोगों को? बार-बार बेइज्जती और जलालत की जिंदगी। उसे नफरत सी हो गई इस गाँव से। ठाकुर के लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी जात के लोगों पर अत्याचार करते रहे और वे उनकी गुलामी। उसकी जात के दस लोगों को सौ-सौ गज जमीन मिली थी, ठाकुर ने प्रधान से मिल-मिलाकर अपने नाम लिखा ली। वे पहले भी ठाकुर के जरखरीद गुलाम थे, अब भी। गाँव में कितने लोगों के पास जमीन होगी? न जमीन, न घर, न कुआँ, न पोखर। गंदे जोहड़ से पानी पीना पड़ता है। आज भी गाँव में कोई स्कूल भी नहीं, न डिस्पेंसरी है, ना ही डॉक्टर है। क्या है आखिर इस गाँव में? केवल हवेली और मंदिर! दोनों ही उनके लिए बेकार।'[9]

कबूतरी को भी आज से सप्ताह पहले ठाकुर की हवेली से हुक्म आया था कि, तेरा घरवाला शहर जाते समय 500 ले गया है। वह आकर खेत में मजदूरी करके कर्जा उतार दे, लेकिन कबूतरी ने देवर से कहकर ठाकुर के खेतों में काम करने से मना किया था। एक-दो दिन बीत जाने के बाद जब कबूतरी जंगल से लकड़ियों का गट्ठर लेकर लौट रही थी तब अकेली देखकर रास्ते में ही उसे ठाकुर के मंझले बेटे ने रोक लिया था। आज से सप्ताह भर पहले उसने कबूतरी को धमकाया भी था–'देख री कबूतरी या तो सीधी हमारे खेतों में, काम करने आजा, वर्ना हम चमारों से जबरदस्ती भी काम लेना जानते हैं। फिर तेरा घरवाला तो हमसे कर्ज ले गया है। उसका मूल न सही ब्याज तो तू चुका सकती है।'[10] कबूतरी जान चुकी थी कि ठाकुर का बेटा उससे क्या चाहता है? इसलिए वह ठाकुर के खेत पर काम करने नहीं गई थी। ठाकुर का मंझला बेटा अपने चार कारिंदों के साथ कबूतरी का रास्ता रोके रखकर खेत पर काम करने को मना करने का गुस्सा उस पर उतार रहा था। कबूतरी भी उसे मुँहतोड़ जवाब दे रही थी। फिर गुस्से में आकर उसने कबूतरी के बदन पर के कपड़े खींच-खींचकर फाड़ दिए और उसे पूरी तरह नंगा करके ही छोड़ा। कबूतरी रोई-गिड़गिड़ाई किंतु उस पर कोई दया नहीं आई। ठाकुर के मंझले बेटे दीपक सिंह ने कर्जा न लौटाने के कारण संपत की पत्नी कबूतरी को नंगा कर गाँव में घुमाया।

इस अन्याय-अत्याचार से क्रोधित हुआ संपत जब शहर से लौटकर आता है तब वह पुलिस थाने में रिपोर्ट दाखिल करना चाहता है। गाँव के अन्य चमार भी उसे सहयोग देते हैं और वह ग्यारह लोग शहर में पुलिस थाने रिपोर्ट दर्ज कराने की कोशिश करते हैं। हमेशा की तरह पुलिस थाने में ठाकुर के खिलाफ पुलिस कोई एफ॰आइ॰आर॰ दाखिल करने को तैयार नहीं होती है। बल्कि उनकी ही पिटाई कर उन्हें लॉकप में बंद कर दिया जाता है। इंस्पेक्टर संपत और उसके साथियों को कहता है–'स्सालो चमारो, अब तुम्हें जबान भी लड़ाना आ गया।'[11] संपत, हरफूल और बिरमो का बेटा जो अन्याय पर न्याय की माँग इंस्पेक्टर से कर रहे थे। उन्हीं को ज्यादा चोटें आई थीं। इसकी चर्चा खूब हुई। मीडिया वाले लहना गाँव में पहुँचे और फिर उन्होंने जाँच की। रिपोर्टर अनुपम और मोनिका केस वालों के जवाब देते हुए हरिया ठाकुर द्वारा किए गए महिलाओं पर के। अन्याय को अभिव्यक्त करते हुए कहता है–'म्हारी जात की औरतों को पैले से ही ठाकुरों के द्वारा नंगा किया जाता रहा है। उनकी बेइज्जती की जाती रई है। गाँव का रिवाज बन गया है ये।'[12] हरिया आगे कहता है–'हाँ साब, गाँव में सबसे पैले मेरे पोते की बहू को ही नंगा किया गया। कुछ म्हारी बहू-बेटियों को हवेली में नंगा किया गया। दिन के उजाले में भी और रात के अँधेरे में भी। अब

किस-किसका नाम बताऊँ? सारे गाँव ने झेला है उसे। म्हारी बियरबानी मुँह से न कहें, पर मन जानता है उनका।'[13] हरिया बरसों से समाज पर हो रहे अन्याय को लेकर अपना अनुभव बताते हुए कहता है–'उसकी जात की बहुत कम औरतें ऐसी होंगी, जिन्हें ठाकुर के बुलावे पर हवेली में ना जाना पड़ा हो। एक-एक के बदन ने अनचाहे वह सब झेला था। इसलिए गाँव में कम उम्र की बेटियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल भेज दिया जाता था। जो बाहर से इस गाँव में बहू बनकर आती थी, उनके पहले दो-तीन साल अजीब से धर्मसंकट में गुजर जाते थे। गाँव में पहले से ही कुछ ऐसी परंपरा थी। उन्हीं परंपराओं को गाँव के लोग ओढ़ने-बिछाने के लिए मजबूर थे।'[14] आएदिन हाशिए के समाज पर हो रहे अन्याय-अत्याचार के कारण लोकतंत्र पर का विश्वास भी कम होता जा रहा है। संपत कहता है, 'भैया क्रांति लानेवाले तो आज संसद और विधानसभाओं में जाकर सो गए हैं। हम तो केवल हम पर जो जुल्म और अन्याय हुआ है उसके खिलाफ कुछ करना चाहते हैं।[15] आरक्षण का जो उद्देश्य रहा है वह असफल होता हुआ दिखाई दे रहा है।

एक दिन हरिया के नेतृत्व में पंचायत बुलाई गई उसमें औरतें, बच्चे और सभी लोग उपस्थित थे। हरफूल ने पंचायत में बतयाती न साल पहले कबूतरी का ब्याह हिंगना गाँव सेला कर यहाँ संपत के साथ किया गया था। मंगल के दिन उसी के साथ ठाकुर के मंझले बेटेने गाँव में नंगा घुमाया। तो उसको लेकर हमें क्या करना चाहिए? तो कई ने कई जवाब दिए। किसी ने कहा ठाकुर की भी अर बानी को भी नंगा कर देना चाहिए। तो किसी ने कहा ठाकुर की खड़ी फसल को जला देना चाहिए। या किसी ने कहा ठाकुर की हवेली को जला देना चाहिए। तो किसी ने कहा कि यह गाँव छोड़कर शहर में जाना चाहिए। जहाँ कोई छुआछूत होगी ना जात-पात। किंतु इन सबको सुनने के बाद हरिया कहता है। अब रोना-धोना छोड़ो बहुत हुआ। सबने अपनी-अपनी बात कह ली अगर मैं कुछ कहँ तो मेरी बात मानोगे? और सबने हाँ में हाँ मिला दी। और हरिया ने एक बात कही हाँ तो हम नया गाँव बसाएँगे। जहाँ न कोई जात-पात होगी न कोई छुआछूत होगी, हम अपने ठाकुर होंगे।

इस प्रकार मोहनदास नैमिशराय जी द्वारा लिखित 'अपना गाँव' इस कहानी पर डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर जी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जातिभेद को दूर करने के लिए डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर ने कहा था शहर की ओर चलो जहाँ न कोई जाति भेद होगा। उसी तरह मोहनदास नैमिशराय जी एक ऐसा गाँव बनाना चाहते हैं, जहाँ न कोई जाति भेद होगा अन्याय-अत्याचार करने वाला कोई न होगा, जहाँ हाशिए का समाज सम्मानित रूप से हँसी-खुशी से रह सकेगा।

संदर्भ

1. नई सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, संपादक मुद्राराक्षस, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2008, भूमिका से
2. आधुनिक हिंदी साहित्य के विविध परिदृश्य, डॉ॰ शेख मजीद, शुभांजलि प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ॰ 284
3. नई सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, संपादक मुद्राराक्षस, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2008, भूमिका से, पृ॰ 7
4. आत्मकथ्य, दूसरी दुनिया का यथार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, संपादक रमणिका गुप्ता, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, संस्करण 1997, पृ॰ 1

5. दलित साहित्य और अंबेडकरवाद, डॉ॰ कीर्ति विमल, पुष्पांजलि प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 15
6. दलित कहानी संचयन, सं॰ रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2003, पृ॰ 38
7. वही, पृ॰ 41
8. वही, पृ॰ 32
9. वही, पृ॰ 45
10. वही, पृ॰ 31
11. वही, पृ॰ 44
12. वही, पृ॰ 47
13. वही, पृ॰ 47
14. वही, पृ॰ 39
15. वही, पृ॰ 41

Mob. 9969537567
bwgaik¡d@gmail.com

 ISSN 0975-735X

रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण

प्रा॰ वाघमारे के॰ एच॰
हिंदी विभाग
कालिकादेवी कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
शिरूर (कासार) तह॰ शिरूर (का॰) जि॰ बीड-433249

कवि दिनकर ने समय-समय पर नारी संबंधी अपनी धारणाओं को साहित्य के माध्यम से पूर्ण स्पष्टता से व्यक्त किया है। दिनकर की नारी भावना के संबंध में डॉ॰ ज्ञान अस्थाना का मत है कि 'दिनकर ने नारी को किशोरी, बाला, रूपा, प्रेयसी, पत्नी, पतिता, देवी, कल्याणी-गृहिणी, माता आदि रूपों में देखने का प्रयास किया है। उन्होंने हर बार इस बात पर बल दिया है कि जब-जब समाज में निवृत्तिवादी विचारधाराएँ प्रबल रही नारी का सम्मान घटा और जब-जब प्रवृत्तिवाद का जोर रहा, नारी की प्रतिष्ठा बढ़ी है।'[1] डॉ॰ चंद्रशेखर जैन भी लिखते हैं, 'दिनकर के काव्य में नारी के विविध रूप अंकित हैं। कवि नारी के आदर्श रूप का समर्थन करता है एवं उसके उन्नयन में प्रयत्नशील भी है।'[2]

प्राचीनकाल से नारियों की स्थिति देखी जाए तो नारियों को सारे संसार में दबाकर रखा गया है। यह स्थिति भारत में भी कुछ अधिक थी। भारतवर्ष में नर और नारियों के लिए नैतिकता के भिन्न-भिन्न नियम थे, इस बात पर शंका नहीं की जा सकती। पुरुष वेदों का पठन कर सकता था किंतु नारी को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। सभी कालों में और सभी धर्मों ने नारियों की उपेक्षा की और उन पर अत्याचार ही किए। जब जीवन का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष और मोक्ष का उपाय संन्यास हो गया तब समाज के हट्टे-कट्टे नवयुवक भी पत्नी को त्यागकर संन्यास लेने लगे। उस विवशता-भरी वेदना की कल्पना की जाए तो पत्नी के हृदय को वह कितना दग्ध करती होगी। पति जीवन के सर्वोच्च धैर्य के अन्वेषण में उनका त्याग कर रहे थे। वे अपने पति की निंदा नहीं कर सकती थी, क्योंकि वे बहुत बड़े उद्देश्य के लिए संन्यास लेता है। दूसरी ओर वे पति के साथ संन्यासिनी भी नहीं हो सकती थी। क्योंकि वह संन्यास नहीं होता, जिसमें माया भी संन्यासी के साथ चलती है। अत: इसमें कोई संदेह नहीं कि नारी ने मन-ही-मन अपने को अधम मानना स्वीकार कर लिया। देखा जाए तो हर देश में नारियों का यही हाल हुआ है जो भारतवर्ष में हुआ था।

नारी संबंधी धारणाएँ

भारतवासियों के नारी-विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन कैसे आया। इसके संबंध में गत सौ वर्षो की हिंदी-कविता पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट रूप से बात समझ में आती है। नारी की पद मर्यादा को ऊँचा दिखानेवाले महान व्यक्तियों की पहली प्रतिक्रिया रीतिकालीन कवियों की

नारी-भावना के विरुद्ध उठी। क्योंकि उन्होंने नारी को केवल काम-क्रीड़ा का खिलौना समझा था। इसमें संदेह नहीं कि नारी को केवल कामिनी मानने से बढ़कर उसकी और कोई निंदा नहीं हो सकती। उसके बाद पूरा परिवर्तन यह आया कि साहित्य में नारी के वे रूप चित्रित किए जाने लगे जो सती, साध्वी, वीरा, बलिदानी और त्यागमयी नारियों के रूप थे। इसके साथ ही साहित्य में यह विलाप भी गूँजने लगा कि, भारत के पुरुषों ने ही नारी को अशिक्षित, अपाहिज और पंगु बना रखा है। नारी-नर की समकक्षिणी एवं उसका पूरक अंश हैं। यह अनुभूति ठीक उसके बाद होने लगी। इसके लिए हरिऔंध कृत 'प्रियप्रवास' में राधिका का चरित्र दिखता है। तदुपरांत तो नारी के प्रति पुरुष की सहानुभूति तथा न्याय-भावना के द्वार ही खुल गए। यहाँ तक की छायावाद के आते-आते हिंदी साहित्य में यह भावना सबल हो गई की नारी नर से श्रेष्ठ है। वह सुंदरता में उज्ज्वल किरण है। छायावादियों ने यहाँ तक भी सोचा कि उसकी पूजा सदैव इस भावना से की जानी चाहिए कि वह सपनों की देवी है। जिसे पुष्प तो अर्पित किया जा सकता है किंतु अपनी उँगलियों के स्पर्श से उसे कलुषित बनाना पाप है। इस संदर्भ में दिनकर की 'नारी' कविता की पंक्तियाँ उद्धत की जा सकती हैं–

पुरुष पंखुड़ी को रहा निहार, अयुत जन्मों से छवि पर भूल
आज तक जान न पाया नारी! मोहिनी इस माया का मूल!
न छू सकते जिसको हम देवि! कल्पना वह तुम अगुण, अमेय
भावना अंतर की वह गूढ़, रही जो युग-युग अकथ, अगेय।[3]

पिछले सौ वर्षों में जिस वैचारिक आंदोलन ने नारी के उत्कर्ष को सशक्त किया उसके तीन सोपान दिखाई देते हैं। पहले तो नारी के प्रति सहानुभूति जगी तब नर-नारी समानता के भाव जगने लगे और तीसरे सोपान पर पहुँचकर नारी विद्रोहपूर्वक अपने अधिकार माँगने लगी।

कवि श्यामनारायण पांडेय कहते हैं कि भारतीय नारियों का इतिहास सदैव निर्भय साहसी जीवन व्यतीत करनेवाला रहा है। वे पुरुष की महत्ता और नारी की महत्ता के बारे में 'जौहर' की भूमिका में लिखते हैं, 'हल्दीघाटी लिखकर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीर पुरुष का आदर्श रखा और 'जौहर' लिखकर एक भारतीय सती नारी का। इसलिए नहीं कि कोई छंदों के प्रवाह में झूम उठे, बल्कि इसलिए कि भारतीय पुरुष 'प्रताप' को समझे और भारतीय नारियाँ 'पद्मिनी को पहचाने।'[11] वे अपने 'जौहर' में लिखते हैं कि आदर्श पतिव्रता अपने पति के दुश्मन से बदला लेकर ही दम तोड़ती है–

रह सकी न रानी कातर, साहस उसमें भर आया।
उस पतिव्रता के तन में, सौ रवि का तेज समाया।[4]

नारी सम्मान की भावना

रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में नारी को पूजनीय और सम्मान भरा स्थान रहा है। उन्होंने अपने काव्य में नारी के विविध पहलुओं का चित्रण किया है। भारतीय संस्कृति में नारी को आदिशक्ति, शक्तिरूपा, देवी मानकर उसकी शालीनता, प्रेरणा, निर्भयी, साहसी, अर्धांगिनी, रक्षणीय, कुलवधू, वात्सल्यमयी तथा वीरांगना रूपों में चित्रित किया है। नारी संसार का भार सँभालती है। हर युग में उसके कर्त्तव्य के सबूत दिखाई देते हैं लेकिन हर युग में नारी को दबाने का प्रयास हुआ है। नारी को पुरुष के बराबर का दर्जा न देकर उस पर

अन्याय-अत्याचार करके उसके साथ मारपीट की घटनाएँ आज भी दिखाई देती है।

कवि रामधारीसिंह दिनकर ने नारी के विविध रूप अंकित किए हैं। उन्होंने नारी को पत्नी, पतीता, देवी, माता आदि के रूपों में देखने का प्रयास किया है। कवि ने नारी के आदर्श रूपों का समर्थन किया है। उन्होंने नारी को ज्योति की कला और एक दिव्य विभा के रूप में देखा है। उन्होंने नारी को प्रेरणा शक्ति मानकर उसका सम्मान किया है। वह संसार में अनमोल है। कवि 'नारी' में लिखते हैं–

तिमिर में ज्योति-कली को देख, सुविकसित, वृत्तहीन, अनमोल
हुआ व्याकुल सारा संसार, किया चाहा माया का मोल।[5]

नारी को उसका गौरव दिलाने में कवि दिनकर सतत प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने 'नारी' कविता में नारी की महत्ता को अंकित करते हुए लिखा है–

न छू सकते जिसको हम देवी, कल्पना वह तुम अगुण, अमेय
भावना अंतर की वह गूढ़, रही जो युग-युग अकथ, अगेय।[6]

कवि श्यामनारायण पांडेय कहते हैं कि भारतीय नारियों का इतिहास सदैव निर्भय साहसी जीवन व्यतीत करनेवाला रहा है। वे पुरुष की महत्ता और नारी की महत्ता के बारे में 'जौहर' की भूमिका में लिखते हैं, 'हल्दीघाटी लिखकर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीर पुरुष का आदर्श रखा और 'जौहर' लिखकर एक भारतीय सती नारी का। इसलिए नहीं कि कोई छंदों के प्रवाह में झूम उठे, बल्कि इसलिए कि भारतीय पुरुष 'प्रताप' को समझे और भारतीय नारियाँ 'पद्मिनी को पहचानें।'[7] वे अपने 'जौहर' में लिखते हैं कि आदर्श पतिव्रता अपने पति के दुश्मन से बदला लेकर ही दम तोड़ती है–

रह सकी न रानी कातर, साहस उसमें भर आया।
उस पतिव्रता के तन में, सौ रवि का तेज समाया।[8]

कवि कहते हैं कि भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी श्रद्धा की मूर्ति है। पराई स्त्री के प्रति आदर, मातृभाव तथा श्रद्धा होनी चाहिए। कवि ने 'शिवाजी' में एक प्रसंग का चित्रण किया है। इसमें युद्ध के दौरान सैनिकों के हाथ में कल्याण दरबार की पुत्र-वधू हाथ लग जाती है लेकिन राजा शिवाजी उस रूपवती रमणी को अभय देकर उसे परिवार में ससम्मान पहुँचाते हैं। कवि लिखते हैं–

सचमुच यह नारी आँखों में, बरजोरी बस जाएगी
जिसे देख भर देगी क्षण, उस पर मधुरस बरसाएगी।
लेकिन दिव्य रूप के भीतर, झाँक रही है माँ मेरी
छवि रक्षा के लिए भवानी, सदा दे रही है फेरी।[9]

नारी की वात्सल्यमयी भावना

कवि दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में वात्सल्यभाव का चित्रण हुआ है, लेकिन श्यामनारायण पांडेय के काव्य से अधिक दिनकर के काव्य में वात्सल्य भाव अधिक दिखता है। दिनकर की नारी भावना में पत्नीत्व की अपेक्षा मातृत्व की गरिमा को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। भारतीय मान्यता के अनुसार नारी पति और पुत्र के माध्यम से ही समष्टि को अपना योगदान देती है। नारी का मातृत्व ही उसे जीवन में सार्थकता देती है। नारी के

जीवन की तपस्या का फल ही मातृत्व एवं वात्सल्य होता है। कवि के काव्य 'रसवंती' में नारी का मातृत्व रूप ही निखरता है। लोकमंगल की उज्ज्वल धारा आँचल से आँखों में दुग्ध धवल वात्सल्य प्रस्तुति, सदन में शरमाती माँ का खिल उठना कितना अद्वितीय लगता है। कवि लिखते हैं–

तुम्हारे अधरों का रस-प्राण, वासना तट पर पिया अधिर।
अरी ओ माँ, हमने है पिया, तुम्हारे स्तन का उज्ज्वल क्षीर।[10]

नारी के लिए पति-धर्म से बढ़कर मातृत्व धर्म है लेकिन क्रूर समाज उस मातृत्व धर्म का शोषण करने से बाज नहीं आता। नारी अपने को संकट में डालकर भी मातृत्व गौरव की रक्षा करती है–

हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर
दो बिंदु अश्रु के गिरे दृगों से चूकर
बेटे का मस्तक सूँघ, बड़े ही दुख से
कुंती लौटी कुछ कहे बिना ही मुख से।[11]

कवि श्यामनारायण पांडेय के काव्य में वात्सल्य भावनापूर्ण रचनाएँ मर्यादित हैं लेकिन प्रसंगानुरूप उन्होंने वात्सल्यभाव का बड़ा ही अनूठा वर्णन अपने काव्य में किया है। अपनी दोनों जीवन-संगिनियों से कवि ने वात्सल्य भाव को भी ग्रहण किया है। उनके इस भाव का प्रतिबिंब उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दिखता है। कवि 'शिवाजी' काव्य में कहते हैं कि माँ अपने बच्चे को जन्म देने की पीड़ा सहती है उसके प्राण निकल जाते हैं लेकिन वह बच्चे को जन्म देती है उसकी वेदना एवं दु:ख में मातृत्व की भावना दिखती है–

तड़प रही थी आकुल जैसे, निकल रहे हों प्राण
जननी को कितना दु:ख होता, क्या जाने संतान।[12]

कवि पांडेय कहते हैं कि हर माँ को अपने वात्सल्य का मुँह देखकर उसका जीवन सफल हो जाता है। इसका अहसास होता है कवि कहते हैं–

पूरी हुई लालसा माँ की, देख लाल सा लाल
पुत्र जन्म से ही होता है, नारी-अंक निहाल।[13]

नारी का पत्नी रूप

कवि रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में नारी के पत्नी के विविध रूपों के उदाहरण मिलते हैं। पार्वती सती, अनुसया एवं सीता इसके भव्य रूप हैं। हमारी संस्कृति में पति परमेश्वर के समान माने जाते हैं। सामाजिक मान्यताओं के अनुसार पतिव्रता की धारणा हमारे देश का उच्चादर्श रहा है। दिनकर के 'उर्वशी' काव्य की सुकन्या एक आदर्श पतिव्रता नारी है। इसमें उन्होंने स्वच्छंद प्रेम का चरमोत्कर्ष दिखाया है परंतु पतिव्रता नारी के आदर्श की भी उन्होंने कम प्रतिष्ठा नहीं की है। नारी अपना सर्वस्व जीवन किसी एक व्यक्ति को देकर उसके साथ आजीवन बँध जाती है। तब वह पत्नी का पूरा धर्म निभाती है।

सती, साध्वी, पत्नी को अपने पति पर गर्व होता है चाहे वह जैसा भी हो। सुकन्या को भी अपने पति पर निस्सीम गर्व है, वह चित्रलेखा से कहती है, 'किंतु चित्रलेखे! मुझको अपने महर्षि भर्ता पर ग्लानि नहीं, निस्सीम गर्व है।'[13] आदर्श पतिव्रता पत्नी एवं पत्नीव्रत पति दोनों के जीवन

इस प्रकार माने गए हैं जैसे एक वृक्ष की डाली पर दो फूल खिले हुए हों, जिनका उद्देश्य जीवन-जगत को एक-दूसरे का पूरक बनकर सुवासित करना हो। दिनकर के आदर्श पतिव्रता नारी का यही मूल संदेश अनुकरणीय है कवि लिखते हैं–

एक-दूसरे के उर में हम ऐसे बस जाते हैं,
दो प्रसून एक ही वृंत्त पर जैसे खिले हुए हो।
फिर रह जाता भेद कहाँ पर शिशिर, घाम, पावस का?
एक संग हम युवा, संग ही संग वृद्ध होते हैं।[14]

कवि श्यामनारायण पांडेय ने मानव जीवन में दांपत्य का बड़ा महत्त्व बताया है। उसके बिना मानव का विकास संभव नहीं है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के अनुकूल जीवन का सुंदर निरूपण किया है। 'हल्दीघाटी' काव्य में महाराणा प्रताप के साथ उनकी पत्नी तथा दुधमुँही बच्ची ने भी हँसते-हँसते वनवास स्वीकार किया–

राणा ने मुकुट नवाया, चलने की की तैयारी
पत्नी शिशु लेकर आगे, पीछे पति वल्कल-धारी।[15]

कवि अपने काव्य 'जौहर' में कहते हैं कि रानी पद्मिनी पति के लिए सती जाने के लिए तैयार होती है। कवि लिखते हैं–

और विधि से कह, किसी को, रूप दे तो शक्ति भी दे!
पति मिले तो पति चरण में, भाव भी दे, भक्ति भी दे।[16]

प्रेमिका के रूप में नारी

कवि दिनकर ने 'उर्वशी' की भूमिका में पुरूरवा और उर्वशी शब्दों का अर्थ दिया है, वे लिखते हैं, 'उर्वशी शब्द का कोशगत अर्थ होगा, उत्कट अभिलाषा अपरिमित वासना, इच्छा अथवा कामना आदि। पुरूरवा शब्द का अर्थ है–वह व्यक्ति जो नाना प्रकार का रण करे, नाना ध्वनियों से आक्रांत करे।'[17] कवि दिनकर ने नर और नारी के प्रति कहा कि ऐसी कोई तो भी शक्ति है जो उन्हें अलग रहने नहीं देती और जब वह मिलते हैं तब भी उनके भीतर किसी ऐसी तृषा का संचार करती है। जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है। कवि कहते हैं कि स्त्री की सहजता, कोमलता और सौंदर्य पुरुष को आकर्षित करते हैं तो पुरुष का पौरुष, शौर्य, आत्मविश्वास और अहं नारी के लिए आकर्षण का केंद्र होते हैं। उर्वशी उस समय पूर्ण मानवी तथा प्रेमिका के रूप में प्रकट होती है जब वह पुरूरवा के उपर्युक्त गुणों में आकर्षित हो हृदय समर्पण कर देती है। वह पुरूरवा से कहती है–

सो तो मैं आ गई, किंतु यह वैसा ही आना है
अयस्कांत ले खींच आयस को जैसे निज बाँहों में
पर, इस आने में किंचित् भी स्वाद कहाँ उस सुख का
जो सुख मिलता उन मनस्विनी वामलोचनाओं को
जिन्हें प्रेम से उद्वेलित विक्रमा पुरुष बलशाली
रण से लाते जीत या कि बल-सहित हरण करते हैं।[18]

कवि श्यामनारायण पांडेय के काव्य में भी नायिका के प्रेम रूप का चित्रण हुआ है लेकिन उनके काव्य में दिनकर से नगण्य दिखाई देता है। दांपत्य प्रेम-सबंधी उनके काव्य में प्रेम का

चित्रण मिलता है। उनके प्रेम काव्य का आलंबन है पुरुष और स्त्री। उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रेम के आलंबन के प्रति अपनी सरल, मार्मिक और कारुणिक प्रणयाभिव्यक्ति की है। अपने प्रेम के आलंबन अपनी प्रिया को कवि देवी, दुर्गा, रानी आदि नामों से संबोधित करते हैं। वे लिखते हैं–

देवी, दुर्गा श्री की श्री, तुम आदिशक्ति हो रानी।
तुमसे ही नवजीवन पाती, शैशव-जरा-जवानी।[19]

वह अपने प्रियतम की मनोहर मुस्कान पर किस तरह से छा जाती है वह अपने प्रियतम के चरणों की पूजा में ही सब-कुछ मानती है। कवि लिखते हैं–

बनकर मृदु-मुसकान मनोहर, अधरों पर छा जाऊँ
आओ प्रियतम, फूल बनूँ, मृदु चरणों पर चढ़ जाऊँ।[20]

राष्ट्र-भक्ति में नारी का योगदान

कवि दिनकर और श्यामनारायण पांडेय ने अपने काव्य में नारी के बलिदान के साथ क्रांतिकारिणी एवं रणरागिनी रूपों का भी चित्रण किया है। पुरुष के बराबर रणसंग्राम में खुद को न्यौछावर करना और नारी की ओजस्विता का चित्रण दोनों कवियों के काव्य में दिखाई देता है। आदिकाल से लेकर आज तक नारी ने पुरुष जाति के द्वारा अनेक प्रकार के अपमानों को सहन किया है। हर वस्तु एवं भाव को एक सीमा होती है लेकिन मानव ने नारी के प्रति किए अपमानों की सीमा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पुरुष ने नारी को हर बार प्रताड़ित किया और पशु जैसा नारी के प्रति व्यवहार किया। आखिरकार नारी भी अपने आंतरिक वीरत्वमय रूप को कब तक छिपाएगी। अंत में उसे रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय जैसे श्रेष्ठ ओजस्वी समर्थक मिले और उन्होंने नारी के गुप्त क्रांतिकारी रूप को समाज के सामने चित्रित किया। राष्ट्रकवि दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में नारी भावना के अनेक रूपों का उत्कर्ष दिखाया है। नारी अनेक भावनाओं से स्वयंपूर्ण है परंतु इन सभी भावनाओं में सबसे उज्ज्वल भावना स्वतंत्रता-सबंधी देश-प्रेम से संबधित है। इन कवियों का समस्त जीवन राष्ट्र, देश के प्रति न्यौछावर हो गया है। वह अपने काव्य में नारी का देश के प्रति प्रेम की भावना का चित्रण किए बिना कैसे रह सकते हैं। हमारे देश में ऐसी अनेक नारियाँ हुई हैं जिन्होंने भारत-माता स्वतंत्रता के सम्मान में अपने प्राण हँसते-हँसते न्यौछावर कर दिए हैं।

दिनकर के काव्य में चित्रित नारी की भावना भी राष्ट्र-प्रेम से प्रभावित है। देश की रक्षा के लिए दिनकर के काव्य की नारियाँ शृंगारिक साज-सज्जा को त्यागकर वीरमाता का रूप धारण कर लेती है। अपनी देश की नारियों के लिए दिनकर अपने 'रास की मुरली' काव्य के माध्यम से आवाहन करते हैं–

साज-शृंगार? छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,
रास की मुरली रही पुकार, अरी भोली मानिनि! इस रात,
विनय-आदर का नहीं विधान, अनामंत्रित अर्पण कर देह
पूर्ण करना होगा बलिदान।[21]

भारत की आदर्श माता अपने बेटे 'शिवजी' को सबक सिखाती है कि बेटा मुझसे पहले जन्मभूमि का ख्याल रखना। अपने देश जन्मभूमि के प्रति नवयुवकों में गौरव, उत्साह पैदा करते रहना। श्यामनारायण पांडेय कृत 'शिवाजी' में वीरांगना जीजाबाई अपने बेटे शिवाजी को भारत की

स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करती है–

जिस दिन लेगी साँस मुक्ति की, भारत की संतान
लाल उसी दिन पूरे होंगे, मेरे सब अरमान।
पुत्र मुझे भी पुत्रवती, होने का होगा हर्ष
माँ बेटे का यश गाएगा, सारा भारतवर्ष।[22]

काव्य में एक आदर्श नारी अपने प्रियतम से सच्चा प्रेम बलि होने का पाठ सिखाता है। जब देश पर युद्ध का संकट छाया रहता है तब भारतीय नारी अपने पति प्रियतम को कहती है कि यह समय मेरा शृंगार देखने का तथा रंगरंगेलियाँ मनाने का नहीं बल्कि धरती-माँ की रक्षा करने का है। 'आरती' काव्य में कवि ने यही भाव प्रकट किए हैं–

प्रियतम चलो चलें उस पार, देखो मत मेरा शृंगार
ले लो हाथों में तलवार, करना है माँ का उद्धार।[23]

निष्कर्ष

इस प्रकार कवि रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय ने नारी के अनेक रूपों का चित्रण किया है। उन्होंने नारी के विविध रूपों को अपनाते हुए अपनी संपूर्ण श्रद्धा एवं आस्था उसके मातृत्व में ही व्यक्त की है। उन्होंने अपने काव्य में नारी का वात्सल्यमयी रूप नारी का मान सम्मान, नारी की 'वसुवैध कुटुंबकम्' की भावना में पूरा समाज एवं राष्ट्र को जोड़ने की ताकत है। काव्य में उसका पत्नी रूप तथा प्रेमिका रूप भी चित्रित किया है। उन्होंने अपनी काव्यकृतियों में नारी अद्‌भूत एवं अलौकिक शक्ति संपन्न एवं सौंदर्यमयी मानव-जीवन को समुन्नत बनानेवाली प्रेरणादाई माना है। उसे पुरुष के अभावों को दूर करनेवाली अपने असीम प्रेम के द्वारा पुरुष के जीवन को तृप्ति प्रदान करनेवाली तथा कष्टों को हरनेवाली के रूप में चित्रित किया है। कवियों ने नारी के अलौकिक गुणों का चित्रण करते हुए उसके महत्व का प्रतिपादन किया है। उनकी नारी भावना भारतीय आदर्श के अनुरूप है। उन्होंने स्त्री को उपभोग की वस्तु न समझकर अपने पति के साथ समाजरक्षक तथा देशरक्षक की जिम्मेदारी सँभालनेवाली वीरांगना के रूप में तो कभी माता, प्रेमिका एवं पत्नी के रूप में मानकर उसका कर्त्तव्य गौरवान्वित किया है। श्यामनारायण पांडेय की तुलना में रामधारीसिंह दिनकर का नारी रूपों का चित्रण अत्यंत दिव्य एवं भव्य है। दिनकर के काव्य में नारी के सभी रूपों का विस्तार से चित्रण मिलता है।

संदर्भ

1. प्रतापचंद्र जैसवाल, राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, (समीक्षा लोक कार्यालय, आगरा, प्रथम 1976 ई॰), पृ॰ 48
2. डॉ॰ चंद्रशेखर जैन, राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला, पुस्तक सदन, जयपुर, संस्करण 1973 ई॰, पृ॰ 190
3. रामधारीसिंह दिनकर, रसवंती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011 ई॰, पृ॰ 99
4. डॉ॰ सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, संस्करण 1963 , पृ॰ 186
5. रामधारीसिंह दिनकर, रसवंती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011 ई॰, पृ॰ 96
6. वही, पृ॰ 99
7. डॉ॰ सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, संस्करण 1963, पृ॰ 187
8. श्यामनारायण पांडेय, जौहर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2012 ई॰, पृ॰ 15

9. श्यामनारायण पांडेय, शिवाजी, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, संस्करण 1970 ई॰, पृ॰ 94
10. रामधारीसिंह दिनकर, रसवंती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011 ई॰, पृ॰ 98
11. वही, पृ 245
12. श्यामनारायण पांडेय, शिवाजी, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, संस्करण 1970 ई॰, पृ॰ 6
13. वही, पृ॰ 8
14. रामधारीसिंह दिनकर, उर्वशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2018 ई॰, पृ॰ 107
15. श्यामनारायण पांडेय, हल्दीघाटी, इंडियन प्रेस प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद, संस्करण 2014 ई॰, पृ॰ 182
16. श्यामनारायण पांडेय, जौहर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2012 ई॰, पृ॰ 170
17. रामधारीसिंह दिनकर, उर्वशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2018 ई॰, भूमिका, पृ॰ 08
18. वही, पृ॰ 53
19. श्यामनारायण पांडेय, आरती, आदर्श पुस्तक भवन काशी, संस्करण 2003, पृ॰ 37
20. वही, पृ॰ 53
21. रामधारीसिंह दिनकर, रसवंती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011 ई॰, पृ॰ 106
22. श्यामनारायण पांडेय, शिवाजी, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, संस्करण 1970 ई॰, पृ॰ 11
23. श्यामनारायण पांडेय, आरती, आदर्श पुस्तक भवन काशी, संस्करण 2003, पृ॰ 90

Mob. 9960345194
Emai basmath2014@gmail-com

 ISSN 0975-735X

वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में व्यक्त सामाजिक समस्याएँ

डॉ॰ उत्तम लक्ष्मण थोरात
आदर्श कॉलेज, विटा

वीरेंद्र जैन द्वारा लिखित 'डूब' उपन्यास में विकास प्रक्रिया के तले दबे ग्रामीण जीवन की त्रासदी का चित्रण पाया जाता है। गोदान और मैला आँचल के बाद भारतीय ग्राम जीवन का शासन और समाज द्वारा किए गए सुनियोजित दमन और शोषण का दस्तावेज है। 'डूब' उपन्यास का कथानक बुंदेलखंड अंचल पर केंद्रित होते हुए भी हमारे देश के सच और वर्तमान को उजागर करता है। प्रस्तुत उपन्यास में एक तरफ किसान जीवन की त्रासदी को दिखाया गया है, तो दूसरी ओर राजनीतिक हथकंडे को दिखाया गया है। वीरेंद्र जैन द्वारा लिखित 'डूब' उपन्यास में भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को दिया मताधिकार, स्त्री-पुरुष समानता, व्यक्तिगत आजादी, समता, भूमि अधिग्रहण संबंधी अधिकार के प्रति जागरूकता का स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आज दलितवर्ग अपने अधिकार के संबंध में सतर्क हो रहा है। उच्चवर्ग दलितवर्ग को समान अधिकार नहीं दे रहा है। अगर कोई दलित युवक अधिकार की बात करता है तो उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। सरकार विकास के लिए किसानों को अँधेरे में रखकर जोर-जबरदस्ती भूमि अधिग्रहण करती है तो यह एक तरह से अन्याय है। हमारे देश के संविधान में महिलाओं को काफी अधिकार देने के बावजूद भी उसे भोगवस्तु माना जाता है। स्त्री गलती न होकर भी दोषी की अपेक्षा पीड़िता ही सजा भोगती है। इज्जत के डर से यही मामले पुलिस थाने तक नहीं पहुँचते हैं। इस प्रकार वीरेंद्र जैन ने 'डूब' उपन्यास के माध्यम से भ्रष्ट व्यवस्था का पर्दाफाश किया है। प्रस्तुत उपन्यास आज के परिवेश में अधिक प्रासंगिक है। विकास के नाम पर किसानों का विस्थापन जैसी समस्या प्रस्तुत उपन्यास का भयावह रूप सामने आया है। इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में वीरेंद्र जैन ने सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है।

भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजकीय अधिकार प्रदान किए हैं। किसी देश के समाज का स्वास्थ्य ठीक रहने के लिए मानवाधिकार का होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी है, वह जीवन की विविध समस्याओं और परिस्थितियों सें प्रभावित होता रहता है।'[1] सामाजिक समस्याओं को चित्रित करना उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य रहता है। वीरेंद्र जैन द्वारा लिखित 'डूब' उपन्यास में विकास प्रक्रिया के तले दबे ग्रामीण जीवन की त्रासदी का चित्रण पाया जाता है। गोदान और मैला आँचल के बाद भारतीय ग्राम जीवन का शासन और समाज द्वारा किए गए सुनियोजित दमन और शोषण का दस्तावेज है। डूब उपन्यास का कथानक बुंदेलखंड अंचल पर केंद्रित होते हुए भी हमारे देश के सच और वर्तमान को उजागर कर जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में एक तरफ किसान जीवन की त्रासदी को दिखाया गया है, तो दूसरी ओर राजनीतिक हथकंडे को दिखाया गया है। जीवनमूल्य और मानवीय अधिकार व्यक्ति एवं समाज को प्रतिष्ठा देते हैं। यही मानवतावादी अधिकारों को कुचलने का कार्य

उपन्यासकार वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में चित्रित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास भारतवर्ष में आधुनिकीकरण के नाम किए जानेवाले प्रयोगों की शिकार ग्राम संस्कृति की त्रासद कथा है।

मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश की सीमा पर बेतवा नदी के किनारे पहाड़ी अंचल में बसे लडैई गाँव के मतलबी साहूकार, जनप्रतिनिधि तथा अफसरशाही से त्रस्त तथा मानव अधिकारों से वंचित लडैईवासियों की दुरावस्था एवं गतिविधियाँ उपन्यास का कथासूत्र है। विस्थापित होनेवाले ग्रामीणों का ठाकुरों और साहूकारों द्वारा शोषण का चित्रण इस उपन्यास का विषय है। अज्ञान, गरीबी, साहूकारी, जमींदारी, मनमौजे अधिकारी और उदासीन सरकार के बीच में फँसी कृषि एवं ग्राम संस्कृति की पीड़ा प्रस्तुत करना उपन्यास का उद्देश्य है।

'डूब' उपन्यास में तीन तरफ पहाड़ों से और एक तरफ बेतवा नदी से घिरे लड़ाई गाँव में सरकार बाँध बनवाना चाहती है। सरकार बाँध बनवाने के नाम पर ग्रामीण लोगों को उचित प्रबंध किए बिना विस्थापित करना चाहती है दूसरी ओर जमींदार ठाकुर देवीसिंह माते को भावुक बनाकर किसानों से वोट प्राप्त करना चाहते हैं तो बानियों को मोती साव के खिलाफ उकसाते हैं। प्रधान, प्रांतीय तथा एम॰पी॰ के चुनाव के समय सत्ता, नेता पक्ष, विपक्ष जैसी बातों से अनभिज्ञ लडैईवासी किसान खुद के मताधिकार का प्रयोग अहिर किसान नेता माते के मतानुसार ही करते हैं। अत: इसका अर्थ स्पष्ट है कि लडैईवासी किसान खुद की मर्जी के अनुसार अपना प्रतिनिधि नहीं चुन सकते। जनतंत्रीय व्यवस्था मजबूत होने की अपेक्षा अंदर से कमजोर होने का कारण शक्तिवान लोग नागरिकों को अपने मताधिकार की शक्ति से वाकिफ नहीं होने देते हैं। अगर हर मतदाता स्वतंत्र रूप से विचार करके मताधिकार का प्रयोग करेगा तो सही अर्थ में जनता के प्रतिनिधि चुने जाएँगे ।

आज भी उच्चवर्ग दलितवर्ग को सहजता से मानवीय अधिकार नहीं दे रहा है। अगर कोई सचेत दलित युवक अधिकार की बात करता है, तो उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। 'डूब' उपन्यास में चित्रित अट्टू साव के चमार जाति का घूमा ठाकुर देवीसिंह को घास कटाई की मजदूरी हररोज माँगता है। चमार जाति के मजदूर अपने अधिकार हेतु शोषक देवीसिंह के खिलाफ आवाज उठाते हैं तो देवीसिंह उनके साथ मारपीट करते हैं और घूमा के भाई बसोरे का कत्ल करते देते हैं। ठाकुर देवीसिंह के रहन-सहन से स्पष्ट होता है कि स्वातंत्र्योत्तरकाल में भी अपने पूर्वकाल के ठाट के अनुसार रहनेवाले उच्चवर्गीय लोग विरोध करनेवालों का अधिकार हनन करते हैं।

सरकार किसानों को अँधेरे में रखकर जोर-जबरदस्ती से भूमि अधिग्रहण करती है तो यह एक तरह का मानव अधिकार का हनन है। 'डूब' उपन्यास का कथासूत्र ही लडैई के विस्थापित लोगों की करुण कहानी है। बाँध परियोजना हेतु सरकार भूमिअधिग्रहण योजना आरंभ करती है तो गाँववाले चकित होते है–'हमसे बिना पूछे हमारी तबाही का फैसला ले लिया? ऐसा तो डाकू भी तो नहीं करते। वे धन जरूर लूटते हैं, पर घर से बेघर नहीं करते। वे तो अमीरों को सताते हैं।'[2] भूमि से निष्कासित करना तो कृषकों पर अन्याय है ही, पर भूमि का यथायोग्य मुआवजा न मिलना सरासर अन्याय है। सरकार लडईवासियों को सिर्फ खेतवाली भूमि का मुआवजा देती है। साहूकार सरकारी अधिकारी से मिलीभगत कर विस्थापितों को लूटते हैं। जब किसानों को मुआवजे की आधी रकम से भी कम रकम मिलती है तो माते नाराज होकर कहता है–'और जो दाम दिए उसमें से भी आधे झपट लिए, देने वाली हथेली नीचे रखवाई और माँगने वाली हाथ रखी ऊपर, यह

उल्टा चलन चलाया इसीलिए तो न देने वाले के हाथ में कुछ रह पाया न पाने वाले तक कुछ पहुँचा। सब का सब जा गिरा धरती पर। उस गिरे को चाट गए हजम कर गए घात में बैठे चतुर कुत्ते और सूअर।'[3] इस प्रकार किसान भ्रष्ट व्यवस्था का शिकार बन जाता है। उपन्यासकार डॉ॰ वीरेंद्र जैन ने विस्थापितों के अधिकार का हनन का चित्रण बखूबी से किया है।

अट्टू साव गाँववालों को बाँध योजना की जानकारी देते हैं। हमारे देश में सरकारी योजना की घोषणा होने के बाद योजना का प्रत्यक्ष परिचालन होने तक कई साल लगते हैं तब तक किसानों की दुरावस्था होती है। सरकारी योजना के लिए सरकार कानून का डर दिखाकर कम दाम से जमीन लेती है। मात्र विस्थापन के प्रश्न को नजरअंदाज करती है। परिणामत: लडैई गाँव के किसानों की अवस्था भिखारीनुमा जैसी होती है।

महिला अधिकार एवं स्त्री पुरुष समानता की बात नजरअंदाज कर दैहिक एवं मानसिक शोषण की शिकार स्त्री साहित्य का विषय रहा है। 'डूब' उपन्यास में वासनांध पुरुष की शिकार अक्कल नामक युवती की दुर्दशा का चित्रण मिलता है। कैलाश महाराज मंदिर में अक्कल की सहायता का लाभ उठाकर उसे जबरदस्ती भोगते हैं। मामला पुलिस थाने की अपेक्षा पंचायत में पहुँचता है, तो माते कैलाश के पिता से अक्कल का शिशु गोराबाई के पास देकर अक्कल की शादी अपने पोते से करते हैं। इससे स्पष्ट है कि पुरुष वासना के समाने स्त्री की भावना का विचार नहीं किया जाता। गलती न होकर दोषी की अपेक्षा पीड़िता ही सजा भोगती है।

स्वतंत्रता के बाद जिस योजना के कार्यान्वय के समय नागरिकों पर अधिक अन्याय हुआ वह नसबंदी योजना है। विवेच्य उपन्यास में नसबंदी योजना का कृषक-जीवन पर हुए परिणामों का चित्रण है। दो हजार नसबंदी कराने का आदेश प्राप्त हुए तहसीलदार हीरा साव के सामने काम के बदले में नसबंदी कराने के लिए पाँच सौ मर्द भेजने की शर्त रखते हैं। हीरा साव लड़ैई के सोलह वर्ष से पचास वर्ष तक के सभी पुरुषों को जमीन का पट्टा लिख देने का झूठा लालच दिखाकर उनकी नसबंदी कराते हैं। निर्मल साव भी सैकड़ों राऊतों की नसबंदी करवाते हैं और बदले में सात गाँवों का मिट्टी के तेल और शक्कर का कोटा प्राप्त करते हैं। अत: स्पष्ट है कि नौकरशाही सरकारी योजना के कार्यान्वय के समय मानवी अधिकार की ओर दुर्लक्ष करते हैं।

'डूब' उपन्यास में स्वार्थी साहूकार मोती साव, तुलसी कक्का, निर्मल साव, हलके साव तथा हीरा साव के शिकंजे में फँसे लड़ैईवासियों का चित्रण मिलता है।

खेती करना किसान के लिए जोखिम का काम है। खेती करते समय उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी किसान ने लगाए हुए पैसे भी खेती से नहीं मिलते तो दूसरी ओर साहूकार आधे से ज्यादा अनाज ले जाता है–'जो ही किसान के घर में अनाज पहुँचता है उसकी घरवाली उसे अच्छी तरह धो-बीनकर रखती है, पसीना सींचकर पैदा किए अनाज के दानों के साथ दुराव करने की वह कल्पना तक नहीं कर सकती। वह यह जानते हुए भी कि इसमें से ज्यादा अनाज साहूकार ले जाएगा।'[4] इस प्रकार साहूकार आता है और अनाज उठाकर ले जाता है। लड़ैई के किसान सालभर श्रम करते हैं पर साहूकारों का ऋण उन्हें पेटभर अनाज नसीब नहीं होने देता। गाँव के नंबरदार के खेत भी मोती साव के पास रेहन हैं। मोती साव अन्य साहूकारों की अपेक्षा आसान शर्तों पर ऋण देते हैं और धन बटोरते हैं। वे बाँध निर्माण के कारण लड़ैई गाँव के किसानों की हुई दुर्दशा का लाभ उठाते हैं। किसानों की भूमि सस्ते दाम पर खरीदकर ऋणग्रस्त किसानों के रुपए काटते हैं। विवेच्य उपन्यास में भ्रष्ट नौकरशाही में फँसे

अनपढ़ एवं भोले किसानों का चित्रण है।

निष्कर्ष

वीरेंद्र जैन द्वारा लिखित 'डूब' उपन्यास में भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को दिया मताधिकार, स्त्री-पुरुष समानता, व्यक्तिगत आजादी, समता, भूमि अधिग्रहण संबंधी के अधिकार के प्रति जागरूकता का स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आज दलितवर्ग अपने अधिकार के संबंध में सतर्क हो रहा है। उच्चवर्ग दलितवर्ग को समान अधिकार नहीं दे रहा है। अगर कोई दलित युवक अधिकार की बात करता है उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। सरकार विकास के लिए किसानों को अँधेरे में रखकर जोर-जबरदस्ती भूमि अधिग्रहण करती है तो यह एक तरह से अन्याय है। हमारे देश के संविधान में महिलाओं को काफी अधिकार देने के बावजूद भी उसे भोगवस्तु माना जाता है। इस प्रकार वीरेंद्र जैन ने 'डूब' उपन्यास के माध्यम से भ्रष्ट व्यवस्था का पर्दाफाश किया है। प्रस्तुत उपन्यास आज के परिवेश में अधिक प्रासंगिक है। विकास के नाम पर किसानों की विस्थापन जैसी समस्या के द्वारा प्रस्तुत उपन्यास का भयावह रूप सामने आया है।

संदर्भ

1. डॉ॰ सुनंदा पालकर, समतावादी उपन्यासकार, पृ॰ 145
2. डॉ॰ वीरेंद्र जैन, डूब, पृ॰ 108
3. वही, पृ॰ 242
4. वही, पृ॰ 25

Mob. 9960247499
uttamt1977@gmail-com

ISSN 0975-735X

साठोत्तरी हिंदी कविता में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रासंगिकता (नारी के विशेष संदर्भ में)

डॉ॰ आर॰पी॰ भोसले
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदीविभाग
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा

हिंदी साहित्य में बीसवीं शताब्दी के अंतर्गत 1060 के पश्चात के साहित्य के साठोत्तरी साहित्य कहा गया है। स्वातंत्रता प्राप्ति के पश्चात नारी को संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति हुई। उन अधिकारों की रक्षा हेतु आधुनिककाल की शिक्षित नारी प्रयत्नशील दिखाई देती है। शिक्षा के कारण नारी के ज्ञान की परिधि विस्तीर्ण हो चुकी है। अत: वह हर बात को तर्क के आधार पर टटोलती है। हिंदी साहित्य के आधुनिककालीन कवि उसके इसी रूप को वाणी प्रदान करते हैं। हिंदी साहित्य की साठोत्तरी कविता में कवियों की अपेक्षा कवयित्रियों ने अपनी बात को अधिक सुसंगत एवं स्पष्ट रूप से कहा है। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि अब नारी किसी भी स्त्री के ऊपर हो रहे अन्याय के खिलाफ एकजुट होकर खड़ी रहने के लिए तैयार है।

वर्तमानयुग के बदलते हुए समाज में शायद इंसान मूल्यहीन होता अनुभव हो रहा है। हमारे पुरखों द्वारा जिस समाज की नींव बनाई थी, उन मूल्यों को हम कहीं दूर छोड़ते जा रहे हैं। आधुनिककालीन कविता इसी अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को लेकर जन्मी और पनपी है और युगीनबोध को अभिव्यक्त करने वाली प्रमुख धारा रही है। आधुनिककालीन कविता प्रासंगिकता को अपनी महत्त्वपूर्ण शैली के रूप में प्रकट करती है। यह व्यवहार शायद अपने आपसे अभिव्यक्त हो जाना ही है। यह आधुनिककालीन हिंदी कविता की अहम् विशेषता भी कही जा सकती है। अनुभव होता है कि साहित्य हमेशा असामाजिक तत्त्वों का बहिष्कार करता आया है और भविष्य में भी करेगा। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता भी यही सृजनधर्म निभा रही है। उदारीकरण के कारण विश्व में जितने प्रकार के परिवर्तन आए, उससे मनुष्य जीवन का हर पक्ष प्रभावित होता रहा है। स्त्री की सृजनधर्मिता में विशिष्ट अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का होना सहज सुलभ है। स्त्री की विशेष और उत्कट अभिव्यक्ति में 'स्त्री मुक्ति' को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि स्त्री मुक्ति का तात्पर्य केवल सामाजिकता का नकार नहीं बल्कि आत्मसम्मान की बात को बड़ी जिम्मेदारी के साथ स्वीकारना है। आधुनिक कविता में अभिव्यक्त नारी अपनी स्वतंत्रता की केवल गुहार नहीं लगाती, बल्कि अपना हक मानते हुए दिखाई देती है।

समाज व्यवस्था के नाम पर जब स्त्री को दहलीज की मर्यादा में बाँधा गया तब भी उसने अपना कर्त्तव्य निभाया। शायद यह स्त्री की पहली पीढ़ी थी जो बेबाक अभिव्यक्त हो रही थी। किंतु नारी ने अपने घुटनभरे जीवन, प्रताड़ना, पीड़ा, परावलंबिता को नकारते हुए आधुनिक जीवनबोध को स्वीकार कर लिया है। अब वह केवल चूल्हे-चौके तक सीमित नहीं रही, बल्कि घर-गृहस्थी सँभालते हुए, उच्च सामाजिक पदों पर आसीन भी हुई है। हर काल में उसे रौंदा और

कुचला गया। कहीं अपमानित किया तो कहीं अपवित्र समझा। अब नारी इस घुटनभरे जीवन से ऊब चुकी है। आधुनिककालीन कविता नारी के इसी स्वर को प्रकट करते हुए विद्रोह करने के लिए सजग है। 'कोसों दूर' कविता में नारी का यही स्वर दिखाई देता है–

कभी साँसों का हार बनाया
कभी तन, धूप, दीप जलाया
कभी आँखों से आँसू लेकर
तुम्हारे मंदिर को धोया
जितना मुझसे हो सका, उतना मैंने किया।[1]

पुरुष प्रधान संस्कृति में कितनी ही सदियों से एक स्त्री, दूसरे स्त्री का दु:ख सहला रही है। ऐसा नहीं है कि पुरुषों द्वारा स्त्री की वेदना को प्रकट नहीं किया गया, किंतु वह अनुभवजन्य अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। वर्षों से स्त्री कभी पिता के लिए, कभी पति और कभी बच्चों के लिए खपती और मरती आई है किंतु उसका अपना इतिहास किसी ने न सुना है न सुनाया है। आधुनिककालीन नारी जुल्म तो सह रही है किंतु उससे बोध ग्रहण करते हुए, सँभलते हुए अपने-आपको अभिव्यक्त भी कर रही है। उसका यह रूप आधुनिक कवयित्री अनिता शर्मा 'दरवाजा' कविता के माध्यम से प्रकट करती हैं–

मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतनी ही खुलती गई।

आधुनिककालीन नारी सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक स्तर पर गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई नजर आती है। वर्तमान बाजारवादी दौर में आज भी उसका स्वतंत्र्य समाप्त करने का प्रयास भी किया जा रहा है। वह सजावट की वस्तु बनती जा रही है। एक स्थान पर विमला किशोर लिखती हैं–'आज की बाजारवादी मानसिकता ने बाहरी सजावट को उतना ज्यादा महत्त्व दिया कि स्त्री कहीं भोग के आगे निकल गई।'[2] पत्नी के रूप में जब कोई युवक लड़की को देखने जाता है, तब भी वह वस्तु के स्तर पर उसका निरीक्षण यों करता है, मानो वह बाजार की कोई वस्तु है। यहाँ पर उसकी मानसिकता, इच्छा, आकांक्षा आदि की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। लड़की देखने की रस्म का वास्तविक वर्णन करते हुए कवयित्री कहती हैं–

पर सब बेकार
कोई उसके रंग को निहारता
तो कोई लंबाई नापता
कोई उसे चलकर दिखाने को कहता
कोई साड़ी और सूट पहनकर बुलाता।

इसी कड़ी को आगे बुनते हुए आधुनिक कवयित्री 'प्रीति' नारी के अधिकारों की माँग करते हुए कड़े शब्दों में इसकी निंदा करती हैं, साथ ही स्वतंत्रता एवं समता के लिए पुकार करती हैं और मनुष्यता का धर्म निभाते हुए अपने हिस्से के सुख एवं अपने हिस्से के जीवन की माँग करती हैं–

हमें चाहिए अपने हिस्से की स्वतंत्रता
हमें चाहिए अपने हिस्से की समानता

 ISSN 0975-735X

उससे पेशतर विश्व में मनुष्यता में
कि हमें चाहिए अपने हिस्से का सुख
हमें चाहिए अपने हिस्से का जीवन।[3]

नारी को देवी का दर्जा देकर उसे पूजा-घर में स्थापित करके उसके नारी रूप के साथ अन्याय करने का चलन पुराना है। इसलिए वह अपनी जड़े और अपने हक को हासिल करने की वकालत के लिए रास्ते पर उतर आई है। वह अपनी कमजोरियों को हटाकर समाधान ढूँढना चाहती है। साठोत्तरी कविता का उक्त उदाहरण इस बात को प्रकट करता है–

वह जो मेरी देह है
यही सबसे बड़ी कारा है।

आज मीडिया में जो स्त्री प्रकट हो रही है, वह मात्र पुरुषी मानसिकता का विरोध नहीं करती, बल्कि नारी को जाग्रत कर अन्याय के खिलाफ खड़ी होने के लिए तैयार करती नजर आती है। साठोत्तरी कवयित्री वेश्याओं को बुरी नजर से देखनेवाले समाज एवं इनसे उत्पन्न नाजायज बच्चों के प्रति प्रतिक्रया देते हुए कहती है–

कौन है इसका पिता?
कौन है इसका जिम्मेदार?
यह समाज या इसके ठेकेदार
जो आदमी के खाल में पूरे भेड़िए।[4]

स्त्रियों का सामाजिक सम्मान एवं अस्तित्व इस बाजारवादी दुनिया में छलककर सामने आ रहा है। इसी कारण बेटी को पैदा करने में नकारा जा रहा है। दहेज, वर को ढूँढने की मशक्कत, बेटी पराया धन आदि मुहावरे इतने फिट हो गए हैं कि स्त्री के जन्म को नकारना एक फैशन सा हो गया है। स्त्री भ्रूणों की हत्या जिस अनुपात में हो रही है, कहना पड़ता है कि भविष्य में उसके पूर्ण अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़े हो सकते हैं। साठोत्तरी कविता में एक स्त्री भ्रूण इसी आशंका को प्रकट कर रहा है–

हम रह जाएँगी बस
कहानी और विचारों में
आनेवाला कल ढूँढेगा
हमको चाँद सितारों में।

नारी को भ्रूण की अवस्था में ही समाप्त कर दिया जाए। जन्म देने के पश्चात उस पर विभन्न प्रकार के जुल्म हों उसके अस्तित्व को नकारा जाए, लड़की अगर सिर का बोझ समझी जाए, तब उन्हें चाँद सितारों में ढूँढने के दिन जल्द ही आएँगे। आखिरकार नारी का होना ही सामाजिकता को बनाए रखने का जरिया है। तब उसका नकार क्यों? नारी की ओर देखने का नजरिया बदलना जरूरी है। वह प्रेम, अनुराग, वात्सल्य का प्रतीक है, जो मनुष्य को समाजशील बनाए रखता है। अगर स्त्री ही नहीं बचेगी, तब सामाजिक व्यवस्था नष्ट होगी। सृष्टि का अविरत चलने वाला चक्र थम सा जाएगा। इसलिए उसे एक वस्तु के रूप में देखना उचित नहीं है, ऐसा कहना भी अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा। पुरुषी मानसिकता का निषेध साठोत्तरी कविता कर रही है। इसी विशेषता को प्रकट करते हुए कवयित्री आकांक्षा यादव लिखती हैं–

पर कोई नहीं देखता

उसकी आँखों में
जहाँ प्यार है, अनुराग है
लज्जा है, विश्वास है।

'पुरुष का साथ पाने की इच्छा के साथ समाज को पुनः नए सिरे से सजाने का जज्बा नई सदी की कविता में दिखाई देता है।'[5] वहीं प्राचीन मान्यताओं को माननेवाली नारी से भ्रूण कन्या कहती हुई दिखाई देती है–

ठुकरा दो वो सब कुरीतियाँ
जड़ता से ग्रसित समाज की
बाधक जो मेरे
जीने के अधिकार की...

साठोत्तरी कविता में वर्णित नारी अपने जीने के अधिकार को कायम रखना चाहती है। समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की कुरीतियाँ बाधा उत्पन्न कर रही है, उनका वह विरोध करती है। जड़ता से ग्रसित समाज का एक अंग बनी नारी समाज को अपने ज्ञान और नारी तत्त्वों के माध्यम से गतिमान करना चाहती है। अनुभव हो रहा है कि समाज की जड़ता को नष्ट कर वह एक प्रबुद्ध समाज की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील है।

निष्कर्ष

नई सदी की साठोत्तरी हिंदी कविता में अभिव्यक्त नारी अपने स्वतंत्र, अस्मिता के लिए विद्रोह करती हुई नजर आती है। प्राचीनकाल से निरंतर उसका शोषण होता आ रहा है। आधुनिककाल में भी उसकी इस स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देता। केवल शोषण का स्वरूप बदलता हुआ नजर आ रहा है। जहाँ पहले उसका शारीरिक शोषण होता था, अब उसके साथ मानसिक और बौद्धिक शोषण हो रहा है। वर्तमान युग की नारी केवल अपने अन्याय से जूझती हुई नजर नहीं आती, बल्कि वह उसका विरोध करते हुए प्रकट होती है। हिंदी साहित्य की साठोत्तर कविता में नारी स्वतंत्रता का सशक्त स्वर मुखरित हो उठता है। यह स्वर जनचेतना बनकर समाज के हर वर्ग से प्रस्फुटित हो रहा है। नारी सृष्टि में समानता, न्याय, करुणा, एवं अस्मिता के रूप में प्रकट हो रही थी, वर्तमान युग में भी उसने अपने इस रूप को अबाधित रखा है। अब वह केवल जुल्म और पीड़ा सहने की मानसिकता से बाहर आई है, बल्कि वह अपने हक को भली-भाँति समझती है। वह शिक्षित है और अपने संवैधानिक अधिकारों की रक्षा हेतु सजग भी है। वह इतनी सक्षम है कि किसी भी प्रसंग में अपने अस्तित्व को बचाए रखते हुए उचित मूल्यों का निर्वाह करती है। हिंदी साहित्य के साठोत्तरी कवियों एवं कवयित्रियों ने उसकी अभिव्यक्ति स्वतंत्र्य को भली-भाँति प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1. प्रमोद कुमार शर्मा, कोसों दूर, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 112
2. विमला किशोर, रुकली, वाणी प्रकाशन, कानपुर, पृ॰ 78
3. तारासिंह, जितना मुझसे हो सका, साहित्य अकादमी प्रकाशन, वाराणसी, पृ॰ 134
4. सीमा सचदेव, नारी परीक्षा, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 195
5. मीरा गौतम, अंतिम दो दशकों का हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी प्रकाशन, वाराणसी, पृ॰ 129

अलका सरावगी के 'शेष कादंबरी' उपन्यास में चित्रित नारी विमर्श

जयश्री पांडुरंग चव्हाण
शोध छात्रा
डॉ॰ शहनाज महेमुदशा सय्यद
शोधनिर्देशक, हिंदी विभागाध्यक्ष
बळवंत कॉलेज, विटा

साठोत्तरी महिला साहित्यकारों ने अपने साहित्य में स्त्री के बदलते जीवन संदर्भ, बदलती मानसिकता तथा संघर्ष को विशेष स्थान दिया है। यह अस्तित्व, अस्मिता, समता और आत्मबोध के लिए संघर्षरत नारी की कहानी है। महिला उपन्यासकारों में अलका सरावगी का नाम अग्रगण्य स्थान पर है। अलका सरावगी के कथासाहित्य में नारी संबंधी एक नवीन जीवनदृष्टि और मूल्यबोध का परिचय मिलता है। अलका सरावगी का साहित्य निम्न, मध्य और उच्चवर्ग की नारियों के विविध रूपों से साक्षात्कार कराता है। नारी का अकेलापन, उपेक्षितता, दीनता, विवशता, अत्याचार, संघर्ष और अदम्य साहस का प्रमाण है। आपके साहित्य की विशेषता यह है कि वे स्त्री की प्रचलित, प्रसारित छवि को तोड़ती हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से पुरुषों द्वारा स्त्री पर किए गए शोषण के साथ स्त्री जीवन के अन्य पक्षों पर भी सोचने के लिए मजबूर करती हैं।

प्रस्तावना—उपन्यास हिंदी गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है। उपन्यास में जीवन की संपूर्णता का चित्रण होता है। मानव जीवन से जुड़े विभिन्न प्रसंगों को कथानक का आधार बनाकर उपन्यास का ताना-बाना बुना जाता है। प्रेमचंदपूर्व युग से लेकर प्रेमचंद उत्तर युग में हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। प्रत्येक युग में पुरुष उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में नारी का चित्रण किया है लेकिन प्रथमतः साठोत्तरी हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं की संख्या बढ़ने लगी। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों की चर्चा सर्वसामान्य मुक्त रूप से होने लगी है। आज की महिला लेखिकाओं ने अपनी अलग पहचान निर्मित की है; जहाँ अपनी पीड़ा और वेदना को कारुणिक ही नहीं तल्ख और पैनी अभिव्यक्ति दी वहाँ साहस, संघर्ष और विद्रोह सभी एक साथ मुखरित हो उठा है।

साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में आज का नारी लेखन गहरी संवेदना और जुड़ाव का द्योतक है। स्त्री जीवन परस्थितियों के दबाव में घर से बाहर आया है। भारतीय समाज भयानक असमानता, अशिक्षा, बेरोजगारी, जाति-प्रथा, अंधविश्वास जैसी समस्याओं से भरा पड़ा है। आज की नारी सभी क्षेत्रों में पुरुषों की बराबरी कर रही है। समाज में पुरुषों ने शारीरिक स्थिति का लाभ उठाकर जो नियम बनाए वह नारी समाज में पक्षपातपूर्ण रहे हैं। नारी पिता द्वारा रक्षित दान की वस्तु या राजाओं द्वारा अपहरण और अधिकार की संपत्ति मानी जाती रही है। अपनी परंपरागत छवि को

तोड़ते हुए आज नए-नए प्रश्नों के साथ नारी हिंदी उपन्यास विधा में चित्रित हुई है। आज की नारी संघर्ष करती है तथा अपने आपको परंपरागत नारी की तरह पुरुषों को सौंपने में ही धन्यता नहीं मानती।

परिवर्तनशील, उपभोक्तावादी, भूमंडलीकरण और तकनीकी के इस युग में स्त्री के जीवन में प्रर्याप्त अंतर आया है। बड़ी मात्रा में महिला कथाकार मुक्त रूप से लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन स्त्री उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्री के बदलते जीवन संदर्भों, बदलती मानसिकता, बिखरे रिश्ते, अकेलापन तथा संघर्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। यह अनुभूत भोगे हुए यथार्थ का चित्रण है। स्त्री होने की पीड़ा स्त्री ही जानती है। इस संबंध में राजकिशोर जी कहते हैं–'पुरुष लेखक कितनी भी संवेदनशीलता दिखाए वह स्त्री का वृत्तांत नहीं लिख सकता। स्त्री के पक्ष में लेखन पुरुष का आदर्शवाद है, जबकि अपने पक्ष में स्त्री का लेखन यर्थाथवाद है।[1]

साठोत्तरी महिला साहित्यकारों में कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, मुदृला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी आदि अनेक लेखिकाओं ने अपने साहित्य में नारी के विविध रूपों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। नारी को एक विशिष्ट मुकाम पर पहुँचाया है। साहित्य जगत में जानी-मानी महिला लेखिकाओं में अलका सरावगी का नाम बहुत ही आदर से लिया जाता है। 'कलिकथा : वाया बायपास', 'शेष कादंबरी', 'एक ब्रेक के बाद', जानकीदास तेजपाल मेनशन' आदि उपन्यास अलका सरावगी द्वारा लिखित हैं। 'कलिकथा : वाया बायपास' उपन्यास ने समकालीन हिंदी साहित्य में अपनी जबदस्त मौजूदगी दर्ज की है। साथ में महिला लेखन को अपनी सीमा तय करते हुए मजबूत किया है।

20वीं सदी के इतिहास और 21वीं सदी के वर्तमान में व्यक्ति, समाज और राजनीति की अनुगूँज सुनाई देती है। सविता नामक नारी के चित्रण से उपन्यास की शुरुआत होती है जिसमें अनेक नारी पात्रों का समावेश हुआ है। स्त्रियों के विचारों को कथा के माध्यम से प्रकट करने की कोशिश अलका जी ने की है। इस उपन्यास में नारी पात्रों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। रूबी, सविता, कादंबरी, सायरा, कम्मों, शीला, आभा जैन, शकुंतला, माया बोस, गौरी, श्यामा, फरहा, निवेदिता, मिसेज सूद जैसे नारी पात्र परंपरागत मूल्यों के साथ आधुनिक मूल्यों का भी बोध कराते हैं।

मर्यादा एक ऐसा भयानक शब्द है जो स्त्री को हर तरफ से डराने और बाँधकर रखने के लिए कारगर है, यह शब्द स्त्री को अनेक दु:ख व कष्ट होने के बावजूद भी उस जीवन में रहने के लिए मजबूर कर देता है, जिसमें दु:ख-दर्द और पीड़ा है, जिसे सहते हुए नारी सहनशीलता की मूर्ति बन जाती है। नारी जीवन समस्याओं का महासागर है और इस महासागार में कुछ बूँदें विचारों के अभाव की भी हैं। अलका सरावगी ने सविता के द्वारा नारी के इस सीमित सोच को दर्शाया है। यही सोच उसको मानसिक रूप से भी अपनी प्रगति को बढ़ाने की सही दिशा प्रदान नहीं करती है। जैसे–'उनके उम्मीद के ठीक मुताबिक लड़की टेबुल के नीचे निगाहें जमाएँ अपने हाथ की रेखाओं को देखती हुई उनके पहले प्रश्न का इंतजार कर रही थी। रूबी दी को जोर की चिढ़ हुई। इस लड़की से पाँच-सात बार मिल लेने के कारण वे इतना जान गई थीं कि यह लड़की कुछ भी कहने के पहले हमेशा प्रश्न पूछे जाने का इंतजार करती है और फिर इतना छोटा जवाब देती है कि उससे पूरी बात समझने के लिए कम-से-कम चार प्रश्न और करने पड़ें।'[2] वास्तव में नारी की इस सीमित सोच के कारण वह समाज है जिसमें वह पैदा होकर बड़ी होती है। रूबी के इस व्यवहारपूरक वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है–'जिस दुनिया में वह बड़ी हुई थी, वहाँ इस तरह की

कोई निजी बात, जिसको पूछने का कोई विशेष मकसद न हो किसी से पूछना अर्मायादित व्यवहार था।'[3] इस अर्मायादित व्यवहार से बचने और अपने को मर्यादित बनाए रहने के लिए वह इस सीमा में कैद रहती है जिसका निर्धारण समाज उसके लिए करता है।

रूबी भी घर-गृहस्थी के अंतर्द्वंद्व में फँसी दिखाई देती है। रूबी ने अपनी जिंदगी को एक नया मोड़ देने के लिए जब घर की चारदीवारी से बाहर कदम रखा था तब से आज तक ऐसा नहीं हुआ कि आदि गंगा का बेलीस पुल पार करने के बाद घर की तरफ जाते हुए उन्होंने घर गृहस्थी के अलावा किसी के बारे में कुछ सोचा हो। पुल पार करते ही उनकी दुनिया का वह हिस्सा जिसमें वे दूसरों के लिए जीती थीं एकदम कटकर अलग हो जाता है। यह पुल उनके लिए एक लैंडमार्क था, जो उनकी दुनिया में प्रवेश की सरहद को व्यक्त करता था। रूबी दी के जीवन से जुड़ा यह तथ्य नारी के जीवन की सीमा को रेखांकित करता है। इस सीमा में कैद नारी ही चरित्रवान है जो इस सीमा से बाहर आकर अपनी पहचान बनाने की कोशिश करती है उसे समाज चरित्रहीन मानता है। राजेंद्र यादव जी कहते हैं–'प्रारंभिककाल में नारी की भूमिका बैठक में होनेवाली बहसों में हिस्सा लेकर वापस रसोईघर और शयनघर तक सीमित थी। आज की नारी घर और बाहर के द्वंद्व में फँसी है, इसलिए आज की लेखिकाएँ स्वयं को अपनी दृष्टि से देखती हैं। वह वस्तु से व्यक्ति और फिर व्यक्तित्व बनती है लेकिन पुरुष लेखकों के द्वारा उन्हें विशिष्ट छवि प्रदान की गई है। उनकी रचनाएँ उससे असहमति और मुक्ति की चेष्टाएँ हैं। नारी लेखन आत्मप्रसंगों से जुड़ा है।'[4] आपका यह वक्तव्य आज के प्रसंगों में एकदम सटीक बैठता है।

'शेष कादंबरी' उपन्यास में अत्याचार और शोषण की वास्तविक एवं गहरी अनुभूति प्रकट करनेवाला चित्र उपस्थित होता है। इस उपन्यास की 'माया बोस' शोषण और अत्याचार पीड़ित स्त्री का जीता-जागता उदाहरण है जो अपने साथ हुए यौन शोषण को बताने के लिए दो साल लगाती है। ऐसे अनेक नारी पात्र समाज में उपलब्ध होते हैं जिनका करीबी रिश्तेदारों से शोषण होता है। इस उपन्यास में माया बोस कहती है–'आठ साल की उम्र में मेरा जीवन नष्ट किया उस आदमी ने, कोई और नहीं एकदम करीबी रिश्तेदार है वह, घर में रहनेवाला साँप। मैंने शादी कर ली तो साँप कौन पालेगा? और मुझे उसने विषकन्या बना दिया। रूबी दी, मैं क्या किसी के लायक रह गई?'[5] वर्तमानयुग में कुछ हद तक नारी अपने आपको सुरक्षित कराने में समर्थ बन रही है किंतु यह स्थिति सर्वत्र नहीं है। आज भी नारी विविध स्तरों पर असुरक्षित एवं भोग-विलास की वस्तु बनी है। वह इन जंजीरों को तोड़कर मुक्ति का प्रयास कर रही है किंतु समाज उसके इस प्रकार के व्यवहार को इतनी सफलता से स्वीकार कर पाएगा? इस संदर्भ में अपने मत प्रस्तुत करते हुए मृणाल पांडे कहती हैं–'नारीवाद पुरुषों का नहीं उसकी मानवीयता घटानेवाली उन मुखोटों का प्रतिकार करता है जो मर्दानगी के तौर पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहंमन्यता और उत्पीड़न-प्रकृति के अलावा कुछ नहीं है। नारीवाद लेखन की उल्लेखनीय प्रकृति के बावजूद नारी शोषण और संघर्ष के विविध आयामी स्वरूप में समाहित है।'[6] 'शेष कादंबरी' उपन्यास की सविता विवाह बंधन में बँधकर कुंठित जीवन, पति से यौन तृप्ति न हो पाने की पीड़ा चुपचाप सहती है। उपन्यास के अन्य नारी पात्र भी कमोबेश इस तरह के शोषण का शिकार हैं। प्रभा खेतान स्त्री चिंतन पर विचार प्रकट करते हुए कहती हैं–'स्त्री चिंतन का विषय है उसका जीवन और उस जीवन की समस्याएँ। नारीवाद का सही उद्देश्य दलन के अनुभवों की अभिव्यक्ति ही है।'[7] यह उपन्यास पढ़ने के बाद इसका वास्तविक आभास होता है।

घर-परिवार से उपेक्षित नारी को 'शेष कादंबरी' में चित्रित करते हुए सरावगी जी रूबी गुप्ता को प्रकट करती हैं। रूबी गुप्ता को जिन माता-पिता ने जन्म दिया उनके पास वह कभी रही नहीं, क्योंकि उसका पालन-पोषन करनेवाले माता-पिता अलग थे। रूबी को ग्यारह साल की उम्र की उस रात का स्मरण होने पर इस बात का अहसास होता है कि कमरे में मामा-मामी और माँ बैठी थी, तब मामी जी ने रूबी की माँ से कहा था–'बाई, आपके बच्चे हुए नहीं, आपने पैदा नहीं किए न, इसीलिए आपको मालूम नहीं के थप्पड़ मारकर भूखे बच्चे के सोने पर माँ को कितनी तकलीफ होती है।'[8] उस समय से ही रूबी मामा-मामी के पास उन्हीं के घर रहने लगी और इसी कारण रूबी माँ-बाप के प्यार के वंचित रह गई। उधर मामा-मामी ने उसे गोद तो ले लिया परंतु रस्मों-रिवाजों को तिलांजली देकर। जिसकी वजह से वह माँ-बाप से छूटकर मामा-मामी की कभी नहीं हो पाई। जिसकी वजह से उसे रिश्तेदार, समाज, जान-पहचान के सभी पाली हुए लड़की के नजरिए से देखने लगे। इतना ही नहीं घर के सदस्य भी उसे पाली हुई मानकर बासी बचा-खुचा ही खाने देने लगे। जैसे रूबी जबरदस्ती उन पर बोझ हो।

पढ़ी-लिखी और रईस परिवार में उत्पन्न होने पर भी नारी को ससुराल में अपमानित होना पड़ता है। शिक्षित होने के बावजूद भी उसे नौकरी के लिए घर से बाहर नहीं जाने दिया जाता। उसकी हर बात पर उसे ताने सुनने को मिलते हैं। मायके में होनेवाली रईसी की कीमत उसे बार-बार चुकानी पड़ती है। ससुराल में अपनी सास द्वारा रूबी दी हमेशा अपमानित होती है। क्योंकि वह पढ़ी-लिखी थी और उसके पास अपना पैसा था। 'सतपीढ़ियाँ शहाने' ने अपनी बेटी की विदाई करते समय दहेज के रूप में कुछ कागज सौंप दिए थे परंतु उसमें से रूबी के हस्ताक्षर बिना रुपए निकाल नहीं सकते थे। इसलिए रूबी दी कहती है कि 'ये औरत, तूने जब भी किसी भी कोने में पुरुष से अलग अपना कुछ बनाया है, तो तुझे इसकी कीमत देनी पड़ी है लेकिन तुम अपने इस पैसे को जो कभी तुम्हारा नहीं था और न कभी तुम्हारे हाथ में था, आखिर कितनी कीमत चुकाओगी?'[9] इसी पैसे के कारण रूबी दी को न कभी माँ का प्रेम मिला, न बेटी का, न सास का।

अलका सरावगी जी अनाथों को भी उपन्यास में स्थान देती हैं। समाज में अनाथ लड़कियों को बड़ा होने और जीवन जीने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनाथ कैसे बन जाती है परिवार होने के बावजूद भी। क्या इतनी बुरी होती है वह लड़की या फिर उसकी किस्मत। समाज का हर शक्ख उसे कितनी गिरी हुई निगाह से देखता है। सविता के द्वारा इसका स्पष्टीकरण करते हुए लेखिका कहती हैं–'इस लड़की में भला ऐसा क्या दोष है कि कोई इसे अपने साथ नहीं रखना चाहता, न पिता, न बड़े भाई-भाभी, न पति।'[10] इस तरह सभी परिवार वालों के बीच सविता अकेली ही है तथा अकेलेपन का जीवन जी रही है।

उच्च शिक्षित एवं पढ़ी-लिखी नारी को अलका सरावगी ने इस उपन्यास की नायिका 'रूबी गुप्ता' के माध्यम से प्रकट किया है। रूबी गुप्ता अभिजात्य मारवाड़ी परिवार की सत्तर वर्षीय नारी है जिसने समाज कार्य करने के लिए 'परामर्श संस्था' का निर्माण किया है। परामर्श संस्था के माध्यम से दुनिया की सताई हुई औरतों को उनका हक दिलाने की कोशिश के साथ जीने का तरीका और जरिया भी बताती है। 'परामर्श' के माध्यम से रूबी दी और सविता एक-दूसरे से जुड़ जाती हैं। रूबी दी की जीवनचर्या सविता के कारण बदल जाती है। अकेलेपन में दोनों एक दूजे का सहारा बन जाती हैं। परामर्श संस्था में रहनेवाली 'सायरा' मुस्लिम होने के

कारण सविता उससे दुर्व्यवहार करती है, तब रूबी दी सविता को संस्था से निकालती है परंतु उसी के साथ वह अपनी संपत्ति का कुछ हिस्सा सविता के नाम भी करती है जिसमें रूबी दी की मानवीयता नजर आती है।

निष्कर्ष

अंत में यह कहा जा सकता है कि अलका सरावगी विचारों से सशक्त लेखिका हैं। एक तरफ उन्होंने कई नारी पात्रों द्वारा नारी शोषण का वर्णन किया है तो दूसरी तरफ आज की सशक्त हो रही नारी का भी चित्रण किया है। नारियों को बचपन से दोयम स्थान देकर नकारा गया है। परिवार से ही इस नारी शोषण की शुरुआत होती है। समाज में जब वह अपना स्थान बनाना चाहती है, तो उसे समाज की ओर से विरोध सहना पड़ता है लेकिन नारी अपनी अस्मिता को बरकरार रखने का प्रयास करती है और कामयाब होती है। शेष कादंबरी में रूबी गुप्ता द्वारा परामर्श संस्था का निर्माण कर सामाजिक कार्य हेतु प्रेरित होना और समाज को प्रेरणा देना इस बात का द्योतक है। इस उपन्यास की नारी खुद अकेलेपन की पीड़ा सहती है लेकिन दूसरी नारियों के प्रति अपनापन जताती है। रूबी गुप्ता द्वारा संचलित संस्था में सविता को प्रकट करते हुए घर-परिवार होने के बावजूद अकेलेपन से ग्रस्त नारी की व्यथा को स्पष्ट किया है। शेष कादंबरी पढ़कर हमें यह बोध होता है कि रूबी गुप्ता समाज और परिवारवालों के साथ इंसानियत का व्यवहार करती है जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि उपन्यासकार अलका सरावगी वास्तव में प्रगतिवादी और परिवर्तनवादी भी है। समाज को नारी की ओर देखने की दृष्टि बदलनी चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो कोई भी नारी शोषण का शिकार नहीं बनेगी तथा अपने अस्तित्व की नई पहचान बना सकेगी। उनका दूसरा उपन्यास 'शेष कादंबरी' 2001 नई शिल्पगत विशेषताओं के साथ प्रकाशित हुआ है जिसमें नारी की घुटनभरी जिंदगी को अभिव्यक्त किया गया है। अलका सरावगी ने 'शेष कादंबरी' उपन्यास में 'फ्लैश बैक' की तकनीक का प्रयोग करते हुए शिल्पगत प्रभाव से इसे सशक्त और बेजोड़ बनाया है।

संदर्भ

1. अंतरंग संगिनी (पत्रिका), राज किशोर, नववर्षांक 1999, पृ॰ 95
2. शेष कादंबरी, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2001, पृ॰ 06
3. वही, पृ॰ 08
4. मेरी तेरी उसकी बात, (हंस पत्रिका), राजेंद्र यादव, दिसंबर, 2000, पृ॰ 06
5. शेष कादंबरी, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ॰ 66
6. स्मकालीन हिंदी कहानियों में नारी चेतना, डॉ॰ मृत्युंजय उपाध्याय, संपादक डॉ॰ कामना कामलेरान , सितंबर-दिसंबर, 1998, पृ॰ 30
7. स्त्री विमर्श इतिहास में अपनी जगह, प्रभा खेतान 'हंस', राजेंद्र यादव, जनवरी-फरवरी 2000, पृ॰ 30
8. शेष कादंबरी, अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ॰ 26
9. वही, पृ॰ 78
10. वही, पृ॰ 07

Attitude towards English language in the students preparing for MPSC exams in Kolhapur

Shriram Abhishek Dadasaheb
Research Student, Shivaji University, Kolhapur

Abstract: In Maharashtra MPSC (Maharashtra Public Service Commission) conducts various exams to select candidates for various posts of class I, II, III and IV where English plays a vital role. Our study is to understand the opinions of MPSC students in Kolhapur regarding the English Language which used very often in their day to day life. The impacts of their attitude on their English language, the reasons behind it, their opinions, feelings about English language are studied in this research. Using questionnaire Total 320 students were surveyed in December 2019.Most of the students feel themselves better than their actual ability regarding English writing skill. Although essay is not part of study to II class, III class and IV class MPSC exams students, but their grammar and vocabulary questions are. And essay writing reflects their anxiety on both

Introduction :

English is the very important language in today's world. Although it is foreign language, it is included in all kind of syllabus for schools, colleges. Due to its importance it is also part of syllabus for many competitive exams. In Maharashtra MPSC (Maharashtra Public Service Commission) conducts various exams to select candidates for various posts of class I, II, III and IV. English plays a vital role in it.

Our study is to understand the opinions of MPSC students in Kolhapur regarding the English Language in language on backdrop of their mother tongue Marathi being more used and English used very often in their day to day life. The impacts of their attitude on their English language, the

reasons behind it, their opinions, feelings about English language are studied in this research. This shows the attitude of students preparing for MPSC exam. Through their essay we have tried to find out attitude impact in their writing skill.

Title: Attitude towarosQ English language in the students preparing for MPSC Exams in Kolhapur.

Objectives :

Ø To explore the attitude towarosQ English language.

Ø To find out reasons behind their attitude.

Ø To study impact of their attitude in their English writing skill.

Methodology :

 ISSN 0975-735X

This present empirical study is carried out in Kolhapur city. The students who took part in this study are MPSC students from Kolhapur.

This study was based on quantitative data. The researcher collected the quantitative data through questionnaire for exploring the attitude of MPSC students towarosQ English language. The questionnaire includes both open and close ended question. Using questionnaire Total 320 students were surveyed in December 2019.

Data is analyzed with an information and statistics from survey.

Data discussion:

According to opinions of 320 students

- In using English, 34 students feel that they are Poor, 94 students feel that they are Moderate, 114 students feel that they are good and only 4 students feel that they are Excellent and 74 students are not able to think which category is suitable to them.
- Only 36.57% students feel that they very good in English speaking.

In English language use according to students' answers, as **yes** or **no**

218 are able to answer all kind of question (by mean).

52.5% students agreed that English is one of my FAVORITE SUBJECTS.

Most common reasons are more knowledgeable and important to communicate, develop personality, express easily, easy to understand all, international etc.

Ø With reasons like other choice, difficult to learn, understand, fear to use it because of grammar, vocabulary and not mother tongue 141 students agreed that English is not their favorite subject.

Ø While using Social media 142 prefers English and remaining all prefer Minglish, Marathi, Hindi etc.

Ø But Only 76 students are interested to face an interview in English. Because English is powerful and attractive language to impress, easiest way to communicate, they feel comfortable to use it.

Ø 168 students want to use Marathi as they feel comfortable. Because it is their mother-tongue and they can express easily in it.

Ø 25 students have preferred both languages.

Only 19.06% STUDENTS DON'T LIKE TO LEARN ENGLISH because fear about grammar, vocabulary makes English difficult so they are not able to understand, also they don't give much time disfavor towarosQ English and interest in other subject etc.

Ø 250 students like to learn and develop English because it is important, globally respectful language. Also some like to learn new language.

Ø 95% Students really want to learn English.

Ø Only 14 Students not have wished to learn English to be a good English speaker

Ø 92.49% Students think that they are able to improve English.

Ø 177 students think that learn English better if they give more time to study hard with understanding, do regular practice, start to talk in English regularly, get best guidance, teacher and English speaking atmosphere.

Ø 168 accepted that Many times they don't give much time to study English because exam is in Marathi language, other subjects' study, busy schedule, getting bored to study English. Fear about English as it is difficult to understand.

Ø Only 2.81% students are unable to listen & understand everyday English.

Ø 60.63 % students daily do listening of English AudioèkNEWS.

Ø Only 20.62% students don't study of English Daily

Ø 54.07% students want to learn only syllabus of English which is for my MPSC exam.

Ø 262 students study English with grammar books, dictionary, mobile apps, YouTube shows, newspapers, magazines, watching English movies,

Ø Only 13students disagreed that 'We can improve English using Internet'

Ø listening news etc. only 55.26% students mentioned names, what they use to study and improve English

Ø But while learning subject only 72 are interested to prefer English. Because it is more knowledgeable, comfortable, important and to easy to understand terms.

Ø 23 students have preferred both languages.

Ø while 136 have preferred Marathi as their mother-tongue, easy to understand and exam is mainly in Marathi language

Ø While speaking English, most of the students try to use correct grammar and structure and then translate from mother tongue to English.

Ø 76.25% students agreed that teachers encourage them improve to English.

56.88% feel fear about English. Common reason behind it are fear to use English because of mistakes, not able to speak, lack of confidence, they feel English as difficult because unable to understand grammar, vocabulary etc.

Ø For 117 students feel English is easy to use, understand because it is enjoyable, familiar, just a language to communicate, they love to learn English with practice, mobile apps etc.

Ø Most important reason for many students to study English is just to improve performance & get a job opportunity

Ø Most of students (71.61%) feel more difficult skill in English is speaking.

Ø Vocabulary and Grammar is the most difficult part for students while understanding English.

Ø English is difficult to many students because Inferiority complex in the mind, Marathi medium education and lack of confidence to use it.

Ø According to 70% students English had impacted on their 10^{th}, 12^{th} and Degree marks

89.38 % students think that English helps them to improve personality as a part of personality development to impress, to increase confidence

because English is internationally important, interesting and knowledgeable language. It helps to understand all subjects, to express view in briefly best

way, to communicate with all. It is necessary, a significant key to success and plays a vital role to create personality.

Ø 20 students disagreed with English helps them to improve personality. Because they feel that to improve personality you should have pure soul, it can be develop with only your communicating ability.

Ø 258 students think that 'Good English speaking can create good impression'

Ø Most of the students think that being good in English helps to develop personality and to get high score in exam.

Writing an essay

· Students' Average marks are 4.06 only.

· 10.63% are unable to write a single line.

· Only 16.56% students got 7 or 8 marks out of 10

· Only two students out of 320 is Excellent

When we compare their opinions about English and their performance in writing an essay we come to know that only 53 students are good and only two are excellent.

According their opinions 29.38% students are moderate but actually 46.56% students are moderate.

· Although essay is not part of study to II class, III class and IV class MPSC exams students, but their grammar and vocabulary questions are. And essay writing reflects their anxiety on both.

❑ Most of the students feel themselves better than their actual ability regarding English writing skill.

Ø Students feel that they are good in expressing feelings, thoughts and in an essay writing skill but actually most of students' essays show average level.

Ø Only two students are excellent in essay writing skill.

❑ Both Marathi and English medium school, college students feel themselves greater than actual ability but this is truer for Marathi medium students.

❑ What students feel about their abilities in English language is highly unexpected in their essay writing skill. 10% students are unable to write any single line.

❑ Although English language is favored by many students they have preferred mother tongue Marathi to face an interview and as well as medium of instruction. They are interested in using English more on the social media.

❑ Most of the students want to learn English but take efforts only on prescribed syllabus of MPSC exam.

❑ Students think that they can learn English better if they give more time to study hard with understanding, do regular practice, start to talk in English regularly, get best guidance, teacher and English speaking atmosphere. But

Because of following reasons Many times they don't give much time to study English.

Ø They feel themselves higher than their actual ability in English language.

Ø MPSC exams are in Marathi language

Ø other subjects' study

Ø busy schedule

Ø Getting bored while learning English.

❑ While using English56.88% students are anxious. Common reason behind it are:

Ø Inferiority complex in the mind

Ø fear of making mistakes in using English

Ø inability to speak

Ø lack of confidence to use it

Ø Inability to understand grammar and vocabulary.

❑ Many students while speaking English translate from mother tongue to English, and then try to use correct grammar and structure and they also try to think in English.

❑ they feel speaking skill in English language is more difficult than writing skill in English language

❑ 89.38 % students think that English helps them to improve their personality

Remedies

According to my survey

Ø They must understand their actual capability and coming out of their shelves of superiority or inferiority complex to study English honestly.

Ø They should not limit themselves to the syllabus but should study English to improve the language skills.

Ø Start to speak English regularly.

References

Tamador Khalaf Abu-Snoubar, An Evaluation Of EFL Students' Attitudes Toward English Language Learning In Terms Of Several Variables. International Journal of English Language Teaching Vol.5, August 2017

C.Vijaya Bhaskar and S. Soundiraraj, A Study on Change In The Attitudes Of Students TowarosQ Language Learning English Language Teaching Vol.5 (2013)

 ISSN 0975-735X

Reflection of Gender in Popular Culture and Literature: A Feminist Perspective

Dr. Amogh A.M.
Assistant Professor in English, Government First Grade College for Women, Chikkaballapur, Karnataka

Abstract

The present paper would examine the concept of gender from the feminist perspective. It would also look at popular culture the relationship between post feminism and popular culture in a detailed way. The article would dwell into the representation gender though feminist texts in popular culture and Indian English literature.

Introduction

The concept of gender has attracted lot of attention. It is one of the key concepts of feminist movement. The patriarchal society makes use ofthe of the terms like sex and gender alternatively with ascribing almost similar meaning to both the phrases. But the feminists are at loggerheaosQ with the patriarchal order over the usage and the meaning of these two terms. Similarly, the term 'popular culture is also used in a vague manner by the patriarchal set up. The present article would analysethe terms like gender and popular culturein an elaborate manner. The article would also look at the concept of post feminism and its relationship with popular culture. The article would examine the issues of gender in Indian English fiction writing in a brief manner. Thus, the article wouldthrowlight on the representation of gender issues in popular culture and literature from the feminist angle.

Concept of Gender-A Feminist Perspective

Thediscourse of sex versus gender reached its peakin the Second Wave feminism. Beauvoir should be hailed forcoming up with a distinction between sex and gender. "The term masculine and feminine are used systematically only as a matter of form, as on legal papers. The relation of the sexes is not quite as if that of the two electrical poles, for man represents both the positive and negative whereas, woman represents only the negative." (Beauvoir 49)

'Sex' attributes to biological category.On the other hand, 'gender' is a contrived aspect. Hence, the notions of male and female represent classification of biological sexes is built on preciseroles. on the other hand, the concepts of 'masculine' and 'feminine' are social brackets. The difference between sex and gender helps to

come to terms with the dictatorialattitudes,women had to put up with in the society. If one calls gender as socially engineereosQpectacle then society could be made accountable for the repressive condition of women rather than the biological nature of female. The proponents of feminism state that it is the social practices which regulate in such a way that an individual is unable to trace ventures which would enhance their personality. Gender as a social construct helps to bring all the women onan equal footing. Kate Millet believes that genderis "Personality, structure in terms of sexual category" (Millet 3). The sharing of identical experiences of oppression helps to find common thread among all of them. Thus, it helps women to unite and make them go for political action against oppressive patriarchal set-up.

The Third Wave feminism, like the Second Wave confronts the concepts of sex and gender. The Second Wave gave a thumbs down to the notions of sex and gender for, the Second Wave feminists state that the concepts are socially constructed. In a similar way, the Third Wave feminists did not agree toaccept the constructs of sex and gender to prove that they are social constructs and hence, could be rejected. For instance, the exploit of make-up kits and going for plastic surgery, if need be, are the exercises which showcase assertion of self-according to the Third Wave feminists. On the other hand, the Second Wave feminists believed that the practices emphasize the oppressive beauty standarosQ of patriarchal order. The Third Wave is very keen to have a look at the aspect of gender performance. Judith Butler's *Gender Trouble* is very important in this regard. Here Butler proclaims that gender identity is a myth. She believes that social practice is the driving force behind the genesis of the term gender. It is the social practices which articulate gender. Thus, Butler asserts that gender does not exist at all and in fact, it is an artificial entity. She is critical of French feminist wing for the simple reason that it is in a way the favored notion of feminine to articulate 'ecriture feminine'. (Butler1-144).

In *Bodies that Matter* Butler declares that the category of man and woman does not exist at all. Thus, she reiterates the view of Monique Witting who outrightly rejects the existence of a category called 'women'. Butler explains that the supposed biological category of 'sex' is itself a construct which is designed on the patriarchal lines of thinking. Hence, she out rightly rejects the biological categorization. Hence, the feminist movement, thethird wave, has outrightly rejected the notion of gender. (Butler 1-129).

Concept of Popular Culture& Culture Industry

Popular culture is the amalgamation of Practices, Beliefs and Objects. That are prepotent in a society at a particular juncture in time. Popular culture also denotes the actions and impressions put together because ofinterplay with the authoritative objects.The primary motive behind popular culture is the notion of universalization.This notion of universalization is produced by the culture industry according to Theodor Adorno, a renowned critic who belonged to Frankfurt school of thought. Infarct,Theodor Adorno, and Max Horkheimertogether coined the term

'culture industry.' "The concept of 'the culture industry'reflects the sustainedallegiance towarosQ Marxism. For both the thinkers the term industry denotes its roots in capitalism. Adorno and Horkheimer believe that culture is a casual entity. (Strinati, 2004, p. 49). According to Adornothe culture industry makes the masses powerless, creatures.in his opinion power remains with the culture industry which encourages assimilation of branosQ of dogma that stimulate compliance and concurrence which ultimately results in bringing loyal and stable economic set up which exploits the masses to the core.Adorno thus, believes that 'Culture industry' is an umbrella under which the products and processes of popular culture take shelter and are exploitative in nature. It could be observed that popular culture is has multi-faceted structure, i.e.,it isIdentical andPredictable.

Adorno &Horkheimerbelieve that the trilogy of film, radioand magazines team up to set up a system which is uniform in essence as a whole and in every part. They also believe that the mass culture is identical in nature. To support their claim Adorno & Horkheimer comes up with the example of viewing of a movie.Thebeginning of the movie makes it clear to viewers four things i.e. the ending of the movie,The person who would berewarded at the end of the movie, the person who would be punished or forgotten at the end of the movie and The flattering feels of the light music which is popular music in essence.Thus, Adorno &Horkheimer highlights the repetitive manner which is the most important feature of movies.One could witness reproduction of the same things on a regular basis in movies. (Adorno &Horkheimer.1-8). Adorno terms the propogandist nature of popular culture which represent the elite classes as 'unmistakable message'. He believes that the 'unmistakable message' of high culture is not easy to accomplish but the 'hidden message' of popular culture is extremely easyto assimilate.

The Frankfurt School is critical of mass culture for,it posesa threat to cultural standpoint andrelegates the working class. The School also believes that mass culture is detrimental for values of civilization and while the culture and social authority. Corradetti, highlights the importance of Frankfurt School when he comments that during the era of Hitler, "the Institute remained the only free voice publishing in German" (Corradetti.5).

Post Feminism and Popular Culture

Post feminism assumes that the feminist has reached its destination as all the goals of feminism have been achieved. Hence, it could be said that in a way, post feminism celebrates feminism.It is a part of neo-liberal society. Post feminism is strong advocate of consumer culture. Gill believes that Post feminism is the supporter of neo-liberal ideologies and Capitalist Values.

Gill linkspost feminism and neo-liberalism or popular cultureat three levels. Firstly,Bothappear to be structured around a strong sense of individualism of individualism. Secondly, There is a similarity between neo-liberalism and post feminism interm of characteristics. The neo-liberalism is entrepreneurial, independent, calculatingand self-governing in nature.in a similar vein, post feminism is dynamic,

freely choosingand self-reinventing in essence.Thirdly, popular cultural debates focus more on women.They demonstrate self-management and self-discipline to a greater extent than men (Gill163-164). The notion of self-management is manifested inpost-feminist popular cultural texts in the form of television fiction series and films likeSex and the City and Desperate Housewives

Representation of Gender in Sex and the City

Sex and the City is a story of four women all of them are frienosQSamantha Roberts is one of the four women characters. Samantha is often defined as the firecracker of Sex and the City. Samantha provides the spark which is the key element in making the show such a big hit.Gross praises the intelligent way of Director Michael Patrick King use of Samantha's character to shock the audience, "When we want to send up a firework or really shock someone, Samantha opens her mouth" (Gross 1). For, Samantha men are equated tosex toys and chess pieces.She has changed her boyfrienosQ in a flash she neither has sentiments nor emotions for them.

Representation of Gender in Women Novelists of Indian English Literature

The women novelists of Indian English literature have effortlessly painted the issues of gender in their novels. Anita Desai ventures into the psychological side of women. Almost all her novels deal with the psychological exploration of her protagonists. Hence, Anita Desai could be considered as a harbinger of new era in women fiction writing in Indian English. For, psychological exploration was never a part of earlier writing in fiction. In Cry the Peacock, the story revolves around Maya who feels displaced and alienated throughout the tragedy in her marital life as she kills her husband Goutam in haste and finally commits suicide. In Fire On the Mountain, Nanda Kaul feels gutted by her husband's extra-marital affair but could not do anything at that point. It is only after the death of her husband that Nanda begins to see life with a new perspective with the help of her friend Ila Das who is a social worker. Nanda begins to work for the uplift of the underprivileged. In Where Shall We Go This Summer, Sita lets go her assertive nature for the sake of her children and settles for self-compromise. Anita Desai's heroines are extremely sensitive in nature and this sensitivity often leaosQ to tragedy in their lives.(Tripathi 55-77).

Bharati Mukherjee is one of the representative writers of second-generation women novelists. She focuses on the issue of immigrant's quest for self-identity. Jasmine deals with the theme of East-West encounter. It is a story of young Hindu woman who comes to America to find out the reason of her husband's murder. She settles down in America. But she goes through the horrible experience of rape several times there. Jasmine goes through several jobs before establishing herself in the role of caretaker. The novel exposes the tyrannical nature and cultural intolerance of American society which is hailed as progressive. (Mandel 266-69).

Gita Hariharan is a well-known novelist. She made her debut with Thousand

Faces of Night, a story of women of three generations. Devi, Sita and Mayamma represent the three generations but all the three share similar experiences of loneliness and subservience to the dominant male. Devi, a girl educated in the west. She cannot cope up to the marital life after coming back to India. At one-point Devi feels that her life is futile because she cannot conceive a child. Sita the mother of Devi, an expert and renowned veena player in her youth. Devi breaks the veena, as a symbol of curbing her creative instinct and moulosQ herself into the role of housewife. But at the same time, she discourages creative instinct her husband and her child, as she has abandoned it for the sake of her household. Similarly, Mayamma is an old woman, brutally beaten by her son. (Hariharan 1-77).In When Dreams Travel Hariharan re-tells the stories of Arabian Nights from a feminist point of view. Here Dunyazad, the princess sister of Shahrzad, the prince, assumes the centre stage and all the stories are addressed to her.Hariharan 1-58).

Conclusion

To sum up, it can be said that it can be said that the term gender is key phrase from the point of view feminism. The conceptualization of gender is important from the angle of feminism. The concepts of popular culture and post feminism are also come under the umbrella of feminism. One neeosQ to have the knowledge of gender, popular culture and the relationship between post feminism and popular cultureto analyse the representation of gender in the feminist texts of popular culture and literature.

Works Cited

1. Adorno, T., & Horkheimer, M. The culture industry: Enlightenment as mass deception. 1993. Retrieved July 03, 2021, from www.faculty.georgetown.eduèkirvinem.
2. Butler, Judith. Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity. Routledge.2007.Print.
3. Corradetti, C. The Frankfurt School and critical theory.2013. Retrieved July 04, 2021, from www.researchgate.net.
4. De Beauvoir, Simone. The Second Sex. New York: Alfred Knof, 1953. Print.
5. Gill, R. 'Post feminism Media Culture. Elements of a sensibility,' European Journal of Cultural Studies, 10(2): 147-166.2007.Print.
6. Gross, T. (Host). Interview with Michael Patrick King. Fresh Air. National Public Radio, (2002) Web. 25 June 2010.
7. Hariharan, Geetha. The Thousand Faces of Night. New Delhi: Penguin Books, 1992. Print.
8. Hariharan, Geetha. When Dreams Travel. Great Britain: Picador Macmillan Publishers,
9. 1999.Print.
10. Millet, Kate. Sexual Politics. New York: Avon Books, 1970. Print.
11. Mandel, Ann. "Bharati Mukherjee," Dictionary of Literary Biography: Canadian WritersSince 1 960 Vol. 60, Detroit: Gale Research Company, 1986, 266-69. Print.
12. Tripathi, J.P. Mind and Art Of Anita Desai. Bareilly: Prakash Book Depot, 1986. Print.
13. Turner, G. (2003). British cultural studies: An introduction (3rd Ed.). London: Routledge. Print.

Reflection And Elucidation Of Naturalitic Perspectives In Louise Erdrich's The Round House

D.A. Ghanawat
Department of English, Yashwantrao Chavan College of Science, Karad, Satara, MS, India
Dr. U. N. Tathe
Department of English, Mahila Mahavidyalaya, Karad, Satara, MS, India

Abstract: Literary Naturalism, a key genre of the late nineteenth century, offers new and innovative perspectives to the contemporary novels of the early twenty-first century. The present research paper explores and studies the reflection and elucidation of literary naturalistic elements in Louise Erdrich's The Round House (2012) that addresses a new approach to the canon. This approach broadens the literary naturalist canon in the early twenty-first century American novels. Drawing on Literary Naturalism theory, this research paper aims to examine Louise Erdrich's naturalistic perspectives reflected in The Round House. The present study highlights a new approach to Erdrich's The Round House (2012) in the field of Literary American Naturalism with its textual analysis. This is a new interdisciplinary trend that has opened for literary scholars. The present novel, The Round House (2012) carried several naturalistic elements that determine the characters' lives and how those characters lead a miserable life.

Introduction: Human beings are "not only inseparable from the material, social and intellectual world in which [they] live but [are] deeply and often irrevocably limited in [their] actions and beliefs by that world" (Pizer 391). The lives of human beings are determined by the laws of environment and heredity, internal and external forces, and many other elements. It has been studied in the voice of literary naturalism since the late nineteenth to the early twenty-first century. For a better understanding of literary naturalism in the early twenty-first century's novels, it is necessary to envision literary naturalism and its perspectives after the publication of more than a century's novels of naturalistic novelists like Louise Erdrich's *The Round House* (2012). Louise Erdrich is one of the contemporary Native American novelists of the early twenty-first century, and his novels are studied and evaluated by diverse critical perspectives. The present study of the novel, *The Round House* (2012), highlights a new interdisciplinary approach based on the philosophy of naturalism. But before analysing naturalistic elements, there is a need to glance at the state of the literary naturalistic field and how our current understanding emerged. Understanding naturalistic perspectives require knowing the diverse definition of Naturalism by

 ISSN 0975-735X

scholars.

Literature Review: For re-visioning, American literary naturalistic perspectives need to review and understand the resurgence of Literary Naturalism with its definition. Emile Zola remarks that a novel is a scientific tool for the study of human documents in *Le Roman experimental* (1880) in which Zola states, "I sum up this first section by repeating that the naturalistic novelists observe and experiment". He specifies that naturalism is deprived of supernaturalism and human beings' biochemical interactions regulated by 'heredity' and 'environment'. Vernon Louis Parrington states that American literary naturalism is "pessimistic realism" in that the individual stands within "a mechanical world and conceives of him as victimized by the world" (Parrington 325). The gold standard definition of American Literary Naturalism is Pessimistic, deterministic realism. Literary Naturalism is "no more than an emphatic and explicit philosophical position taken by some realists, showing a man caught in a net from which there can be no escape and degenerating under those circumstances; that is, it is pessimistic materialistic determinism" (Becker 35). John J. Conder described American literary naturalism in 1984 as "the outgrowth of a coherent philosophical position rooted in a deterministic philosophy informed and shaped by Thomas Hobbes and Henri Bergson" (Conder 11). He asserts that it is unified by a coherent and recognizable philosophical position. Cowley outlined naturalism in 1947 stating that "Naturalism has been defined in two words as pessimistic determinism, and the definition is true so far as it goes. The naturalistic writers were all determinists in that they believed in the omnipotence of abstract forces. They were all pessimists so far as they believed that men and women were incapable of shaping their destinies" (Cowley 414). Everett Carter writes about American literary naturalism as "deepening and broadening of the realistic and critically realistic techniques and attitudes extended to larger areas of society" (Carter 237).

Charles Walcutt defines that American literary naturalism as "offspring of transcendentalism" (Walcutt 23) and "mechanistic determinism" (Walcutt 23). He thinks that naturalism is a philosophical position and realism is a set of literary conventions - a style. Figg remarks, "Since in the novel meaning is a function of the form, the deterministic idea, seriously entertained, prescribes a particular structural pattern, a certain type of characterization, and a definite amoral orientation ... 'realistic' without admitting that the main fictional elements of that novel would have to be radically and essentially redisposed" (Figg 310). He concludes that literary naturalism is based on a certain materialistic and deterministic view of human nature and endeavour. Donald Pizer, a critic of American literary naturalism of the past half of the twentieth century, defines literary naturalism in the Bucknell Review titled *Late Nineteenth-Century American Naturalism* (1965). Pizer bridges the inconsistency between the Parrington tradition and the Walcutt tradition. He extends that "The naturalistic novel usually contains two tensions or contradictions, and that the two in conjunction comprise both an interpretation of experience and a particular aesthetic

recreation of experience. In other words, the two constitute the theme and form of the naturalistic novel" (Pizer 10). The first tension is between the "subject matter of the naturalistic novel and the concept of man which emerges from this subject matter" (Pizer 10). Though the characters are taken from the everyday common human experience, the naturalists seek illustrations of the "extraordinary and excessive in human nature" (Pizer 11). The second tension is thematic. The narrators of the novels come from these two tensions.

The period from the 1975s to the early twenty-first century has many major studies on American literary naturalism. There is a shift in literary theory away from old historicism, formalism, and New Criticism toward structuralism and post-structuralism language theory, new historicism, new-Marxism, culturally and sociologically oriented approaches. The earlier focus of American naturalism is on the relationship between the texts of literary naturalism and the sociological circumstances surrounding their creation instead of the given earlier form. In the early twenty-first century, two features define literary naturalism. One is the focus on four male novelists: Theodore Dreiser, Frank Norris, Stephen Crane, and Jack London. Another is the temporal reach of naturalism. (Marc Egnal)

Seema Kurup writes in her book, *Understanding Louise Erdrich* (2016) that, "The construction of ethnicity, cultural identity, and history is largely determined by the dominant culture and by those in power" (Kurup 23). Native Americans, women, black, and race are made only cultural tags to oppress and subjugate the Native American people. Nancy H Peterson states that "For writers such as Erdrich…the history of America has often been exclusionary – a monologue narrative of male Anglo-American progress that constructs others as people without history ... writing history ... has become one way for marginalized people to counter their invisibility" (Peterson 320).

Textual Analysis and Discussion: *The Round House* (2012) by Louise Erdrich is not free from internal and external forces which affect the characters. The characters are typically native by their lifestyle. Being native is an external force that limits the ways and promotes missing, harosQhips, troubles, and exploitation. Joe is the protagonist of the novel. Joe's family experiences these forces like social environment and hereditary as Emile Zola asserted on the same forces. Joe's mother, Geraldine Coutts is brutally raped and raped. She is the victim of society. "Her hands were clenched on the wheel and she was staring blindly ahead...There was vomit down the front of her dress and, soaking the gray cloth of the car seat, her dark blood...she was silent, though now she moistened her cracked, bleeding lips with the tip of her tongue. I saw her blink, a little frown. Her face was beginning to swell...she vibrated with a steady shudder like a switch had been flipped inside. A strong smell rose from her, the vomit and something else, like gas or kerosene" (Erdrich 9).

Joe's meeting with a white woman suggests a difference between races. "Humans had evolved out of apes only to sit gaping at round white crackers" (Erdrich

11). It is conspicuous that the influence of white is on the natives of the Indian Reservation. The treatment given to the natives is far different compared to the whites. Tribal cases are declined by giving various reasons. Being a judge, Joe's father states his disappointment in the judicial system. The U.S. government neglects these natives and never considers them in the proper line. The life of natives is controlled by the government and the whites. As a result, they lose their free will.

Critics Lana A Whited and James Naremore highlight the naturalistic features of novels - true crime or hardboiled detective fiction (Whited 324; Naremore 50-54). Joe plays the role of detective to find out the real attacker of his mother. He searches the clues on the spot with his friends near the Round House as he knows the police search is not seriously taking place. He finds there alcohol, beer, cigarettes, and condoms that indicate the immorality of the attackers. He raises questions on the Tribal, Police, and FBI as they are not working properly on the case. The spying incidents elaborated with Joe's desire to investigate the case. The spying scene is a stark reality which is one of the features of literary naturalism.

Joe and his father become desperate due to the attacker who has raped Joe's mother. He says, "Nobody else was as desperate as the two of us, my father and I, to get our life back" (Erdrich 117). The desperation makes the family's life miserable which was once very happy. He could enjoy everything without any restrictions. The situation is caused due to the attacker. All family members become desperate. They have to bring their normal life. The desperate life depicted in the novel leads to the literary naturalistic perspectives. Joe kills in desperation Linden Lark who has raped his mother, "I shot at the logo over his heart...I lowered the rifle" (Erdrich 299).

Linda Lark Wishkob is the victim of heredity. Her life is determined by hereditary problems as it is seen in the novels of Emile Zola's series novel; *Les Rougon-Macquart* (1871-1893). Linda is born with a congenital deformity. She has a crumpled head, arm, and legs so he looks very ugly. Her family is not allowed the doctor to salvage her deformity. She is left for dead in the hospital. "I was left in the nursery with a bottle strapped onto my face while the county decided how I would be transported to some sort of transitional situation" (Erdrich 123). She is a descendant. She leads such a life because of her hereditary problems and her own family who descended her. She hates her mother. "It was the first time my birth mother had ever touched me and although I quieted beneath her hand ... I pushed her away, repelled with hate like an animal sprung from a trap" (Erdrich 130). Her twin brother, Linden Lark gets kidney failure also and he is on dialysis. He is also a person with psychological disorders. He says, "Save your kidney for me" (Erdrich 131). "I was only physically born that day ... the way my life has gone, I was born several times" (Erdrich 281). So Linden is struggled and suffered not only from her congenital deformity but her social forces like her surroundings' expectations. Her mother left her for dying on the street. She says, "All my life, knowing without knowing, I had waited for this thing to happen" (Erdrich 131). She wants to unite

with her family; even though the family has treated her differently.

Mayla Wolfskin is the victim of Linden Lark. She has an illegitimate affair with Governor Curtis Yeltow who is an older white man. She becomes pregnant with him and is offered money for concealing the act. He leaves her to face the struggle. She lives a miserable life leaving her child. Afterward, she is murdered by Linden Lark. Her tragedy ends due to these people who govern her life as property. Linden throws Mayla on the ground and her hands are tied up. The girl, her baby crawled over the dirty land. He says, "I am really on sick fuck. I suppose I am one of those people who just hate Indians generally and especially for they were at odds with my folk way back but especially my feeling is that Indian women are ..." (Erdrich 171).

Bazil, Joe's father, a tribal judge, has not done anything to solve the case of his wife. "And custody. Nothing but pain. You said yourself. You've got zero authority, Dad, one big zero, nothing you can do, why do it anyway?" (Erdrich 240). He is a judge but limited rights are obtainable. He highlights the condition of Indian Law. There are many loopholes that allow the readers to thoroughly indicate the inability of the tribal judge Bazil.

Father Travis states the evils that "There is material evil, that which causes suffering without references to humans but gravely affecting humans. Disease and poverty, calamities of any natural sort. Material evils. These we can't do anything about. We have to accept that their existence is a mystery to us. Moral evil is caused by human beings. A person does something deliberately to another person to cause pain and torment. That is moral evil" (Erdrich 268).

Materialism is the root cause of all evils as it is mentioned in literary naturalism. The opinion of Father Travis has been greatly approved and considered. Even though God is supreme, he has given us the freedom to select good and evil. It depends upon you how you respond to it. Unavoidable forces determine the life of the important characters like Joe, Joe's mother, and father. At the end of the novel, optimism is visible. The novel ends with the remark, "We passed over in a sweep of sorrow that would persist into our small forever. We just kept going" (Erdrich 335). It states the struggle of Joe's family is to come out of these forces.

Conclusion

Louise Erdrich commented on this novel after the declaration of the National Book Award, "suspense novel masking a crusade" (Luscombe 60). Sexual violence destructs the life of Geraldine, Mayla, and Sonja. The Native American women are the victims of sexual violence done by the whites on the Indian Reservation. The social and historical background on tribal law and order is responsible for the sexual violation or encourage doing such activities. The whites do not have any fear of law and order. Erdrich points out that, "gap in the law has attracted non-Indian habitual sexual predators to tribal areas" (Erdrich: Rape on the Reservation). The internal and external forces are always working mechanisms in the life of the characters. Linden Lark says, "I won't get caught...I know as much law as a judge. I have no

fear … I make things the right way around for me" (Erdrich 171). Erdrich deliberately uses the suspense novel format to give power to the campaign in a naturalistic way. Although this novel leads to a mystery or suspense, it is a stark realistic picture of native reservations and how their life is determined by naturalistic elements. These naturalistic elements like social environment, heredity, sexual violence, materialism, pessimism, stark realistic presentation, race, descendant, taboo words, abusive language, diseases, molestation, and internal and external forces are conspicuously reflected in *The Round House*.

References

1. Becker, G. J. (1963). Documents of modern literary realism. Princeton, N.J: Princeton University Press.p35.
2. Cady, Edwin H. (1997). The Light of Common Day: Realism in American fiction, 1885-1915. Ohio University Press, p 45.
3. Conder, John J., (1984)."Naturalism in American Fiction: The Classic Phase". University Press of Kentucky. *American Literature*.3. https://kuknowledge.uky.edu/upk_american_literature/3
4. Egnal, M. (2018). Re-Visioning American Literary Naturalism. *Canadian Review of American Studies*, *48*(2), 171-190.
5. Erdrich, Louise. (2012). The Round House. New York: HarperCollins, Print.
6. Erdrich, Louise. "Rape on the Reservation." New York Times 27 Feb. 2013, a23. Print.
7. Figg, Robert M., III. "Naturalism as a Literary Form." Georgia Review 18 (1964): 308-16. Web. https://www.jstor.org/stable/41396034.
8. Julie Tharp. (2014). Erdrich's Crusade: Sexual Violence in The Round House. Studies in American Indian Literatures, 26(3), 25–40. https://kdoi.org/10.5250/studamerindilite.26.3.0025
9. Kurup, S. (2015). Understanding Louise Erdrich. Univ of South Carolina Press. P23.
10. Luscombe, Belinda. "10 Questions." Time 14 Jan. 2013. 60. Web. 24 May 2015.
11. Naremore, J. (1998). More than night: Film noir in its contexts. Berkeley: University of California Press.
12. Parrington, Vernon Louis. (1930). Main *Currents in American Thought: An Interpretation of American Literature from the Beginnings to 1920. Volume Three: 1860–1920, The Beginnings of Critical Realism in America*. New York: Harcourt, Brace. 320-325.
13. Phipps, G. (2020). American Literary Naturalism and Its Descendants. Studies in American Naturalism 15(1), vii-xiv.doi:10.1353/san.2020.0013.
14. Pizer, Donald. (2003). "Is American Literary Naturalism Dead? A further Inquiry." Twisted from the Ordinary: Essays on American Literary Naturalism. Ed. Papke, Mary E. Knoxville: The U of Tennessee P, 390-404. https://scholarworks.wmich.edu/books/424
15. Mary Paniccia Carden. (2018). "The Unkillable Mother": Sovereignty and Survivance in Louise Erdrich's The Round House. Studies in American Indian Literatures, 30(1), 94–116. https:èkèkdoi.orgèk10.5250èkstudamerindilite.30.1.0094
16. Walcutt, C. C. (1956). *American literary naturalism, a divided stream*. U of Minnesota Press.
17. Whited, Lana A. (2003). "Naturalism's Middle Ages: The Evolution of the American True-Crime Novel." Twisted from the Ordinary: Essays on American Literary Naturalism. Ed. Papke, Mary E. Knoxville: The U of Tennessee P, 323-343.
18. Zola, E. (2015). "The Experimental Novel". In G. Becker (Ed.), Documents of Modern Literary Realism (pp. 162-196). Princeton: Princeton University Press. https://doi.org/10.1515/9781400874644-019

ujjvalantathe@gmail.com

Importance Of Modern Language Laboratory In English Language Learning Process In India

Dr. Dattatray Balaso Thorbole
Assistant Professor
Department of Englis,
Dr. Vasantraodada Patil Mahavidyalaya
Tasgaon Dist-Sangli, Maharashtra (India)

Abstract

India, besides China, is the most populous country in the world. The country is well known for its struggle against the diverse ethnic cultures who tried to conquer the land of India foreconomic and political ambitions.Hence, the history of the country has experienced certain chapters of violence and setbacks. The most influential factor which dominated the present and future of the country is the rule of British regime. India has been the colony of the British imperialists; therefore, the intruder's i.g.,Britishers' language, culture, food habits, education, and technologybecame mandatory for the Indians to follow and indirectly these factors became part and parcel of the British rule in India.

At this juncture, it is crucial to state that the British rule held responsible for the entry of English language in the vast country like India. The primary aim of Britishers behind introducing English language for the native Indians was politically correct as they wanted Indians to learn some basics of English language, therefore, they can work as clerks.However, the practice of English language continued endlessly in India and soon after post-independence English emerged as a language of carrying day to day life activities.This paper aims to explore the issues such as: Whatwere the traditional ways of English learning in India?What is Language Laboratory? What are the benefits of language laboratories as modern techniques of teaching English for the professional students in India? and Role of the Language Laboratory Teacher? The paper also throws light on whether these language labs really boost the enthusiasm of the students and enhance their language learning stimuli.

I. Introduction

English language has dominated the progress and development of the past centuries. When we compare thepresent statusof English language in India, we do realize that the growth of English, not only in India but all over the world,has been tremendous and epoch making. This language is termed asthe first language of thirty-four crore people all over the world. Moreover,in this phase of globalization, English has remained as a tool of imparting knowledge in the fields such as science,

 ISSN 0975-735X

information and technology, medical, economics, business and so on. Thus, English,being the international language of science and technology, research and development, holds the credit of possessingaround forty-five web pages designed in it. The conventional methodology of teaching English for Indian's was mainly based on Lord Macaulay's ideology of developing "a class of persons Indian in blood and colour but English in taste, in opinion, in morals and in intellect".

The strategies introduced by Britishers for teaching English to the Indians were limited in its scope and objectives. During this pre-independence era Indians witnessed the arrival of this new language in the schools and colleges. At the outset the introduction of English was welcomed by the Indians, although forcefully, gradually, this English learning process stood very annoying for the natives as it seemed very gloomy and non-energetic task to chew and digest. Consequently, studying English by native Indians was primarily meant for seeking jobs or required for opting higher education abroad.Thus,in those days, English language was not considered as a means of connecting local to global. Ultimately, in the initial stage of its advent, it did n't achieve the status of a language of commerce, science and technology, engineering and research and development. The methodology used to teach English for Indians was teaching it through literature. Therefore, literary English played an important role in the acquisition of language in which written form gained weightage over spoken communication. It is crucial to know that the Indians had to solely dependent upon the British style of teaching as imitating the native speakers of the language, i.e., the Britishers.

Traditionally, English was restricted merely towards job prospects and higher education.Since the period of post-independence, it has been recognized as a language helpful in the every aspect of life. The explosion of English medium schools in the early 21stcentury is an evidence of widespread use of English language which engrossed the very existence of Indians and it has been the essential qualification and prerequisite of obtaining an attractive job prospects. It is becoming default option for communication as it is spoken and understood across the globe.Thus, this is the background of emergence of English in the multiple sectors and professions. Many professional schools and colleges today understand the dire need of introducing English language courses for their students. Thus, they have been searching anew ways of employing diverse tools and techniques to enhance the communicative competence among the students who are supposed to represent the future employees.

II. Objectives of the Study

The researcher has prepared this paper keeping in view some basic objectives.To understand how the modern language laboratory is the solution and need of the hour to learn the skills of English language.In the current situation, it would be useful to train students to use language effectively through modern technology for job interviews, vocabulary building, developing pronunciation art, techniques to improve LSRW, group discussions and public speaking.To understand the various features of a language laboratory and its significance for learning English

as a second language. To strive for the students to contribute as actively as possible to this language learning practice with the help of technology and to move the students towards English language improvement by making maximum use of modern language laboratory andif possible to get out of the traditional classroom environment.

III. Research Methodology

The focus of the researcher is laid on the close reading of two kinosQ of data namely primary & secondary data. The study has been done on the basis of extensive and intensive reading of availablerelevant datafor present study.

IV. Why is it important to learn English language through technology?

In this period of globalization and privatization learning English language has become very crucial as in India there has been an arrival of many foreign universities and multinational companies. This scenario has changed the nature, aims and objective of learning process of English language. The conventional methods of learning English as a second language in India were Grammar Translation Method, Direct Method, Structural Approach, and Bilingual Method. However, amidst of changing requirements, aims, and objectives, English language teaching is being done through language laboratories by employing various software and through teacher- student console.According to Merriam Webster dictionary language can be defined as "the system of words or signs that people use to express thoughts and feelings to each other".

It indicates that learning of any language cannot be a static or monotonous process. On the other hand, it is a dynamic, hybrid, and subject to be influenced with culture, class, gender, society, regionalism, ethnic and social background.For the Indian students, English stands for a strange language and not their mother tongue.Moreover, the non-native Indian students feel uncomfortable while communicating in English; hence, they do not meet with the required standards of fluency in their speech.Thus,currently, in the modern world in general, and India in particular, learning of correct English to develop LSRWs is a hot topic.In the present era, English in India is impacted by the dialects spoken in many countries all over the world and altogether they are known as Anglosphere. In Indian scenario, English language speakers mainly follow British and American accent yet it remains a difficult task to meet with the requirements of effective communication due to certain changes took place in the evolution of language on the basis of as morphology, pronouns, verbs, phonology, syntax, and alphabet.The most common reason behind the fame of English in Indian land is its usability and indispensable role in one's personal and professional life.

Hence, in the light of these modern changes in the language learning process, it is essential to know that language learning modules used in language laboratories are considered as a boonfor enhancing the learners' communication skills and make them more effective in listening, speaking, and reading skills so that they can encode and decode the various messages properly and drive their point home. Thus, it is found thatmodern language labs, equipped with effective technology based software,

tend to improve and nurture the essential language learning requisites for non-native learners of English.

It is crucial to state that language learning through modern computerized and technology based softwares has foregrounded and pointed out the restrictions and loopholes of conventional methods and techniques employed for English language learning. Before doing an assessment of how these language laboratories are helpful in improving the second language of Indian professional, it is mandatory to know the technical details of language lab. In the era of globalization and especially in the 21st century, English came up as a foreign and second language in all over the world. Thesystematic study of English language has become the need of an hour. The learning process of English is made easy and convenient through the different audio or audio-visual study materials which are made available in the labs by installing them on the computer in classroom.

V. Modern Language Laboratory and its role of the learning English language process

Modern Language Laboratory, also known as multimedia language lab, is a digitalèkelectronic means platform wherein a teacherèktrainer tends to simplify the learning process. It is a facility provided for the recent teaching approachesas a challenge to the conventional classroom chalk and talk method.Thisapplication of multimedia lab in the learning process assists students to their participation in the acquisition of the second and foreign languages. Hence, Modern language laboratory, in this context, mainly focus on the development of LSRW skills as it aims to cultivate the routineand situational English used at workplace.As compared to the conventional teaching aids used in English classrooms, modern language lab resources remain more authentic,reliable, and learning can be edutainment for the students as they get the package of the Text, images, audio, and video.

General rudiments in a modern language lab:

· Proper computer system equipped with the student friendly software.

· Audio-Video installation

· Teachers are supposed to listen and handle students' audio, which is transformed to the each student separately through headsets or in sequestered 'sound booths.'

· Appropriate LAN system.

· Teacher console server PC should be well maintained to keep teaching materials in proper format.

It is important to realize the contribution of modern Language Laboratory in terms of providing assistance to the students in terms of offering them the up-to-date nuances of stress, tone, and intonation patterns.Such distinct and interactive features of digital software create an incentive and enjoyment in what is being taught and presented to them. This paper highlights some of the important merits of digital language laboratory in the process of English languagelearning in India:

Result Oriented Approach

The modern digital language laboratories installed at English medium schools and many professional collegestend to improve fluency of Indian students through various interactive sessions, exercises and modules wherein the Indian students can work out on their pronunciations, intonation, accent, pitch, and choice of diction.

Practical Approach

In the context of language learning process, the practical exposure and hands on experience play an important role than the theoretical nuances of it. Modern digital language labs, installed in the schools and colleges, where professional courses are opted, fulfill these language learning prerequisites and design teaching modules which are quite entertaining and at the same time interactive. Thus, as compared to the class room teaching, a student can learn the basics of English language such as LSRWs through practical mode more conveniently.

Interactive Audio-Visual Tools

Almost study material available on the modern digital English Language Lab platform remains in audio-visual arrangement. This study material tends to be more appealing, attention seeker, catchy, and longlasting in memory as compared to the traditional language learning techniques. The audio-visual instructions followed by the supervision of teacher ensure the simplicity and proper knowledge of how to pronounce the English words.

Monitoring System

One of the most important advantages of language laboratory in the process of learning of English language is its monitoring system. The students learning English through computerized digital laboratory can inspect their expertise in English and examine their performances in the audio-visual exercises. This Language Laboratory unfolds a noveldrive of learning English language. In his console, a student can get his pronunciation recorded, checked which is monitored by the teacher and corrected if required.

Faster Means of Learning

It can be argued that as compared to the traditional methods of English language learning, the activities arranged through the language lab softwares are around fifty percent faster in terms of their quickness of learning. In this speed up process of the learning, now you can see the drastic change in teaching and learning methods. The optimum utilization of up-to-date technology makes the digital language lab learning process more speedy, active, and productive.

The aforementioned selective advantages of learning English language through digital laboratory highlight how these labs with their advanced and ample study materials stimulate and also alters the students' thought process and way of thinking towards learning a foreignèka second language in the age of competition to connect themselves internationally.

VI.The Role of Language Laboratory Teacher in Learning English as a Second Language

Furtherimportant issue this paper raises is the role of language laboratory

teachersin the Modern Language Laboratory. The teacher plays an important role in the successful installation and running of any language laboratory be at school or collegiate level. The teacher, at digital language laboratory, remains very responsible for utilizing his knowledge and abilities to monitor the students. As compared to the other subjects, English language laboratory requiresthe devoted teachers because the use of technology can make your learning process easy, however, it doesn't eliminate the role and significance of the teacher. The effectiveness and successful results in the delivery of modules and learning content is possible only when the teacher's knowledge meets with the study material and tactics available in the software employed for the teaching.

The ideal language laboratory teacher should be a motivator and role model for the students who must be good at pronunciation and sharing his phonological competence. In the light of this, it is crucial to state that mere audio-visual exercises available in the students' console,cannot assist students to witness learning experience unless it is constantly monitored and evaluated by the concerned teachers.

In Indian scenario, from the initial stage of schooling, English is learnt as a second language extensively.However, it is found that many Indian students study English for the sake of getting good marks in the examination, rather than learning it to develop their communicative competence.The studies in this context prove that, though, Indian students do possess the theoretical aspects of English language, they are not up-to-date in the situational use of it. This scenario underlines the dying need of a skilled and technically sound teacher who can cultivate the major four skills such as LSRWs by assigning, practicing, and evaluating software based interactive exercises. Thus, a good teacher hogs the credit of furnishing the most important skill, i.g., speaking,by producing the right milieu, and relish to attain command over it.

The dedicated teachers of language laboratories, especially working in the professional institutions, assist their students for campus recruitment. They are expected to facilitate the learning strategies of English for their students. The success of any language laboratory teacher resides in his personal capabilities such as being imaginative, advanced, and trendsetter of unique doings. These capabilities of a good Language Laboratory teacher boostthe students' confidence to absorb the essentials of English language effortlessly. In addition to this, the responsibilities of an ideal laboratory teacher comprise eliminating the English speaking phobia of the students and enhancing the positive outlook amongst the English language learners. The various interactive activities such as Oral Testing, Group Discussion, and Role Plays can minimize this phobia of the students and make them confident.

If not the teacher is self-motivate, committed, and honest towards his job improvements amongst hisèkher students is just impossible. In a nutshell, a teacher can be a role model for his students and performs his role perfectly if he is welcoming and amicable with his students and analyzes the demands of them for reinforcement of their communications skills.

VII. Conclusion

It is crystal clear that Modern Digital Language Laboratories do contribute in the overall learning experience of the students who aspire to learn English for their professional job prospects. The English Language Labs, in the 21st century, serve as a remedy for the conventional scenario of English language learning. If Language Labs are installed, monitored, and run properly they can serve as a boon for the non-native learners from the students like India. Though there are some challenges in setting up language labs in all schools and colleges in India, we cannot overlook its pros and cons in the learners' language proficiency. It gives an opportunity for the English language learners to absorb the expected communicative competence. Thus, it is quite considerable that in today's technical generation language laboratories grab students' attention and concentration the upgrade their language skills with enthusiasm and involvement.

Reference

1. Abdelaziz, M. The Role of Language Laboratory in English Language Learning Settings; English Language Teaching, Vol.10, No.2; Canadian Center of Science and Education.2017.
2. Hashmi, S. Need of an English Language Laboratory in Engineering Universities; International Journal of Computer Science and Network, Volume 2, Issue 5. 2013
3. Konar, N. English Language Laboratories: A Comprehensive Manual: PHI Learning Pvt.Ltd.2011. Pandey, PKS. Developing speech skills, FORTELL: New Delhi.
4. Richard, J.C. and Rodgers, T. Approaches and methods in Language Teaching, Cambridge: Cambridge University Press. SIIA report 2000. 'The Software and Information Industry Association' http://www.siis.net.

Email: dbthorbole@gmail.com

Effects of Environment on Workers in 'And a Threefold Cord'

Dhanshri Shashikant Bhadalkar
Department of English
Yashwantrao Chavan Mahavidyalya, Pachwad

Abstract

Alex la Guma shows real condition of Pauls family in terms of family members Charlie, Ronald and Caroline in the novel 'And a Three- Fold Cords'. The environment becomes bad for the workers and Pauls family. Rain becomes violent and its drop becomes more violent for the workers.The condition of the workers is portrayed which is horrible. The environment and its bad effectlike stormy weather and how Pauls family affected by it. This paper is about horrible environment and its bad effect on the mind of workers is shown by the writer

Introduction

The living thing and non-living things created by Nature itself. The animals takes breath similarly man takes also breath. They are totally depended on Nature. How the nature can become enemy of man as well as animals also. The condition of working class is presented by the author and how they challenge to life itself., Because Nature is totally against them. The novel is portrayed bad effect of environment and stormy rain and its terrible drop thorough the whole of roof of Pauls family.The workers are living in Ghetto of Cape Flats, in bad poverty condition.

The novel'*And A Threefold Cord'* presents environmental effect and issues of violence and politics related to workers and the characters in the novel struggles against Nature because rain falls continually and the Pauls family witnessed against each incidents.

This novel is published in 1964 and is set in the Cape Flats, an impoverished area near Cape Town. It depictsthe miserable condition of the dirtypeople in terms of class inequality and economic exploitation , apartheid system. The writer shows the miserable condition of Pauls family members. They have no their own home living somewhere in Ghetto. There is inequality and racial discrimination which spread like infection.The book is a critical analysis of Workers and their family which ere living in bad weather and stormy rain.In this novel Pauls family is mentioned, the characters are Dad and Ma Pauls, Charli and Ronald their son and Caroline their sister.They are living life a very happily in stormy rain. Chalrie always gazes at drop of rain which falls through the whole of roof. This family live in a miserable

three-roomed "pondokkie"in the Cape Towns.. In the beginning of the novel the rough weather threaten to the miserable condition of workers. They are working in factory, Gold mines and happy within it, but bad weather and horrible rain makes their life devastated

Working class depicted and portrayed by author in terms of their failure, poverty, economic deprivation,unavailable facility, inadequate diet and medicine. Charli is very positive member of Pauls family.He tries cope with the Nature and its bad effect. He loves his family very much and encourages to live life happily in this stormy rain.. It indicates that workers still struggling colonization apartheid system, marginalization and racial discrimination. On the one hand they fight with the bad environment and its effect and on the other side they faces colonization and inequality..

Research Methodology

The present paper is being related to the issue of environment as well as violence and politics by the colonizer, the methodology are used textual , interpretative, analytical and descriptive for this paper.

Environmental bad effects on Workers

In the novel many aspects are described by the writer like Rain, Violence, Politics and environment. Dad Paul is bed-ridden and sick with the disease, could not sit properly, and rain takes his life very crudely. The workers are totally isolated from the colonizers, they are enemy of Nature as well as Britishers. They faces many bad things, very importantly bad Environment and stormy rain. South Africa is colonized by Britisher, it is a multiracial country like Whites, Blacks, Coloured people etc. These workers belong to the blacks and coloured people.The writer depicts the central role of workers and how the Nature dominates over them.. It is the story of the Pauls family and their drenched life by the stormy rain. All workers lives in Ghetto, it is a slum area of South Africa. The family is living in a bad condition, nobody can tries to cure them, they are their own doctor, One incident depicted by the novelist Dad Paul dies in a drench condition , rain takes his life and reaches him to the grave.

Nature as Enemy

1. The horrible onslaught of bad weather on the life of Pauls family

2. Workers encounters onslaught of bad weather, and Nature itself become hostile forceand enemy as cruel.

3. Devastation of workers lives and how police convoy and comes in the darkness and tortures workers in Ghetto.

4. Literally,, rain and wind preside over the police raid

5. Oppression of the colonizers and bad Environment in the mind of Pauls family.

Workers family

The novel portrays working class condition and bad weather and its effect in the mind of the children also. They also faces the stormy rain and lives a life in drenched ghetto. The purpose is also to show how the micro-environment of the

family is affected by the exploitative and oppressive society around it. Exploitation, economic deprivation, education and other things discussed analytically by the author.The effect of these things minimize the life of the workers. The Pauls are shown by the writes as a typical working class family, and struggles for the life opposing the bad weather. A drop of rain becomes horrible for Pauls family according to Charlie. He just analyze the members and especially Nature. He is optimist and ready to face the stormy rain , he knows better that rain never stops.Their life will finish, but rain never. When Dad Pauls dies, charlie had no water to bath him properly even after his death, Caroline was pregnant , and new born baby kept on the bed of newspaper and rags, such condition of African people are noticeable, and writer ants to focus our attention to it.The Pauls family is a typical middle class and very unsophisticated.There is strong relationship and friendship between Chalrie and George Mostert. These workers endures effect of bad weather and colour discrimination.Still there is bonding of these two friends.They are separate by colour and skin but tolerated the horrible effect environment and stormy rain.

The novelist gives focus on the economic deprivation on the lives of the inhabitants of the ghetto. For the Pauls it means an inadequate diet, poor living quarters, poor sanitation, non-Old Dad Pauls forced to live in a drenched and bad environment in his bad condition. Finally he dies without any treatment because in Ghetto no any facility like Doctor, Medicine ,Proper diet. He finally dies without proper medical attention. Caroline is the daughter of Dad Pauls keeps her baby on drenched bed. One lady Freda loses her house and children I a fire accident. Such adversities falls down on working class people

In the novel we find horrible environment and its terrible effect on the lives of a working class family and how they faces economic deprivation segregation oppression of the colonizers, poverty etc. And such things are brings to notice to the readers by the writer. He analyse the condition of working class in South Africa somewhere Ghetto.

Conclusion

The novel is about the multiracial phenomena and the bad environment and stormy rain which take precious life of workers as well as Whites because Nature is Equal to bot of then, no issue of whether he is White and Black. Charlie is being an optimists lives his life positively and faced adversities

Works Cited

1. Guma, Alex La. *And Three Fold Cord*èk East (Berlin) GDR Seven Seas Publishers (1964)
2. Balutansky, K. *The novels of Alex la Guma: The representation of political conflict.* Washington: Three Continents Press, (1989)
3. Fraser, John . Violence in the Arts . London: Cambridge University Press, 1976
4. Ananad Vashali. Environment and Ecology. Mc Graw Hill, 2020.

Webliography:
http://www.britanica.com/biography/Alex-La-Gumm

Mob. 8767605594
dhanshri.bhadalkar@rediffmail.com

Balram, a Subaltern in Aravind Adiga's *The White Tiger*

Mrs. Gaikwad Rajashri Dattatraya
Assistant Professor
Department of English
Yashwantrao Chavan Mahavidhyalaya, Pachwad

Abstract

AravindaAdiga's *The White Tiger*presents the problem of subaltern with the help of the character, BalramHalwai. He is transformed fromLaxmangarh, to Delhi. The novelist is trying to stress on the reality that subaltern can speak through crime. According to Law and Order, Murder is an evil and wrong act in the society. Mr. Ashok Sharma is a successful entrepreneur in the city, Bangalore. Balram's life from village to city is an important turning point in his life. His change in life is a very important incident in the novel. Balram's murder is the outburst of calmness. The subaltern can speak, he proves through this murder. He had evil experiences as a driver in the city like Delhi.

The marginalization, pollution, the routine of life, changed structure of family and society, the emergence of the underclass, etc., are examples to present the Dark image of India.In the novel, '*The White Tiger'*, AravindAdiga has portrayed the different images of India; there are two India's - India of Light and India of Dark but Adiga gives importance to the dark India. Adiga very effectively presented the dark side or the evil things in India like superstitions, traditions, customs, poverty, education system,the condition of Civil Hospitals and Doctors etc. Sudheer Apte finds the most enjoyable part of the novel is effectively observed the world of have-nots in India with his keen observation and sharp writing Adiga takes us into BalramHalwai's mind, whether we want or not.The people of big bellies and people of small bellies are presented as rich and poor class people in society. In an interview, he was asked 'how he got the inspiration for BalramHalwai and how hegot his voice and daring. He replied Balram Halwai is a composite of various men I've met when traveling through India. I spend a lot of my time loitering about train stations, or bus stands, or servants' quarters and slums, and I listen and talk to the people around me. There is a kind of continuous murmur or growl beneath middle-class life in India, and this noise never gets recorded, Balramis what you'd hear if one day the drain and faucets in your house started talking.

 ISSN 0975-735X

To sum up, Adiga's *The White Tiger* provides a sample of gross malpractices in Indian democracy and society. It is a social criticism focusing on the poverty and misery of India and its religious-socio-political conflicts, existed in humour and irony. Gross violation of people's liberty and equality, poor-rich divide, untouchability, utter sufferings of the subalterns and anarchism is the theme of the novel.

Adiga focuses on a man's ruthless exploitation of the system even as it deals with sub-themes of corruption, crime, and illiteracy. He thinks that today's politics is degraded, and the poor people are dominated and humiliated by the politicians and elite sections. As he visited many northern places, he came to know the problems of poor people. Stuart Jeffries says that "In northern India, politics is so corrupt that it makes a mockery of which kills 1,000 Indians a day, but people like me-middle-class people with access to health services that are probably better than England's-don't fear it at all. It's an unglamorous disease, like so much of the things that the poor of India endure". Though the novel deals with politics internally, Adiga says, that he never intended *The White Tiger*to be a political or social statement. "It's a novel-meant to provoke and entertain its readers but there is something I'd like my readers to think about. I'm increasingly convinced that the servant-master system, the bedrock of middle-class Indian life, is coming apart: and its unravelling will lead to that is on the brink of unrest". Stuart Jeffries says that he was inspired to write this novel by the three great African-American twentieth-century novelists-Ralph Ellison, James Baldwin, and Richard Wright. He says about them that they all write about race and class, while later black writers focus on just class. Ellison's Invisible Man was extremely important to me. That book was disliked by white and blacks. His book too will cause widespread offense;Balram is his invisible man, made visible. This white tiger will break out of his cage.

Balram, the protagonist of the novel, introduces himself as a Bangalore-based entrepreneur, reveals the secret of entrepreneurs which come from half-baked clay and calls himself as half-baked Indian. He lives in the village of Laxmangarh, a fictional village in a community deep in the 'Darkness' of rural India. Though he is clever, his financial crisis impels him Munna which means 'boy' in Hindi, whereas his school teacher Mr. Krishna gives him a new name Balram which refers to the brother of the Hindu god Krishna. As a half-baked person, he observes corruption in his school and says that

There was supposed to be free food at my school-a government program gave every boy three rotis, yellow daal, and pickles at lunchtime. But we never saw rotis, yellow daal, or, pickles and everyone knew why: the schoolteacher had stolen our lunch money…Once, a truck came into the school with uniforms that the government had sent for us; we never saw them, but a week later they turned up for sale in the neighboring village (TWT, 33).

Balaramwants to become a unique person and a white tiger. When his father, Vikram, is unwell, he takes him to a hospital where he cannot find any doctors. His father dies of T.B. in the hospital. After a few days, he leaves the tea stall and wants

to learn driving to get more money. After some upheavals, he gets a job as a driver to a rich family and moves to New Delhi with his master Mr. Ashok. He lives in a new apartment called Buckingham Towers A Block, which is one of the best in Delhi. Ashok likes to visit new places and spends his time in visiting malls, along with Pinky Madam, his wife. Balram's job is not only to drive the car but also to carry all the shopping bags as they come out of the malls.

In Delhi, Balram is surprised to see the clean roads and big buildings but he does not like the apartment which is very congested. He is very much fascinated by a magazine Murder Weekly which contains stories of murders, rapes, and revenge. As other drivers read the magazines, he is habituated to read it and says that "a billion servants are secretly fantasizing about strangling their bosses-and that's why the government of India publishes the magazine and sells it on the streets for just four and a half rupees so that even the poor can buy it" (TWT, 125). The mean and stingy behavior of the rich is shown through the lost coin episode where Ashok's brother Mukesh, (throughout the novel he is called Mongoose), insults Balramfor not having retrieved a rupee coin after bribing someone with a million rupees "Get down on your knees. Look for it on the floor of the car"… 'Don't think you can steal from us just because you're in the city. I want that rupee." 'We've just paid half a million rupees in a bribe, Mukesh, and now we're screwing this man over for a single rupee. Let's go up and have a scotch.'(TWT,139)

In the morning and evening hours in Delhi, many vehicles jostle on the road. The traffic grows worse day by day which makes Balaram a little bit of nervous. It is an eye-opening experience for him. He is degraded as a human being and not allowed to enter a shopping mall. A poor driver cannot enter a mall as he belongs to the poor class. If he walks into the mall someone would say "Hey, That man is a paid driver! What's he doing in here? "There were guards in grey uniforms on every floor-all of them seemed to be watching me. It was my first taste of the fugitive's life". (TWT, 152) As he drives his master and his wife to shopping malls and call centre, Balram becomes increasingly aware of immense wealth and opportunity all around him, while knowing that he will never be able to gain access to that world. Through these experiences, he learns much about the world and later states that the streets of India provided him with all the education he needed, but he is trapped in an accident case to save Pinky Madam who kills a man on the road in drunken driving. He is forced to sign a statement accepting full responsibility for the accident.

When Ashok knows that his wife has left, he scolds, humiliates and beats Balram who drops Pinky Madam at the airport. Pinkey's absence throws Ashok in a nervous state. After a few days, he tries to forget Pinky by visiting the malls and enjoying life with girls. He is witness to all the things that Ashok does such as visiting the red-light area in search of a prostitute and bringing liquor and women for the men and entertaining people by serving liquor while driving with on hand. He searches for strands of golden hair of women who frequently travel with Ashok in the car and has sex.

Having been a witness to all of Ashok's corrupt practices and gambling with money by politicians, to kill and to loot, he decides to do the same. Adiga delves deep into his subconscious as he plans to loot Rs. 700,000 stuffed into the red bag. Go on, just look at the red bag, Balram-that's not stealing, is it? I shook my head. And even you were to steal it, Balram, it wouldn't be stealing. How so? I looked at the creature in the mirror. See- Mr. Ashok is giving money to all these politicians in Delhi so that they will excuse him from the tax he has to pay. And who owns that tax, in the end? Who but the ordinary people of this country-you! (TWT, 244) The monologue makes Balram think seriously to steal the money and kill his master. The writer brings out powerfully Balram's unexpressed thoughts in several conversations punctuated with soliloquies. The stream of consciousness leads him to justify his plans of murder with growing meanness of Ashok in treating him. He has planned to confess his criminal thoughts, but Ashok interrupts him thinking that he might ask him for some money to get married.

Balram finally decides to kill his master for money. Indeed, Ashok's participation in funding political corruption makes Balram become an entrepreneur. One day as Ashok carries seven hundred thousand rupees in cash as bribes for politicians in New Delhi, Balram decides to murder him. As Ashok's throat is slashed, he dies on the spot. Balram steals the money and escapes from there to Bangalore with his cousin Dharam. With the seven hundred thousand rupees he stole, he creates his own taxi company and changes his name to Ashok Sharma. Thus he becomes a wealthy entrepreneur in India's new technological society of the Light, namely, the world belonging to rich people who live in large urbanized cities.

Adiga shows the modern India which is brutal, totally corrupt and unjust, where people behave like animals and everything is for sale: far distant from the shining India that we discuss in our day-to-day lives. He tries to show the real India that we can see in the Oscar award Hindi movie *Slumdog Millionaire* which is based on the novel "Q &A" written by VikasSwarup. Modern India is full of illegal activities, corruption, injustice, illiteracy, discrimination of caste, religion, and race, and this is pointed out as the main theme of the novel. Adiga unfolds the difference between what India really is and what it appears to be. He states: "I tried to tell a very real story about India on the brink of unrest. I tried to challenge the assumptions that many in middle-class India hold about the poor: that they are stupid, easily manipulated, religious bound by caste and family." In an Interview, Shobhan Saxena says, "At a time, when India is going through great changes and, with China, is likely to inherit the world from the West, it is important that writers like me try to highlight the brutal injustices of society" (2008:9). It is not an autobiographical novel. ShobhanSaxena again adds, "I don't think a novelist should just write about his own experience. Yes, I am the son of a doctor. Yes, I had a rigorous formal education, but for me, the challenge as a novelist is to write about people who aren't anything like me." (2008:9)

India is a country where various religions, sects, and beliefs go hand in hand

through the 'alter' of a particular sect becomes the food of another. None ever rises eyebrows on such other agents may have misused those religious rituals and principles to serve their own purpose is a different matter. But Aravind Adiga in his novel misinterprets and devaluates some religious symbols and beliefs. He may not have believed in one God, or 36,000,000 Gods or Goddesses as no one forces to be a believer in God in India. It is such a country which stands as the best example of democracy in the world not only in political life but even in social and religious life. The novelist mentions the number 786 which, according to him, the Muslims consider it as a magic number that represents their God. This is confusing whether the novelist deliberately delineates such meaning to this number, or he lacks knowledge about its significance. It is said that every letter in Arabic alphabet has a numerical value and Muslims used to be their day to day work with the name of their God in an Arabic sentence 'BismillabirRabmanirRabeem' which means 'being with Thy name, the most Merciful'. The total summing up of the value of all the Arabic letters used in this sentence stands the number 786 which the Muslims usually put ahead of everything, signifying nothing magical.

References:

1. AravindAdiga, 'The White Tiger', Atlantic Books (UK) HarperCollins (India), 2008
2. Deswal,Prateek, "A Critical Analysis of AravindAdiga's*The White Tiger*" A Socio-Political Perspective Language in India www.languageinindia ISSN 1930-2940 Vol. 14.12 December, 2014. P 212
3. http://bookreview.mostlyfiction.com/2011/last-man-in-the-tower-by-aravind-adiga/
4. http://books.guardian.co.uk/books/Octèk15/bookerpriceIndia/19.04.2008
5. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/130475/11/11-chapter 5.pdf
6. http://www.complete-review.com/reviews/Indiaèkadiga.htm
7. http://www.iosrjournals.org/iosrjhss/papers/Vol20-issue12/Version-4/G0201245660.pdf11/5/2018
8. https://gulfnews.com/literature-is-the-mirror-of-society-1.86134 12-5-2018
9. https://telegraph.co.uk/news/worldnews/asia
10. https://repository.asu.edu/attachments/110510/content/Glady_asu_0010N_12924.pdf
11. Jadhav, Prashant."AravindAdiga's*The White Tiger*: A Search for Identity", New Man International Journal of Multidisciplinary Studies, Vol. 1, No. 4,April2014. www.newmanpublication.com
12. Jeffries, Stuart.www.theguardian.com/books/2008/oct/16/bookerprize Thu, October 16, 2008
13. Kapur, Akash. "Bombay Confidential", The New York Times Book Review, Nov 7, 2008 http://www.nytimes.com/2008/
14. Mahadevan-Dasgupta,Uma.*Frontline,* November 7, 2008

Discourse of Individuality and Ethnic Hostility in Pankaj Mishra's *The Romantics*

Dr. Jahangir Abbas Mulani
Mr. Anandrao Tukaram Khade
Assistant Professor, Assistant Professor
Balwant College, Vita.Balwant College, Vita

Abstract

Pankaj Mishra's writing shows a noteworthy effort which is intensely associated with the issues and themes related with colonialism, multiculturalism, nationalism, self-identity, gender issues, and globalization. It takes part in the ideas of living among the people of East and West from Indian backdrop and customs revealing the discourse of individuality and ethnic hostility. It is a subtle social dictum on caste, class, sectionaldiscord, and state of nation artfully revealing the story of Samar, a young fellow spending his life in limited means and loosing himself in the world of books. The novel is a story about the individuality and focuses hostility between two different value systems. It throws light on the patronizing sense of supremacy shown by the West over the East, a sentiment which is preserved by those who assert to embrace an attraction towards the East, looking for decreasing it's rich and varied traditional legacy into an easy set of clichés and prosaicisms, by demeaning its principles, individuals and practices creating the barriers between individuals from these cultures.

The debut novel *The Romantics* by Pankaj Mishra pictures the story of the isolated and reserved protagonist named Samar and his time in the divine city of Benares. The place itself is extractedcharmingly, its liveliness carried boom in gunderneath a discord of colors, of pink-shaded sunsets and the stunningreplications of the summer sun on the waters of Ganga, the holy river in India. The central character Samar tries to find himself against the Western characters Miss West, an old woman, and Catherine a French lady who is in relationship with Anand. They break up apart due to individuality and hostility among their approaches.

The novel begins with the description of the city Benares and its beauty. The party at Miss West's house comprises the guests, friends and shows many people in her guest list but at the end inviting a handful of them. The gathering includes variety of people having their own stubborn opinions and characteristics. The amalgamation of East and West people trying to cope up with the people of different cultures and traditions reveals their own identity and ethnic hostility. When the party begins

people start arriving one by one introducing themselves. Miss West introduces Samar to others by mentioning that he is a person who wants to read everything. Then she turns herself towards the sitar player namely Anand and seems to be very critical about him as her questions to Anand reflects it. When Anand arrives at the party Miss West asks him:

'Are you treating Catherine well?' Miss West asked him, and he replied in a tone of mock complaint and with a heavy Indian accent: 'But, Miss West, she must learn to cook.' And Miss West, still bantering, said, 'You sexist Indian men, you never change, do you?' (12)

The above conversation speaks a lot about the values and principles these two characters represent. Anand expects that Catherine must learn to cook which shows typical Indian patriarchal approach and by stressing the thing out he tries to keep his individuality that implies hostility towards Western culture. On the other side Miss West too replicates her individuality and hostility towards East and the other culture by charging Anand as sexist Indian who's approach never changed.

Another distinct character who always tries to assert his individuality by showing ethnic hostility is Mark. He studies 'alternative' medicine in Benares. Mark represents himself like a high valued man who pursued various careers and experienced different stages of life. His career as a poet, dishwasher, painter, Tibetan Buddhist, carpenter, and traveler made him apart and he feels that though India is famous for spirituality, it lags behind in sincerity of efforts at achieving it. While in conversation with Miss West, Mark reveals his plan as:

'You know, one of the great things for me about coming to India has been knowing about poverty and pain and suffering, and realizing that there is a whole world outside America where people don't even have the basic things in life.' (15)

The way Mark remarks about India and compares it with America shows his approach towards East. He puts his individuality and ethnic hostility by looking at other country as the place to experience the suffering and poverty. He feels pride in the fact that his own country has nothing like India that boasts of its tradition and rich culture of spirituality. Though Mark came to India to get the knowledge of alternative medicine in Benares, he never accepted the greatness of its originators. He couldn't resist himself to reveal his approach and individuality which shows ethnic hostility.

As the novels proceeds forward, it introduces more characters who assert their individuality and ethnic hostility. The discourse of these two facets of life is represented starkly by Rajesh, a leader in university. Rajesh represents himself as a rebel. He always puts himself in opposition with the ruling regime by Nehru and Gandhi family. According to him these two families had caused a great damage to India. Corruption in India increased due to the ignorance of Nehru. Whatever he speaks about it always contains misleading information but he never stops being illogical and untruthful. He charges attack on Nehru-Gandhi until he gets stopped by tea vendor. Rajesh never loses a chance for showing his individuality and ethnic hostility.

A few students passing by the tea stall noticed Rajesh and instinctively bowed their heads in greeting. Rajesh responded with a faint nod. I noticed all this and became even less sure of what to make of him. The admiration for Faiz, the pistols, the Godfather like status, the monologue denouncing the Nehru-Gandhi dynasty- he had left a mixed impression on me. (32)

The novel shows the distinct features of human when it reveals the innate nature mankind to establish its own identity. The ways and forms of differentiating oneself change as per the situation demands, but the tendency of inserting own identity and individuality never stops. People make use of every aspect of hisèkher life to distinguish and prove apart from others by establishing their own identity. When the characters in the novel tries to set their individuality in opposition to people from other countries, they make use of their geographical boundaries by which they confine themselves within borders and treat outside people as 'others'. This is one of the ways they try to establish their individuality and in the process they become ethnic hostile to the so called 'others'. But it never stops within the boundaries as well and it is so apparently posturized by Mishra in the novel. Every character puts its individuality by stating the points of their individuality, sometimes by distinguishing themselves from 'others', or by distinguishing themselves from 'others within'. The 'others within' are their own people residing under the same geographical area. But here the aspects to distinguish themselves change; and they use religion, caste, wealth, ethnicity, culture and tradition as the parameters to establish their own identity.

In the novel when Miss West proposes the boat ride in the evening, Samar agrees to go with her. When Miss West and Samar visits the river she introduces the boatman Ramchand as her own favourite. Samar finds the boatman strikingly handsome man with beautifully sculpted muscles on his lean, and with chocolate-brown body. At the time of ride Miss West though is an outsider treats Ramchand without any differentiating point of view. But at the same time Samar though an Indian never identifies himself equal, as Ramchand belongs to the lower caste; and this instance can be seen as the discourse of establishing the identity and ethnic hostility.

Although I spoke the same language as Ramchand and lived in the same country, the scope for conversation between us was limited. Countless inhibitions of caste and class stood in our way; the only common vocabulary between us was of the service he offered. (38)

In the novel every character finds out his/ her own way out to establish their individuality. The boat ride indulges the discussion of Miss West of another character in the novel, Mark as they pass by his house on the banks of river Ganga. According to Miss West, he is a nice chap, but so American. She blames him for being over sincere about everything he does. The key point she wants to focus is the over sincerity of Mark about the relationship he is having with perfectly ordinary girl, Miss Debby. She is very critical of Debbie as she just wishes to be sunbathed and

have a great tan and then wanted to get convert to Buddhism which does not make any sense as per Miss West's perspective.

When their boat ride finishes, it becomes almost dark, and walking through the darkness behind the jovial pilgrims from Tamil Nadu, Samar asks Miss West about Debbie.

'Where's Debbie from?' It was the question accustomed to ask people in India. The answers usually helped put their backgrounds in sharper focus. (41)

All such conversations between every character in the novel tries to figure out their individuality by distinguishing themselves from others making use of the convenient parameters.

Miss West finds it awful when she learns the story of Anand and his family. Catherine tells her that Anand's parents had two daughters and to get them married they need good amount as dowry because they belong to the caste in which the rate of dowry is very high.Anand wants to pursue his career in music but his parents insisted to help them getting their daughters married off by getting a salaried government job somewhere. But they disown him when Anand refuses their proposal and declares his wish to go to Benares to seek his music talent. Due to this Anand was beaten up by his father many times to change his decision and obey what they say.

Catherine said that it had indeed happened-not once or twice but several times. 'And', she added, with a sudden sharp edge of passion in her voice, 'this was when he was already eighteen years old.' (52)

The conflict between identity and then the hostility out of it has its own impact. Most of the times it creates harmful issues for human beings and becomes threat to human relationships. The relationship of Anand with Catherine is a best example of this. Anand belongs to a village in India and his family is a radical follower of the customs and traditions of typical patriarchal value system of Indian society. When Catherine visits Anand's village in Bihar, they did not treat her well and were suspicious and angry.

Poor girl, she was in tears. But that's something she'll have to live with. You can't expect people like Anand's parents to change: they'll always disapprove of her, and in some sense that disapproval is important to them. It's part of their identity; they can't let go of it. (54)

Every character is unique in its own way and establishes its individuality by this or that way. Jacques, a friend of Catherine has different notion to look towards the life in general and study the truth in particular. He is a tall and handsome fellow with a permanently distressed appearance. The impression we get when he asks or discusses something is of serious intentions and historical context. Samar finds it difficult to understand what wanted to get when Jacques inquires about Gandhi.

His great desire was to explore the 'real' India- the Gandhian India, as opposed to the 'fake' India he said lazy tourists saw. (90)

In this way, the novel develops the discourse of individuality and ethnic hostility

through various characters. Pankaj Mishra successfully painted the picture of individuals showing their own colours of approaches though living together in the multicultural society establishing their own individuality.

Bibliography:

1. Mishra, Pankaj. The Romantics. Penguin Books India, 2013.
2. Abrams, M.H. /Harpham G.G. A Handbook of Literary Terms, Wards-Worth -Cengage Learning India Private Ltd. New Delhi, India, 2009.
3. Agarwal B. R. & Sinha M. P. Major Trends in Post –Independence IndianEnglish Fiction. New Delhi, Atlantic Publishers, 2003.
4. Bhabha, Homi. "Of Mimicry and Man: The Ambivalence of Colonial Discourse", Modern Literary Theory: A Reader. Eds. Philip Rice and Patricia Waugh, London, Arnold, 2002.
5. Dasenbrock, Readway. "Intelligibility and Meaningfulness in Multicultural Literature in English". MMLA, Vol. 102, No.1 (January 1987).
6. Thormann, Janet. Journal for the Psychoanalys is of Culture and Society, 20 Triandis, Harry. Cross-Cultural Research. 1993.

Theme of Discrimination in Jessie RedmonFauset's Comedy: American Style

Kathare Ganaraj Narayan
(M.A.,B.Ed.,SET.,NET)
Assistant Professor
Dept. of English], Balwant College, Vita

Abstract:

Discrimination is a human tendency. People treat each other superior or inferior based on different aspects like race, class, caste, color, gender, income, age etc. No country is an exception to this. American people map each other based on race, color, and gender. This discrimination begets feelings of inferiority, insecurity, anxiety, resentment, protest etc. The writings of Langston Hughes, Claude Mckay, Zora Neale Hurston, Wallace Thurman, and Jessie RedmonFauset emphasize the contemporary socio-political issues. The present paper aims at to study Jesssie Redmon Fauset's novel *Comedy: American Style* in terms of this discrimination. This novel is written during the period of the Harlem Renaissance. It focuses on the theme of discrimination especially based on color difference.

Introduction:

Jessie RedmonFauset was an African-American editor, poet, essayist, novelist, and educator. Her Literary work helped to frame African-American literature in the 1920s as she focused on portraying a true image of African –American life and history. She was one of the well-known novelists in the Harlem Renaissance. Her writing captures themes like racial discrimination, "Passing", and feminism. She wrote four novels: *There is Confusion(1924),Plum Bun (1928), The Chinaberry Tree (1931),* and *Comedy: AmericanStyle (1933).* Meanwhile, she worked to explore contemporary issues of identity among African Americans, including issues related to the community's assessment of skin color.

Defining the term 'Discrimination':

Discrimination means the unjust or prejudicial treatment to different categories of people, especially on the grounds of race, age, sex, or disability. It is a human tendency to treat others down is a mental set-up of men and women. There are various reasons of discrimination. In America, people werediscriminated on the basis of race, color and even sex also. In Indian context there are some other causes of discrimination such as the rich and the poor, higher caste and lower caste, religions, disability etc. Discrimination makes people weak, sick and alienates them from the mainstream. There are different types of discrimination as gender

 ISSN 0975-735X

discrimination, race discrimination, color discrimination, nationality discrimination, language discrimination, caste discrimination etc. Feelings of rejection, depression, insecurity, hopelessness, meaninglessness, anxiety are the results of discrimination. Finally it leads to protest or escapism.

Application of theory:

All the major characters in the novel *Comedy:American Style* are the victims of discrimination. Olivia is the central character in the novel. She is a daughter of fair colored mother Janet and black father named Lee Blanchard. She almost hated her parents and asked questions to herself,"How could they have made her colored? How could they lead the merry, careless life that was there with this hateful disgrace always upon them?" But in Olivia's mind there was a plan. Olivia was obsessed with living like the whites. Janet thought about going to a colored church, of playing a quiet game of whist in a decent colored parlor with its family album and what-not; of gradually working one's way into membership of small committees, of receiving the polished, if not always grammatical, gallantries of colored men all these things bore for Janet's imagination, but these things were nothing to Olivia.

In her mother's lodging some students were staying, one of them was Christopher Cary, who was studying medical.After observing and guessing the future of Cary, imagining the future of her children, Olivia married Christopher Cary without any other reason.After marriage Mrs. Olivia Blanchard Cary started to live in a pleasant residence in West Philadelphia. She had a little daughter named Teresa, as usually her daughter was out of house with Phebe Grant and Marise Davies. After glancing out of the window Olivia immediately met them at the front door and she told other children to leave because Teresa doesn't want company today, in spite of that she is tired also. Meanwhile, Olivia was ready to permit Phebe to enter her home but not for MariseDavies, because she was colored. But a little Teresa was unknown about it. She liked her both friends but Olivia stated to her that

"*Now, Teresa, it isn't worth while going all over this matter again.I don't mind your having Phebe here; in fact I rather like Phebe. But I don't like to have colored people in the house if we can possibly avoid it"(p.34).*

Teresa told Olivia that Phebe is also colored. Her mother replied that she is colored but nobody would ever guess it. Meanwhile,in their conversation Teresa asked her mother why don't you like Marise Davies? Olivia answered "I don't like her," her mother retorted in exasperation.

"You don't understand these things, yet, Teresa. But you will when you're older…and you'll be grateful to me.I just don't want you to have Marise and people like that around because I don't want you to grow up among folks who live the life that most colored people have to live…narrow and stultified and stupid. Always pushed in the background…out of everything. Looked down upon and despised..." (p.36).

This dialogue indicates that Olivia is giving lessons of discrimination, directly or indirectly to her daughter.

Olivia and Christopher Cary had three children,Teresa, a daughter, younger Christopher Cary who was named after his father, and Oliver, a son who was named after his mother. Olivia was very excited before the birth of third child and she had decided she will call him after her name. She had imagined that her third child will be the most handsome, fairer than the other two children. She had even taken a promise by her husband that after child's arrival she will go to live with her little son to England and her husband had promised also. But after the actual arrival of the child she was shocked and surprised because he had the exact bronze gold complexion of Lee Blanchard, her father. She disliked this child because of his black color and she contrived not to be seen on the road with him. One day Oliver was coming out of the school and Olivia standing on the corner of Fortieth and Aspen street. He rushed towards her calling mother…mother but she did not recognize him and saw at him strangely. After coming at home he asked her mother "Mother, why didn't youspeak me? I called and called…."

"That's precisely the reason I didn't speak to you," she began coldly.

"What reason?"

"Because you called and called….You don't suppose I want my friends, my friends, those ladies, to think I was the- the mother of a wild Indian, do you?" (p. 200-201)

Olivia had never acknowledged her inadequacy as a mother. She regretted Oliver's birth. She thought Oliver meant shame to her. Olivia despised her own son Oliver because he was colored. When her husband told her that keeping a butler is not affordable to him, she persuaded her own son to be a butler and she told him to take orders from others and even from her as a hired butler because that type of work was done by colored people. Oliver followed this meekly because he was innocent, truthful and helpless. He was aware that his mother did not love him, his presence was unwelcomed. However, he got love from his grandparents, from his father, elder brother and sister. All the other members in the family were aware about the hatred of Olivia towards Oliver but they were helpless in front of Olivia.

After observing the talent and knowledge of her younger brother Oliver, Teresa told her dad that Oliver is the best of us all, if you give him the kind of training he will shine one day. But her mother restricted this thing and told it was not necessary for Oliver to send him to school apart from Philadelphia. After knowing the reality and suffocation of Oliver at home, Teresa, his elder sister had promised to take him with her after her marriage with Henry Bates, a colored person. She had disclosed her secret in front of her younger brother, due to this, though his mother hated him, treated him like a servant but he deliberately ignored these things and he imagined his later life with his dear sister. Teresa and Henry Bates tried to elope but unfortunately Olivia met them at the railway station, and asked about the matter. Henry confessed his love and told about their engagement and planned marriage. But because of his dark color, Olivia denied their relationship and even marriage and replied to him angrily. "I have brought Teresa up all her life to think of herself as white .Why

shouldn't I? Her father and I have scraped and saved and sacrificed to give her the proper environment and clothes and ideals so that when she grew up she could take her place in the white world…" He said evenly: "You mean by marriage?"

"Yes of course by marriage. How else could she get out of it? And why should she stay in it with you, never knowing when she is going to meet with insult, always having to take second place, never sure of shelter in a strange town, always weighted down by a sense of inferiority. If you were any kind of a man you wouldn't ask her to expose herself to it…just because you can't help yourself …"(p. 142)

Olivia had already planned her daughter's marriage with white person, so she persuaded Teresa to learn French. Due to this they sailed to France wherethey met Aristide, a professor at the University of Toulouse. Olivia told Aristide to persuade Teresa to marry him and he became successful in it.

Meanwhile, events moved swiftly, Oliver's father had left for hunting trip. He had told that to take two suits to the cleaners and better look through them for letters or bills. Oliver got a letter from his father's pocket, it was by his mother. She insisted her husband and son Christopher to come to live in France except Oliver. She had stated that

"If you and Chris would come and settle down over here we could all be as white as we look…if it just weren't for Oliver.I know you don't like me to talk about this…but really, Chris, Oliver and his unfortunate color has certainly been a millstone around our necks all our lives…. And now that Teresa is going to marry her Frenchman it would be easy enough for us to establish a pied a'terre here….You see my French is coming along too…" (p.221).

Though, Teresa had no love for him, she married a Frenchman because he was white man. After some days Teresa understood Aristide hates the colored and she wrote a letter to Oliver and expressed her inability to call him, to live with her. The last ray of hope shadowed and his dream to live with happiness was shattered, he recollected the past hatred incidents and in disappointment and frustration, at the age of sixteen he shot himself and committed suicide. Oliver became the victim of discrimination and ended his life badly.

Phebe Grant was a childhood friend of Nicholas Campbell, when they grew up they fall in love with one another. One day both had attended the party which was arranged by Marise Davies to give Teresa a farewell. After the party because of Nicholas' insists they walked on the street. As they passed the other two passengers she distinctly heard one to them saying "That certainly is a white girl with that coon!" She hoped Nicholas didn't hear them. As they passed through the quiet streets it seemed to her that he was unusually silent. (p.64).

Nicholas was a medical student. Professor Reading was colored, he had sympathy about colored students and people but if they stayed in their places. But when they got to chasing about after white women….Because Reading had seen Nicholas with a white woman, Phebe at George's Hill. Due to this he was not in

favor of Nicholas. Nicholas Campbell thought comfort in his life. He thought in Phebe's presence, he was, if surrounded by white Americans, without comfort. He might, he knew very well in some sections of the country be subjected to open insult, to possible danger. And the same might be true for Phebe. To persuade phebe and to tell the reality Nicholas had gone at her home and told that their marriage will be disaster for them. He clarified her that because of our color it will not be possible for us to live happily. He reminded her when they were together, people whispering, and staring when they've got into street cars, white women curling their lips at both of them. Due to this he was tired and sick. Though Nicholas loved her but because of fear of insult, taunting by white people he denied his love and shown disinterest to marry Phebe.

The issue of color difference affected the life of major characters in the novel. This color consciousness forced even the mother to deny physical bond with her own son, who was a colored person and she treated him like a servant. Her fair color did not allow her to accept her own children. Ultimately, she destroyed her own life as well as the future of her children.

Conclusion:

Thus, the novel shows how brutally this color consciousness destroys one's life. This color discrimination is part of their day-to-day life of the people and there is no escape from it. They have to carry the burden of being black throughout their life. In the era of information and technological development, it seems that society is changing. However, one cannot strongly say that there is not discrimination among the people. Today also on the certain level, we experience this discrimination based on race, color, income and gender.

Works cited:

Primary source:

1. Fauset Jessie Redmon, *Comedy: American Style*, New York: Fredrick A.Stokes, 1933.

Secondary source:

1. Singh Amritjit and Scott Daniel M.Ed. The Collected Writings of Wallace Thurman Rutgers University Press: London, 2003.
2. Du Bois, W.E.B. Black Reconstruction in America, 1860-1880, New York: HarbourScholars's Classic Edition,1956.

Webliography:

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Jessie_Redmon_Fauset
2. https://www.britannica.com/biography/Jessie-Redmon-Fauset
3. https://www.newyorker.com/books/page-turner/the-forgotten-work-of-jessie-redmon-fauset
4. https://www.amazon.com/Comedy-American-Multi-Ethnic-Literatures-Americas/dp/081354632X

Technology and its negative impact on human life in as seen in Manjula Padmanabhan's 'Harvest'

Madhuri Shrirang Patil
Subject: English M.A. SET
Asst. Prof. Balwant College, Vita

Abstract :

The paper explores the organ trade and its impact on poor sections of society. Its implications of a Mephistophelian deal with annihilation. The play portrays a dystopian nightmare of India. Where the unemployment,marginalized people sacrificetheir life for third world rich people. The Harvest is based on Organ trade theme where Donors are Indians and Receiver are Americans. The play deals with unequal power relation between the first world,Indians and third world which is American's.The plays Harvest present a war between machine and man. The playdeals withthe futuristic picture of modern world where the machines will replace with human beings. Protagonist Om Prakash destroy his all family members.

Manjula Padmanbhan born in 1953. She is well known for author, fiction writer, journalist, illustrator, cartoonist, and writer of children's books. She is famous as television and the stage writer. She returned to India to begin a career in journalism, after completing her university studies. She wrote many plays like 'Light Out!' in 1996, 'The Artist's Model' in 1995 and 'Sextet'in 1996. Her famous book of short storiesare 'Hot Death', 'Cold Soup' in 1915. Her book 'Harvest'had won the first Onassis Prize for theatre.

Harvest is a play by Manjula Padmanabhan set in the near future that deals with organ trading in India. The play examines the first Indian Science fiction play. Manjula Padmanabhan 21stcentury woman who is technocrat.She usedthe various techniques and tools of the modern world in the play Harvest. There is crisis between first world and third world, rich people and poor people, colonial and colonized people its relation between developing and developed country between India and America.

The term technoscope is used the play Harvest which is used on global configuration. It uses in high speed technology in Mechanical & informational. Technology intersects with the pattern of inequality & injustice especially in class boundaries. In the play we show the negative impact of globalization on particular groups, community and Region. Technology reduced the surgical risk to donors and the receiver. It is making painless transplant at the bio-medical level.

The Harvest is three act play. It is set of few years in the future in one room apartment in Mumbai chawl. The play revolves around the family of four character. Om, Jaya, Ma & Jeetu.Om is main protagonist of the play.The play starts with Ma and Jaya waiting for Om's returnto home of his daily job hunting .He loses his previous job because of his lack of computer skill knowledge. He join new job in Interplanta Services for the role of an Organ donor where he agrees to donate his organ to that company. In the play Guard arrives at Om's house to activate the installing process to set up module, sanities the house, kitchen gadgets, cooking device and other things. Every one now is used to that life is especially Om and Ma.Those devices act as a tool to control Om and his family members. Ginniis entering into Om's house throughthe module. Padmanabhan describes the contact module as 'White, faced globe'[1997,p.221]

Om is first world person who sells his all families to third world for the sake of only money. Even he has no idea about technologies and machines of Interplanta Service .He say's to his Ma-

"I went there because I lost my job at the company .And why did I lose it? Because Iam a cleark and nobody needs clearks anymore!There are no new jobs now-there's nothing left for people like us! Don't you know that."

In the play Ma is happy to Om's new job she is not bothered. she provided all facilities at home. A video couch is brought for Ma for entertainment because she stop interaction with another human beings. Ma has become live luxurious life with gadgets which provided by Ginni. Ma has ordered online video model which is setup by video couch after setting it up the agent helps to Ma to sit down in the chember which is like a capsule. They told to Ma that shefeelrelax as wellas experience with bliss. The agent shutdown the lid and sealedthose edges &lockedher. Now, Ma is completely delinked from outside world.

At last, when the moment of transplant was going to occur, the guards come to receive Om but Om has hidden under the table and guard by mistake grabs Jeetu as the donor.But the real donor was Om. Where Om has to signed the contract. Jeetu, Om's brother who is male prostitute . when Jeetu comes back he is blind and completely under the control on Ginni's custody. after eyes removed, transplanted had successful. Ginni says:

"Well-now! I'm glad you like me, 'coz you know what?Now transplants have started…."

Jeetu says,"A rich woman who plucked poor man's eyes out of his head-huh! That is not woman, It's demon"! This is fine example of poor people exploits by rich countries..Jeetu's eyes are enormous googles, created to look like a pair of imitation eyes. The play Harvest is futuristic stresses the potential of global capital to strengthen already profound division between first and third world subjects.Padmanabhan's Harvest not only illuminates the tribulations of the marginalized people in the Third World but also delineates how the much celebrated progress in science and technology turns antagonistic to the underprivileged. The

play blending between reality and science fiction with human and technology. The theme of the play revolves around facing problem in 21st century of the issue of organ harvesting for transplantation of body parts.

The play Harvest ends with Jaya's setting her own terms and conditions. She refuses to migrate, sold her body to foreigners. The play involve around the globalization, capitalization effect. In the Play America is the greatest financer for the needy people. Ginni, who is receiver of the body part who is rich American.She is controling the family of Om. All family members control on machine which is so called third world. At the end of the play, the audience can understand that the character Ginni is not real but just an animation. The arrival of Virgil becomes a turning point in the play. Virgil has a body of Jeetu and he wants to impregnate Jaya through a device with painless steps. But Jaya revolted against him by saying,

"I want real hands touching me." (89) Except Jaya, all the characters in the play are operated and controlled by the instructions of those first world cannibals. Only Jaya who is aware of those fantasy and atlast. she won the battle between the machines and human beings. To conclude, it is only the proper awareness and the emotional stability can make people be away from certain violence's. The play ends with Jaya setting her own terms and condition.

"JAYA : No! you listen to me ! I want to be left alone. I don't want to hear any sounds, and don't want any disturbance. I'm going to take my pills, watch T.V, have a dozen baths a day, eat for three instead of one. For the first time in my life and maybe the last time of my life, I'm going to enjoy myself. I suggest you to take some rest. You have a long journey ahead of you and it's sure to be a hard one."

The play presents the battle ofhuman and machine. The financially strong groups and agents are taking advantages of the modern electronic technology. The Play present the bio-medical technoscape where the radical relation between the body parts, body subjects and social political body.

Reference:

1. Barbuddhe, Satish, Indian Literature in English Critical Views, New Delhi: Sarup&Sons, 2007.
2. Boulton, Marjorie, The Anatomy of Drama, New Delhi: Kalyani Publisher, 1985.
3. Dodiya, Jaydipsinh K., Surendran, K. V. Indian English Drama Critical Perspectives, New Delhi: Sarup & Sons, 2000.
4. Lefebvre, Henri. Dialectical Materialism. Trans. John Sturrock. Minneapolis, London: University of Minnesota Press, 2009. Print.
5. Indian Writing in English, New Delhi: Sterling, 1985
6. Pravinchandra, Shital. The Third-World Body Commodified: Manjula Padmanabhan's Harvest. eSharp. Issue.8. p.1-17.
7. Ravande, Durgesh. Body on Sale in Manjula Padmanabhan's Harvest'. Critical Essays on Indian English Drama. R.T. Bedre (Ed.) Kanpur: Sahityayan, Pp.162-65.
8. Rajkumar, K. (2012) Socio-Political Realities in Harvest: A Brief Study of Manjula Padmanabhan s Critique, Purna: RHI. Mahmul.
9. .Ashcroft, Bill, Gareth Griffiths and Helen Tiffin. Key Concepts in Post-Colonial Studies. Routledge, 2001.
10. Barnard-Wills, David. Surveillance and Identity; Discourse, Subjectivity and the State. Ashgate Publishing Limited, 2012.

Film Literature: An Emerging Genre of Contemporary Literature

Mr. Mahesh Krishna Mali
Head, Department of English
B V's M B S K Kanya Mahavidyalaya, Kadegaon
Dist.Sangli (Maharashtra)

Abstract:

Literature is an older form and it has been seen as an art. It is a more established and valued as a work of art. The literary medium has huge crowd and benefactors. Literary works especially stories, plays and novels enjoy wide readership. With the introduction of Printing press literary works reached to the greater public. Effective presentation of plays attracted many public.The arrival of cinema is one of the important milestones in the history. The stories or novels were adapted into films. Majority of the literary works are adapted into films.Film is the most important visual medium of the 20th century.The word 'contemporary' signifies living, belonging to or happening in the present. In the context of the contemporary literature it means writing during a specific time period generally it refers to the literature after the World War II to the present. It deals with different genres and subgenres. Films become the powerful means of entertainment and occupy the place as film literature. The film can create world of magic, fantasy and romance. Film Literature is an emerging and growing branch of study. It has great advantages to the students in academic life as well as making career. This paper attempts to highlight the significance of film literature in contemporary literature.

Contemporary literature- the literature which is produced after World War II to the present time is generally considered as contemporary literature.

The term 'contemporary literature' refers to the type of literature written after the World War II to the present time. It can be classified according to nations, languages, genres and also variety of systems. It can be listed by decades and different literary movements such as confessional poetry, cyberpunk, new formalism, new wave science fiction etc. Literature of any language and countries changes with the societal changes and society changes with the scientific and technological innovation. The historical event of World War II affected the life of people all around the world. There were drastic changes in the power structure as well as beliefs of the people. Literature is the reflection of the society and many creative writes tried to write in different way.

 ISSN 0975-735X

Contemporary literature reflects political and social viewpoints of the society and it is presented through realistic characters. There are socio-economic, political messages and connection to contemporary events. Modern writers are in search of new themes in society and influenced by scientific developments, innovations, strength and weaknesses of the people, religious conflict etc. In general, the World War II and subsequent events are considered as the beginning of contemporary literature. The horrors of the war and its impact on society, violence, corruption and terrorism are the pathways to this type of literature. These works of literature aims to speak about the injustice in the world and search for civil rights.

Though, contemporary literature known for literary production after World War II, this period extends up to the present day. It was enriched with new genres due to discoveries ad innovations in the field of sciences such as internet, television etc. It was also era of cinema, music and acceptance of new culture. With fast changing society, contemporary literature is also changed in content and structure. It reflects current trends in life and cult, personal point of view or innovative narrative resources.

Contemporary literary genres are made up of stories, novels, plays, poems and movies. All these genres are imaginary but it presents the life of people and human experiences in a concrete and abstract way. Graphic novels, children's literature, science fiction, blog literature etc. are some of the emerging trends in contemporary literature. With the advent of cinema and film adaptation in early 20th century, film studies or adaptation studies became the popular branch of literary studies. With the advent of science and technology and fast changing world, film literature is becoming an emerging genre or branch of literature.

Film literature is a new genre of literature which studies adaptation of literature in film or other subsequent media. Literature forms one of the six classical arts and film or cinema is seventh arts. It combines all the six arts such as painting, dance, singing, sculpture etc. Literature and films are different but both are works of art and create an illusion of reality and tried to provide a sort of message for the ethical development of the audience. Both create a well-developed story using their respective techniques.

There are certain characteristics of literature and film. Although, both arts are different, the primary aim is to give pleasure to the readers and viewers. They are works of arts and share the common field of imagination and creativity. Film has influence of its society and culture, so it is called as a cultural product. Film is entrenched within the culture and thus a complex and stimulating relationship exists between culture, film, audience and ideology. The film is considered as an art which is pervasive and influential while film stars considered as cultural icons.

Film is a machine art which is depending on mechanical equipment for both its creation and exhibition. It relies on our illusions and our acceptance that pictures are essentially moving when off course they are not. It is an art and recording medium like print. It uses camera and can record music, drama, painting, operas

sculpture and any other arts. It is not an individual creation like literature but a group production.

The films could deliver the language of literature. The members of the middle and upper classes as well as lower classes began to watching films. This situation encouraged film makers to turn more to literature for stories ad characters. The film producers and directorsturned to literature for inspiration and subject matter and the best among literary master pieces are adapted into box office hit films. They began to present great classics in the form of the films. It is easy to consume entertainment to the young and old. So film adaptations become popular trend and film industries.

Adaptation of literature is continuous process which seeks the help of machine. The seeds of adaptation are rooted in that work of art. While making adaptation directors think about the original work of art and make necessary changes according to the medium. Screenplay is an important step in the process of making film. The screenplay is a kind of blueprint which manages the different shots and scenes. It also suggests camera angels or acting tips. Cinematography is important concept in film making which includes *mise-en-scene*, montage and voice over etc. The term *mise-en-scene*means the arrangement of all visual elements in a theatre production. Montage suggests a process of cutting away unwanted material until the final film emerges.

Adaptation is considered as an all-inclusive transposition of a previously existing product. This reversal can be a change of medium, genre or the setting. The story is told from a different perspective. The transposition is also considered as a change from real to fictional. Adaptation is also known as a process of re-creation. For instance, the film adaptation of myths and folklores are considered as a way of preserving a heritage in an audio-visual technique.

Film scholars Corrigan and White states that, 'film is a work or art, richly layered with cultural practices'. This new form of art is creative and rooted in particular culture. It has elements of realism as well as fantasy; it entertains and also gives some messages to audience. It has powerful elements of story and sound which provide a setting and meaning to the story. The film narrates stories of everyday experiences such as birth, hope, good, evil, love, marriage, peace, death and violence. Thus, the film medium is liked and enjoyed by every person because it narrates stories which they could associate. Mainly, it narrates our personal stories such as the community and the contemporary world.

Film mediums have significant importance and the film adaptation is considered as a cultural process. It is indicated that film adaptation influences readers behavior and it gives a new perspective for the readers. The film is considered as a creative and entertaining medium for the spectators. Films genre has similarity with literature especially with novel, short stories drama because its story. Apart from that there are plot, setting, characters; structure and theme are the common elements which make up the screenplay in the film. There are some other film techniques also such

as flashback, back story, flash forward etc. are used to narrate the story.

Film literature includes various film genres such as Action film, Adventures film, Animated film, Comedy film, Drama, Fantasy film, Historical film, Horror film, Science fiction film, Thriller film, Western films etc. A film offers the audience with the illusion of movement, sound and provides an enjoyable experience for the spectator. The film presents the audience with a story or narrative. It re-enacted through the communication of characters the cause and effect connection in a film is ruled mainly by the characters' actions that make events to change. In other words, the characters are considered as the mediators of cause-effect relations.

There is debate among the scholars that how films are considered to be a literature? The reading of literature is an individual experience which is mono-sensory on the other hand watching a film is multi-sensory experience emphasizing immediacy. Literature gives verbal experience whereas films give visual experience. Though literature and films are different mediums of expressions, there is link between them so that film is considered as a branch of literature. They are the systematic and artistic expressions of human mind. Films are considered as literature because they can be analyzed, explained and interpreted in the same way as written literature is studied. So we can say that Film literature contains all the elements which are present in written literature.

Film studies, as a branch of literary study emerged during the late 20th century. It studies film history and development, adaptations, theories and practices as well as the basics of film productions. Many universities has either introduced diploma and degree courses in film studies, or included it in syllabus of under graduate or postgraduate. It can be strongly suggested that film literature or film studies has great advantages to the student's academic life as well as making career because film literature is an emerging and growing branch of study.

Bibliography

1. Abrams, Nathan, Ian Bell and Jan Udris.Studying Film. London: Bloomsbury Academic, 2010
2. Bazin, Andre.What is Cinema? (Vol.I and II). Berkley: University of California,1967.
3. Corrigan, Timothy. Film and Literature. Longman-Pearson, 1998
4. Hayward, Susan. Key Concepts in Cinema Studies. London & NY: Routledge, 2004
5. Hutcheon, Linda. A Theory of Adaptation. London, Routledge, 2006. Print.
6. Strinati, Dominic. An Introduction to studying Popular Culture.London, Routledge, 2004. Print.

Websites

http://en.wikipedia.org/wiki/film_theo.25.11.2021

Science Fiction

Manisha Bajarang Sutar
Yashavantrao Chavan Institute of Science (Autonomous) Satara

Abstract

Science fiction as a genre of literature based on scientific facts, principles and theories. Science and advanced technology, space exploration, parallel universe,extra-terrestrial life,time travel and artificial intelligence these are the prominent themes of science fiction. Jules Verne, Robert Heinlein, H.G. Wells,Frank Herbert, Isaac Asimov, Ray Bradbury, William Gibson and Robert Sawyerthese are the most prominent science fiction writers. Present paper deals with science fiction and it attempts to study all aspects of it.

Science has transformed all aspects of human life. Because of advanced scientific technologies human life becomes easier and much better than the past. Science is actually a search for truth. It helps individual to move away from false beliefs, biased observations, wrong judgements and inappropriate decisions. It reveals the dangerousness of many things so that we can protect ourselves from its harms. It makes our life systematic. It promotes reasoning capacity, rationalism as it is related to intellectual process. The critical and creative thinking of individual has been developed with science. We become aware of the harmony of nature only when we possess basic scientific understandings. The development of human culture is due to the advancement in the field of science.

The concept of literature came into being for the expression of human being. In the course of time different genres of literature have been developed such as drama, fiction, nonfiction poetry etc. Speculative fiction deals with the supernatural, futuristic and imaginative themes. It includes fantasy, horror fiction, magical realism, science fantasy, science fiction.

Science fiction as a genre, basically emerged in the west. Industrial Revolution brought social transformation and writers and intellectuals extrapolated future impact of technology. Science is used to create fictional stories. It describes the mankind'spossible future and imaginative and realistic universe.

According to Kingsley Amis: "Science fiction is that class of prose narrative treating of a situation that could not arise in the world we know, but which is hypothesized on the basis of some innovation in science or technology, or pseudo-science or pseudo-technology, whether human or extra-terrestrial in origin" (Amis 14)

According to David Pringle: "Science fiction is a form of fantastic fiction which exploits the imaginative perspectives of modern science." (Pringle 09)

 ISSN 0975-735X

Robert A. Heinlein wrote that, "A handy short definition of almost all science fiction might read: realistic speculation about possible future events, based solidly on adequate knowledge of the real world, past and present and on a thorough understanding of the nature and significance of the scientific method." (Heinlein, Bester and Bloch 21)

Science Fiction can be divided into major two types: HardèkNatural Science Fiction and SoftèkSocial Science Fiction. There are many subgenres under these two types of science fiction such as: Time Travel, Alternative History, Military Science Fiction, Cyberpunk, Apocalyptic, Space Opera, Utopia, Dystopia, Virtual Reality, Science Fantasy, Steampunk, Artificial Intelligence etc.

'A True Story' by Lucian may be considered the first scienece fiction novel. It contains themesbased onartificial life forms and travel to other worlds. Johannes Kepler's 'Somnium' (1634), depicting theEarth's motionfrom the moonmay be considered the first science fiction story. It may be said thatscience fiction's form developed from the novels,'Frankenstein' (1818) and 'The Last Man' (1826)by Mary Shelley. In the opinions of some critics'Frankenstein'may be considered the first novel of science fiction.

After Mary Shelly, Jules Verne, Edward Bellamy and Edger Rice Burroughs dominated the world of science fiction. Edward Rice Burroughs published around 70 books. His famous works include, 'The Chessmen of Mars','Maid of Mars', 'The Moon Maid'.

In the world literature the most notable science fiction authors include: Aldous Huxley, Issac Asimov, William Gibson, Robert Heinlein, H.G. Wells, Issac Asimov, Daniel Keys, Haruki Murakami, Madeleine L' Engle, Audrey Niffenegger, Robert J. Sawyer. Science fiction authors depict scientific inventions and technologies using their power of imagination. Digital technologies, cell phones, drones, robots, credit cards, television, military tanks, submarines, satellites, artificial intelligence and even the concept of internet all are results of science fiction predictions. The idea of cell phone occurred in science fiction author Robert A. Heinlein's books 'Space Cadet' (1948) and 'Between Planets' (1961). In the year 1940, British author Arthur C. Clarke predicted geostationary satellites.

Canadian Science fiction writer Robert Sawyer in his science fiction combines cutting-edge scientific theories with the human values and technological developments. He delineates the impact of technology on humans. Theme of his novels are the conflict between science and religion, race relations and the biological factors. His novels deal with philosophical, moral and legal concepts with futuristic extrapolations using real scientific principles. He uses complex technological concepts. In the novel 'Terminal Experiment' a neurobiologist creates a computer model of the human soul. In his novels, he asks questions about human values, religion and tries to find answers. His novels 'Hominids' and 'Humans' describes the connection between two versions of Earth in different parallel universe. His novel 'Watch' presented an interesting perspective of artificial intelligence and revisionist view of a cyberpunk story. His novels are thought provoking and thrilling. His novels such as Calculating God, Factoring Humanity, Hominids and

Frameshift describes scientific theories and technological developments depicting real human characters. The story of the novel 'Calculating God' (2000) by Robert Sawyer describes the arrival of aliens on Earth and also acquainted us with scientific technologies and inventions.

"That device is a holoform projector," Hollus said. "It has just imprinted itself with Dr. Jericho's biometrics and will only work when in his company; ..." The actual me is still inside the landing craft, outside the building next door, ...The polyhedron in my hand issued a two-toned bleep, and the projection of Hollus wavered for a second, then disappeared." (Sawyer 29)

"Maybe what you proposed happened on the other five worlds we visited; maybe their inhabitants did upload themselves into computers." (Sawyer 239)

"A repulsor – field generator, it helps them walk around here. The gravity on Earth is higher than that on the Wreed homeworld." (Sawyer 261)

"The Hubble Space Telescope had, of course, been immediately trained on Betelgeuse. Much better pictures were being obtained by Hollus's starship, the Merelcas, and these were broadcast down to be freely shared with the people of Earth" (Sawyer 291)

"But I believe I told you that the Wreeds travel in suspended animation; we could do the same thing for you, and not take you out of cryofreeze until we had reached our destination...although the technique is as safe as a general anesthetic over periods of up to four years, ...It is a convenience for traveling." (Sawyer 301)

"Conceptions that late in life increase the likelihood of Down in my people, too' said Mary. "Because the body's ability to produce clean sets of chromosomes has deteriorated. I wanted to overcome that – and I did. My codon writer could have eliminated all copying errors, all-"(Sawyer 199)

In above examples we find that science fiction author Robert Sawyer depicts scientific techniques such as virtual reality, artificial intelligence and freezing or anesthetic method gives reference of repulsor-field generator, a equipment against gravitational force on Earth used by aliens and alsocodon writera equipment for eliminating genetic diseases.

In this way we explore that science fiction authors are inspired by scientific and technological inventions and they project the possible future of these inventions and their impact on human life. It encourages us to explore all the future's positive and negative aspects that the human mind can envision. It introduces scientific ideas and possibilities and also gives ethical and moral speculations for the betterment of human life and makes reader receptive to new information and change.

References:

1. Sawyer, Robert. Calculating God, Canada:Toranto Books, 2000
2. Gilks Marg; Fleming Paula and Allen Moira. Science Fiction: The Literature of Ideas, 2003
3. Thorn Von, Alexander, Aurora Award acceptance speech, Alberta, 2002.
4. https://prowritingaid.com
5. https://www.liveabout.com
6. https://en.m.wikipedia.org

The transitional period of COVID and Pros and Cons of Online Teaching-Learning Methods

Miss Mrunal Rajvivek Mohite
Research Student, Shivaji University Kolhapur,

Abstract

In the current era, an Online teaching-learning method is a growing approach to teaching. None of the methods is completely applicable and hundred percent perfect, same it has some pros and cons. In this paper, I tried to put some light on types of online teaching methods, on which applications can be used to apply this approach. I try to see which applications one should use for evaluation, what are the advantages and disadvantages of the online teaching method, what are the challenges teachers and students are facing or can face in this process, and try to give solutions for it

Online teaching is a new normal after the corona pandemic. We can divide the era as 'pre-COVID', 'in-COVID' and 'post-COVID' era. Pre COVID era is mostly related to the traditional classroom method that is the chalkboard or lecturing method. In the 21st century, people are familiar with information communication technology (ICT). Even in the pre-COVID era teachers took the help of ICT tools to make PPT and use it as teaching aids. The second era is the In-COVID era, COVID pandemic leads to quarantine and lockdown which makes people be in a place for more than a year, so it is also impossible to be in the traditional classroom. So eventually every teacher tries to be acquainted with new technologies and applications. The third era is post-COVID, at this time COVID is not finished so no one can say that this era is a post-COVID era but we can say this era is a transitional period from In-COVID to the Post COVID era.

Literature Review:

'Shivani Dhawan' (2020) tries to do "A SWOC analysis of online learning in India", where she tries to analyze the strength, weaknesses, opportunities, and challenges. Here in this article, she tries to focus new growing educational technological startups in-COVID era and different problems in the upcoming years which badly affect the higher education and student's learning, here researcher gave suggestions to the Higher Institutions for this. 'Paul J and Jefferson F' (2019), two researchers tries to do "A comparative analysis of Student's performance in an Online versus face to face environment Science course from 2009-2016", here they choose five hundred forty eight students who completed their class

(environmental science class) between the given years, one hundred forty seven students were online, whereas four hundred zero one were traditional classroom students. They tried to evaluate the gender and class rank factors, here they find that data demonstrates that both methods equally penetrate the concepts and information to the students, so online learning can be replaced with the traditional classroom but it needs more infrastructure. 'A. Balaji' (2018) in his article states that verbal ability skills and exercise can be flipped for better results. Preparation of FC, Flipping, and Post activity is the process shown in the article like in other all FC classes. In the article named as Flipped the classroom in ELT context "Gruba, P., Hinkelman, D., & Cárdenas-Claros, M. S." (2016), the researcher gives five different pedagogical dimensions of technologies as "action, groupings, timings, texts, and tools". "Narrative, interactive, adaptive, communicative, and productive" these are the types of action, whereas grouping has differed as individual, pair, small or large group. Physical devices, classroom furniture, software application, online networks come under the tools.

Many researchers try to find the implication and challenges of online teaching and learning.

Objectives of the study-

- To know the different methoosQ and types are available for the teaching in India.
- To know how teachers should evaluate students in the online teaching method particularly in India.

Now in India teachers and students are in the transitional phase from in COVID to Post COVID era. There are several teaching methods for the online teaching-learning process. "Fordham.edu" is a website talks about some types of online teaching as

1) "Asynchronous Online Courses"-In this type there is no face to face real conversation in physical environment. Students are provided with content, assignments and materials and in the given time students have to complete course work and given exams. Most of the time, Interaction takes place with the help of different online platform like wikis, blogs etc. So, we cannot find tight scheduled class meeting time.. The advantage of asynchronous online teaching is content and assignments are anytime accessible to the students, so it will help working people to take new classes at any time.

2) "Synchronous Online Courses"-In this kind of courses students and teachers, guide or facilitator should be interacting online and simultaneously. It is quite similar like online conference which is also known as webinar; here students and teachers interact through chatting, texting and video calling. This is also can be called distant online learning.

3) "Hybrid Courses"-This course is also known as blended teaching, this kind of courses are perfect of physical and virtual learning, students can meet their teacher online as well as personally in classroom, college or institution. Another

step ahead to this method is flipped classroom method.

Online teaching is also known as computer-mediated learning, computer-assisted learning, and mobile-mediated learning. In today's world, we can find so many ways to get access to the online mode of teaching. Computer, Mobile, Tab and internet connections are available to everyone. In Pre covid times many people are using social media like Facebook, Whatsapp, telegram, and such apps for entertainment purposes. But In Covid time suddenly the situation has changed, and people are doing work from, in the same way, students also doing study from home.

Applications–

Google Classroom is one of the applications are used to teach online; on this app, teachers can record attendance. It is asynchronous online teaching method aid. Zoom/Google Meet/WebEx/ Microsoft office is a video calling application, on these applications, many of the higher institutions organize different seminars/ webinars, conferences, and symposiums. Many gaming applications can be useful to teach students different things. Techmint application is meant for teachers, where they can run their classes like tuitions. On Social media (Facebook, Whatsapp, Telegram, etc.) generally, teachers made a group to connect all the students under the same roof. Here teacher provides students with pre-recorded educational videos, students will learn through them and send assignments back to the teacher. Youtube is one of the most famous and largely used asynchronous applications, anyone can access this application; anyone can upload and download the videos. Duolingo application is a good option to learn the basics of many languages. Quizziz application is used to conduct different types of quiz and we can get the result immediately Google form also helps to take a quiz or collect different kinds of data and help to analyze the data and shows it in charts and graphs. Swayam is an Indian government initiative that provides online asynchronous teaching from ninth class to many diplomae and degree courses. Edpuzzle, Bookwidgets, Ted-Ed, Khan Academy, Nearpod, Kahoot, Coursera are also well-known applications that many teachers are using worldwide. Even government takes many initiatives for MOOC (Massive open online courses).

Evaluation-

To evaluate students' achievements and progress many teachers use applications like Google form or Quizziz. Some teachers said students to take photocopies of assignments and send them back to the teachers. Some of the methods are useful, but all methods are not technically well developed. In some of the universities or educational institutions take the help of Moodle to provide curated PDFs, notes, and educational materials, collect assignments through that, even teacher can give a deadline to the work, the teacher can see who are learning or using that app when the specific student is logged in and logged out. But this Moodle or any application is not used by many teachers, so it can be a good option for the teachers to use the app.

Advantage-

The online teaching-learning process is one of the growing teaching methods nowadays and it should grow further because it has many advantages. As 'King' (1993) suggest that teacher should become "a guide on the side" and not "sage on the stage". We can find this in online flipped teaching. The online teaching method focuses more on learners because online content is accessible to the learner whenever they want. They can time pause and rewind the video or reread the content. It is impossible in the traditional classroom method. Learners can check their knowledge and revise it many times. Anyone can get the best teacher. Every teacher is different in their way of teaching, students and parents always want the best person to teach, but it is not always possible due to high fees of various institutions or maybe the place where students live far away, for this kind of situations online teaching is the best solution. Students can refer to many sources at one time, students become independent learners, and even all these steps help them to improve their higher-order thinking skills.

Disadvantage-

Every coin has two sides, in the same way, each method is not perfect it has pros and cons, we can see some disadvantages. In the teaching-learning process teaching environment is the important thing, so if the student is motivated to learn then online teaching will work, if students are not well aware of their aims then they are unable to focus on teaching and as a result of this it will slow their progress in every field. Yet many teachers are lagging in the field of use of ICT tools in teaching, so it affects the teaching process. Another disadvantage is many students belong to lower or middle-class families, and everyone cannot afford a twenty-four by seven Wi-Fi connection at their home and laptop or computer, even some people cannot afford a mobile phone with a good internet connection, so these people can lag in their education.

Challenges-

I.**Motivation**- Some people have a negative mindset about the online teaching-learning method, people feel that teachers and students can not feel emotionally connected and they are unable to focus on the screen, so motivating both parties is an important thing.

II. **Knowledge**- Everyone has a mobile phone in their hand, they can connect with people through social media applications, but the thing is they are unable to learn things from these technical devices because of a lack of knowledge about it. They don't know how to use these devices effectively make full use of them. Knowledge of digital content is comparatively low, people don't want to use all things available to them.

III. **Connectivity**- Due to the pandemic many people learn to use the internet and did their work from home but the percentage of these people are very less, another hurdle is internet connectivity, In India, we do not have internet connection everywhere, and the speed of the internet is slow, so to downloading and uploading are the time-consuming tasks.

Solution-

I. **Government**-Government take initiatives as Swayam and Swayamprabha, but still, people are not aware of it, So government should take awareness campaign for the students, parents, and teachers. It should provide funds for the infrastructure which is needed for the online class. Government should take care of the lower class students who cannot afford the mobile, at least provide them classroom bounded tabs, so they can use these devices only for the learning purpose.

II. **Teacher's Training**- Every year there should be training for teachers regarding new technologies and ways to use these technologies.

III. **Awareness**- Every citizen should try to educate themselves and the environment about new educational policies and methoosQ.

IV. In education policy, there should be a place for online teaching and evaluation, so people can think about it seriously.

References:

1. A. BALAJI (2018): Flipping the Classroom in ELT Context: International Journal of Scientific Research and Review Volume 7, Issue 1, 2018 ISSN NO: 2279-543X
2. Gruba, P., Hinkelman, D., & Cárdenas-Claros, M. S. (2016). New technologies, blended learning, and the "flipped classroom" in ELT. The Rutledge handbook of English language teaching, 135-149
3. Shivani Dhawan, Online learning: A panacea in the Time of COVID-19 Crisis, Journal of Educational Technology Systems 2020, Vol 49(1) 5-22, DOI: 10.1 177/0047239520934018
4. Paul J and Jefferson F (2019) A Comparative Analysis of Students Performance in an Online vs Face to Face Environment Science Course from 2009 to2016. Front. Comput. Sci1:7. DOI: 10.3389/fcomp.2019.00007
5. From Sage on the Stage to Guide on the Side Author(s): Alison King Source: College Teaching, Vol. 41, No. 1 (Winter, 1993), pp. 30-35 Published by: Taylor & Francis, Ltd. Stable URL: http://www.jstor.org/stable/27558571. Accessed: 24/04/2013
6. "Assessment in Online and Blended Learning Environments" edited by Selma Koc, Xiongui Liu, Patrick Wachinra. 2015 ISBN 978-1-68123-046-7

Online Resources

https://www.fordham.edu/info/24884/online_learning/7897/types_of_online_learning

Email Id- mrunal.mohite19@gmail.com
mrm.rs.english@unishivaji.ac.in

Sexual exploitation of women reflected in a short story Caramel by Tayari Jones

Mrs. Patil Vidya Vyankatrao
Assistant Professor, Dept. of English S.G.M.College, Karad

Tayari Jones is a well-known Afro-American writer.She is a professor of creative writing program in a well-known American University.Almost each literary work of Tayari is endowedwith an award. Being a black writer black people always occupy central place in her writings. Each work of Tayari depicts exploitation, marginalization , sufferings and problems of black people. She is fully aware of the secondary status of black people in America. They are never addressed as Americans. Instead they are always called as African Americans or Black Americans. These things clearly indicate that Nigros are not taken as part and parcel of America even today. They are never mentioned without prefixes like American or Black . While reading the history of African Americans one can notice pangs of black people. Each black person is a victim of racism. This realisation is seen through the writings of black male as well as female writers. Sufferings of black women are heart touching. They suffer doubly, as blacks and as women. During the period of slavery they were victimised by whites. Their lives were worse than deaths.The life of black women was just lika a nightmare. But even after the abolition of slavery,victimization of black women did not not end. Not only white people, but Black people also became their persecutors. Black women definitely expected free and dignified life for them. Unfortunately a dream of better life seen by black women did not come into reality. Their victimization was prevalent in their own houses by men community. Woman is taken as an object to satisfy their carnal desires by black as well as white men. Sexual abuses of women, their humiliation, drastically affect their own lives,as well as that of their offsprings. Many women are drawn to prostitution leading to their addiction to drugs, untimely death and stigma on their families especially daughters. Besides, daughters of such women are also looked as objects by men.They are pressurized to follow the footsteps of their mothers. Society looks with prejudiced eyes at the daughters of these women.

Caramel is a touching short story written by a well known woman novelist,Tayari Jones. For years together white Americans did not hear the voices of black people. Their writings were neglected by whites but these days so many black writers have compelled whites to take notice of their writings, to listen to their voice. Nobel award given to a writer like Tony Morrison is a best example of it.

Caramel is a heart rending short story told by a young girl nicknamed Blue

 ISSN 0975-735X

Button. It focuses on a tragic death of her mother Regina. It also throws light on the life of another young girl named Angie and Regina's own daughter. Angie is also drawn into prostitution like Regina. A man who spoiled her life was a pimp named Romie Johnson. Astonishing thing is that the same person has now become a preacher. With a new title Reverend Romie,he is serving as a pastor of Rebirth Baptist Church. He is earning much money through his contract with T.V. He is living quite respectable life . As black people are serious about their pastors he is enjoying the fruits of their beliefs. Here not any white man but a black man himself is the victimizer. He became the penetrator, inflictor of cruelty, injustice on a black women named Regina. There is nothing like guilty consciousness in his mind. Climax of his meanness is seen when he is ready to violate sexually his own daughter, Blue Button. He is a seasoned woman chaser, inspite of being a Pastor. After listening to the tragedy of a woman he was involved with, he is least affected. Without showing consideration as a priest,he insults his own daughter. He offends her by making insulting remarks about her own mother. He continues his villaineous behaviour till the end of the novel. When told about the death of Regina,he asks whether she met God in the end. He does not hesitate in asking such a question to his own daughter. This shows how casual he is about his one time companion.

Here we see two faces of the same person, one public and another private one . Shocking thing is that inspite of knowing all the facts about his one time companion he pressurizes his own daughter to become sexually involved with him. Romie is an example of a complete sinner. Former pimp like Romie is now working as a respectable preacher. This is infact, an irony of situation. This is a glaring example of sufferings of black women. Victimizer is enjoying his life where as a woman involved with him had to meet untimely death bringing humiliation to all her family members. In the beginning of the story we find heart-broken Blue Button due to the death of her mother. No outword attraction or glamour fascinates her. She is completely dejected as her mother died 3 days before Christmas eve. Christmas does not make her happy like other children.Infact she feels as if there is no Santa. There are some unfortunate children who don't have family. Hence she hates Christmas,as it can be enjoyed only with your family.

Blue Button works in a Motel. It is a kind of brothel . People don't stop here for longtime. Consequently it proves to be a fair deal for everyone concerned. She is appointed to handle accounts in this establishment. It is really a strenuous job to work here.

Angie is a black girl who earns her living by working in this place. She enjoys the gifts given to her by the visitors. Death of her mother was not at all unexpected to Blue Button. Excessive use of heroine was bound to give her untimely death. Blue button expected her to live her atleast unitll Christmas, but she died 3 days before it after taking hot shot. She died near bankhead highway. A needle was hanging from her arm while she died. She was recognized simply due to the medical alert bracelet given by her daughter, Otherwise she might have died unnoticed like

a tramp.

Romie Johnson spoiled the life of Regina. Witout any kind of regret about past life he started his life a new. He gives the credit of his transformation to his wife but at the same time he goes on deceiving his wife by becoming involved with so many women. Millions of people hear his sermons. Blue-Button is convinced that Romie is her mother.Her mother has not onlt told her about Romie but also shown his picture on TV to her She is not only told about him but also she is shown his picture on T.V.

Regina not only losses respect in the eyes of outsiders,but her own mother breaks off relations with her. She tells Blue Button not to allow her mother in her house. But her daughter could not do so. She becomes unwelcome guest in her own house. She loses her dignity. Shame faced she comes to meet her daughter takes money given by her and watches T.V. She really cared for her daughters feelings and vice versa. There is no doubt that she truly loved her daughter.Infact she does not get true answers to her questions. Her dark crooked teeth make her quite ugly a pitiable character . Blue Button wants to meet Romie simply to tell Dire reality of her mother . She wanted to make him aware of his villainy. It is he,who is responsible for her untimely death as well as her domestic tragedy. A promising energetic and beautiful woman is made a living corpse in her youth itself by Romie.

Conclusion:

Thus Caramel reflects the pangs of black women caught into the trap of wicked person's like Romie. It also throws light on the plight of black women, their miseries. What we see in this story is a series of misery in the life of a black woman. She suffers a lot due to minor mistake of her own. But a man who is responcible for her tragedy is least affected by her misfortune, her untimely death. It is simply unbelievable that after learning a complete story of Regina,Romie does not show pity, sympathy or distress of any sort for Regina. It is clear that Blue Button is his own Daughter. But he does not show fatherly love to her . Instead he does not hesitate in abusing his own daughter. Thus Tayari Jones has portrayed most pathetic story of a black woman.

References:

Jones, Tayari. Edited *Atlanta Noir*

 ISSN 0975-735X

A Protest of Repulsive Dictator Regime in Gabriel Garcia Marquez's The Autumn of the Patriarch

Mrs. Patil Latika Subhash
Assistant Professor of English
Savitribai Phule Mahila Mahavidyalaya, Satara
Dr. Subhangi N. Jarandikar
Assistant Professor of English
Shri Venkatesh Mahavidyalaya

Abstract:

Gabriel Garcia Marquez is a prominentColumbian novelist, short story writer and journalist. This Nobel Prize Winner of 1982 is not only one of the influential Latin American writer but a major figure in world literature. He is a great craftsman who very artistically combines fantastical with real with his 'wild imagination'. His works evoke Latin American history, politics, myths and culture.Latin American political history had witnessed many dictators and it inevitably gets reflected in literature. The dictator novels depicting absolute tyranny and sovereign authoritarianism form a substantial part of the continent's literature.Marquez's novel *'The Autumn of the Patriarch'* (1975) is a condemnation of repulsive dictator regime in Latin America. The cruel, atrocious regime of the dictator in the novel is representative of any dictatorship commonly prevalent in Latin American history. While dealing with the theme of power,the novelist portrays the dictator's larger than life character with his idiosyncrasies andruthless attempts to retain the power. Though the novel is commingling of imaginary and real, it points out the terrible realities of the despotic rule. The novel is replete with sense of filth, decay andputrefaction. Through the use of exaggeration, humour, absurd, improbable and grotesque the novelist aims at protesting the repulsive regime of the cruel dictator. The present article discusses Marquez's protest of corruption, cold blooded atrocities, violence, horror, repression, excessive appetite for limitless power, and chaos in the novel.

Introduction: Gabriel Garcia Marquez is a prominent Columbian novelist, short story writer and journalist. This Nobel Prize Winner of 1982 is not only one of the influential Latin American writers but a major figure in world literature.Latin American political history is marked by many dictator regimes and the Latin American writers' consciousness gets shaped by this phenomenon. Dictator novel became the continent's prime literary subgenre as many prominent novelists of Latin America penned novels based on the dictator's lives. Garcia Marquez's novel *Autumn of the*

Patriarch published in 1975 is a dictator novel condemning the tyrannical regime of a despot. The present research article analyses the protest of Repulsive Dictator Regime in the novel.

Discussion:

1. Eternal power of the general:

Throughout the novel we are told about the eternal rule of the general spanning over more than two centuries. The multitude narrating the story tells us about it as: "…when our own parents knew who he was because they had heard tell from theirs, as they had from theirs before them, and from childhood on we grew accustomed to believe that he was alive in the house of power…"(Marquez, 4).He maintains his hold on absolute power with the assistance of aides like a doppelganger PatricioAragones, General Rodrigo de Aguilar or Jose Ignacio Saenz de la Barra. When he notices anyone becoming threat to his power, he very ruthlessly clears the hurdle in the way of his absolute power, may it be his wife and son.

2. Rottenness, decay, and filth: The novel has abundant images of rottenness, decay, putrefaction and filth. From the very first page we read about vultures pecking the dead body, cow nibbling the velvet curtain in the presidential palace, dung heaps and many scatological references regarding the animals, birds and the general himself. We have repulsive picture of presidential palace. For instance, in the beginning chapter, we read about the presidential palace which is also his working place,

…a house that lacked authority,…in the deserted sanctuary we found the rubble of grandeur, the body that had been pecked at, … his whole body was sprouting tiny lichens and parasitic animals from the depths of the sea, especially in the armpits and the groin, he had the canvas truss on his herniated testicle, which was the only thing that had escaped the vultures in spite of its being the size of an ox kidney…(Marquez, 5)

Throughout the novel, we have such kind of descriptions. The children born to the patriarch out of his sexual assault on his concubines are seven month runts. The patriarch is greeted by lepers and cripples in rosebushes every morning. One cannot escape the sense of repulsion while reading the novel. Marquez seems to suggest through this exaggeratedly described filthy and rotten world, the rotten life under the despotic rule.

3. Horror and cruelty: The novel depicts the horrors inflicted by the dictator on the individuals in order to maintain their power. There are great number of 'hair raising' instances of cruelties and ruthlessness of the tyrant. When his loyal assistant General Rodrigo de Aguilar is found guilty of treachery, a terrible punishment is given to him. He is not only punished with death but also his corpse was served in a banquet to the ministers. The incident of his ordering to explode with dynamite near about two thousand children at a time may be unrealistic, still it shudders the readers. The cold bloodedness with which these atrocities are carried out is what is most unbelievable. There are innumerable such incidents in the novel- his forceful sexual

relation with a married woman and cutting her husband into thin pieces, his aide Jose Ignacio Saenz de la Barra having 'torture factory'(Marquez, 196) in which he beheads the people and his dog eats only the guts of the beheaded people, he presents sacks of these heads to the patriarch, he strangles the sibyl foretelling about his death, etc. There are also references of torture chamberswhere the cruellest tortures are inflicted on the prisoners and other uncanny methods of torture. The horror reaches to its climactic sense when we read about his wife, Leticia Nazareno who has taught him natural way of loving and civilized his behaviour.When her interference increases, she is given very terrible death. Leticia Nazareno and her six years old son are pounced by sixty hungry dogs, torn into pieces and eaten within a moment. Marquez presents a horrible picture of ruthless regime.

4. Chaos and corruption: A unjust system engenders corruption and corruption leads to disorder. The picture of disorder given in the beginning pages of the novel prevails throughout the novel. Marquez describes it as, still he governed as if he knew he was predestined never to die, for at that time it did not look like a presidential palace but rather a marketplace…where a person had to make his way through barefoot orderlies… begging women with famished godchildren who were sleeping in a huddle on the stairs awaiting the miracles of official charity,…the flow of dirty water from the foul-mouthed concubines… uproar of tenured civil servants who found hens laying eggs in desk drawers and traffic of whores and soldiers in the toilets,… a tumult of bird,… fighting of street dogs in the midst of audience because no one knew who was who open doors in the grand disorder of which it was impossible to locate the government. (Marquez, 5-6)

This single passage is sufficient to sum up the chaotic and corrupt system. When the church rejects to declare his mother as a saint, he does it forcefully and also orders its celebration. The religious personnel and institutions were abolished at the time of this rage.They are restored gradually upon the entreaties of his novice wife. Leticia Nazareno goes in market purchasing all the things she likes telling them to send the bills to the government. Their son Emanuel is appointed as a major general even before baptism.The corruption reaches to its height when we read about the Patriarch selling the Caribbean Sea to the US.

5. Adulators and opportunism: While depicting politics as a dirty game of greed and ambitions, Marquez also exposes the role of adulators in the exploitation of the nation. The dictator is surrounded by adulators who incessantly flatter him to serve their personal interests. They are always ready to grab the 'booty of his power' (Marquez, 141) whenever they get opportunity. Marquez criticizes such opportunism in the politics. For instance, Jose Ignacio Saenz la Barra extracts much money from the Patriarch as the expenses of finding out the real assassins of the general's wife and son. He creates a 'torture factory' where he beheads the guilty. He sends the sacks full of heads of the beheaded people to the patriarch. But the patriarch neglects deliberately Barra's parallel dummy despotic system. Even he has clear idea of opportunistic people. He understands that after his death all his

opponents will join hands to divide the nation among themselves. "They'll go back dividing everything up among the priests, the gringosand the rich and nothing for the poor…" (Marquez, 142)

6. Blind faith of naive and powerless people: As stated by Edmundo Paz Soldan in his news article "Deconstructing Dictators" in *Global Newsstand,* "Latin America's distrust of democracy and of individual responsibility produces an irrational desire for a leader, a hero who can make all the difficult decisions." (Soldan, 90). Inspite of being very unjust, corrupt, cruel, horrible and repressing individual freedom, the dictators could maintain their hold due to naivety of common people. Along with the ambition for the limitless power on the part of the dictator the blind faith of the people in the dictator is also responsible for the totalitarian regime. Marquez satirizes this tendency as people hail the dictator as "the corrector of earthquakes, eclipses, leap years and other errors of god" (Marquez, 8). He criticises this tendency of idolatry or personality cult. Through this novel he has pointed out ironically a historical fact regarding Latin America as given by Edmundo Paz Soldan,

Lack of faith in democratic institutions has too often reawakened Latin America's fascination with dictators. When these institutions are perceived as governing for the privileged few and ignoring social and economic injustices, the allure of a populist and powerful leader becomes almost irresistible. (Soldan, 90)

The dictator in the novel could not read or write, but he passes the laws with his thumbprints. His profile was on both sides of all coins, postage stamps, condom labels, trusses, scapulars, etc.

The whole power and authority are centralized in one hand and individual freedom is restricted. The repeated phrases in the novel 'the one who gives order', 'he alone was a nation' refer to the centralization of power. The individual has no say in the regime. One could not oppose to the injustice done to him or her. The Patriarch in the novel falls in love with Manuela Sanchez. He visits her house in slum area. He drastically transforms her poor 'dogfight district' (Marquez, 57) for the sake of love. Manuela can't reject his amorous advances. One day she disappears. Marquez tells us, "…she was alone, watched over in her most intimate aims, the captive of a trap of fate in which she did not have the courage to say no nor did have sufficient courage to say yes to an abominable suitor who besieged her with a madhouse love…"(Marquez, 67). He appoints or promotes his ministers, officers or soldiers according to the impulse of his inspiration pointing at them. When the church refused his order of canonization of his mother as a saint, they demolished churches, sieged all the related properties of church and expelled all the people related with the church out of the country. The priests, bishops, nuns all were ordered to embark without any cloths. When he gets infatuated with a novice Leticia Nazareno, she is kidnapped from Jamaica to become his wife.

While answering a question about the central idea of power in the novel, Marquez expresses his faith in collective power as, "The disaster of individual power; if individual power doesn't work, the only thing is its opposite: real collective

power."(Marquez, 22) He protests common people's tendency of idolatry and suggests more vigil awareness of the people regarding the rule.

Thus, while protesting the repulsive dictator regime, Marquez makes use of hyperbole, grotesque, juxtaposition of trivial with serious, combining fantasy with reality and humour. The novel has abundant instances of hyperbolic descriptions-the patriarch's rule spanning over more than two hundred years, his gift of comet to Manuela Sanchez, his attempts of canonization of his mother, etc. The description of the patriarch's physical appearance-his elephant feet, his herniated testicle, his strange love making makes him a grotesque figure. Many times we find juxtaposition of trivial with the serious-a cow contemplating the sunset from the presidential balcony, the patriarch himself supervising milking in the cow barn, the president's mother painting the birds to mention few. While commenting on Marquez's way of protest of U.S. imperialism Gene H. Bell-Villadasays,

Perhaps Garcia Marquez's most striking artistic contribution is his discovery that the best way for literature to approach U.S. imperialism is not to fulminate and rage against it but to do the reality one better by magnifying it to almost cosmic, and comic, extremes, thereby satirizing it in the grandest possible manner.(Villada, 23)

Conclusion: Thus while dealing with the theme of power, Gabriel Garcia Marquez condemns the unjust system of dictatorship. They emphasise the repulsiveness, horror, cruelty of the despotic regime. While satirizing this system Marquez suggests the democratic solutions for the evils with the power of collective i.e. power of masses. The novel ends with the hope-when the patriarch's eternal regime comes to an end with his death. The multitude should learn from the history and be more aware about how to be ruled and from whom to be ruled.

References:

1. Bell-Villada, Gene H. *GarcíaMárquez : The Man and His Work*, University of North Carolina Press, 2010.
2. Bell-Villada, Gene H. "Garcia Marquez and the Novel." *Latin American Literary Review*, vol. 13, no. 25, Latin American Literary Review, 1985, pp. 15–23, http://www.jstor.org/stable/20119382.
3. Bhalla, Alok. 'Power, like a Desolating Pestilence': Dictatorship and Community in 'The Autumn of the Patriarch.' *Economic and Political Weekly*, vol. 20, no. 38, Economic and Political Weekly, 1985, pp. 1597–600, http://www.jstor.org/stable/4374840.
4. Garcia Marquez, Gabriel. *The Autumn of the Patriarch*. Trans. Gregory Rabassa. Spain:Plaza&Janes, 1975.
5. Driscoll, Sarah. "Bodily Remains: Body Optics And The Reverse Panopticon In Gabriel GarcíaMárquez's 'The Autumn Of The Patriarch.'" *Latin American Literary Review*, vol. 43, no. 86, Latin American Literary Review, 2016, pp. 81–100, http://www.jstor.org/stable/26407251.
6. Martin, Gerald. *The Cambridge Introduction to Gabriel GarciìaMaìrquez*. Cambridge: Cambridge University Press, 2012.
7. Soldán, Edmundo Paz. "Deconstructing Dictators." *Foreign Policy*, no. 130, Washington post.Newsweek Interactive, LLC, 2002, pp. 88–90, http:/www.jstor.org/stable/318

atikapatil35@gmail.com

Protest of the Working Class in Maxim Gorky's *The Mother*

Sathe Dhananjay Tukaram
Assistant Professor
Department of English
Sharadchandra Pawar Mahavidyalaya,
Lonand Tal- Khandala Dist. Satara
(Maharashtra), India

Abstract

The present research paper attempts to explore the protest of the working class against biased and unfair policies of contemporary cruel capitalists and unjust government in Russia. In fact, *The Mother* is one of the world bestselling novels by Russian novelist Maxim Gorky published in 1906 and has received many prestigious awards for motivating all the revolutionaries and activists during the Russian Revolution. This is the great revolutionary novel that speaks about class-oriented subalternity and protest of revolutionary factory workers for justice and equality during régime of capitalists and contemporary *Tsarist* government of Russia. The novel also speaks about pre-revolutionary life of proletariat class in Russia in order to emphasize the vital role of women in revolutionary activities of working-class during the Revolution of 1905. Maxim Gorky predominantly focuses on the protest of working class, socio-economic disparity and cruelty of the *Tsarist* government in Russia. In fact, workers were forbidden for reading books and spreading them among the people. But they strongly denied it and protested against them by the beginning of revolutionary movement for their fundamental rights and justice. However, the present research paper deals with the protest and revolutionary act of the working class for the justice and equality in the hegemonic power structure.

The present research paper attempts to explore the protest of the working class against biased and unfair policies of contemporary cruel capitalists and unjust government in Russia. In fact, *The Mother* is one of the world bestselling novels by Russian novelist Maxim Gorky published in 1906 and has received many prestigious awards for motivating all the revolutionaries and activists during the Russian Revolution. This is the great revolutionary novel that speaks about class-oriented subalternity and protest of revolutionary factory workers for justice and equality during régime of capitalists and contemporary *Tsarist* government of Russia. The novel also speaks about pre-revolutionary life of proletariat class in Russia in order to emphasize the vital role of women in revolutionary activities of working-class

 ISSN 0975-735X

during the Revolution of 1905. Maxim Gorky predominantly focuses on the protest of working class, socio-economic disparity and cruelty of the *Tsarist* government in Russia. In fact, workers were forbidden for reading books and spreading them among the people. But they strongly denied it and protested against them by the beginning of revolutionary movement for their fundamental rights and justice. However, the present research paper deals with the protest and revolutionary act of the working class for the justice and equality in the hegemonic power structure.

The present research paper deals with the protest and revolutionary activities of the working class against capitalism and contemporary government of Russia. In fact, protest is a kind of demonstration, disapproval and manifestation of the people against injustice, exploitation and discrimination imposed by any group or any organization to keep the people away from their fundamental rights and social justice. However, the protesters organize the people to demonstrate strong opposition against injustice, exploitation and all sorts of discrimination.

The Mother is the most popular novel by Russian novelist Maxim Gorky that deals with the purity of the revolutionary soul that strongly opposes a corrupt and cruel capitalist oppressor. The novel particularly focuses on the agitation of the working class for social justice and equality in the Russian class-based society. There is a conflict between two classes i.e. the proletariat and the capitalists. The proletariats are considered as the marginals. They are suffering on account of socio-economic marginality in unjust capitalist government i.e. *Tsarist* Government. However, Antonio Gramsci has also emphasized the plight of the subalterns for neglecting them from the mainstream of the society.

Maxim Gorky has depicted the lives of the marginals with its strong resistance in this novel. The working class people are exploited by the capitalism and the dominant upper class in contemporary society. They are underdeveloped on account of inequality and injustice in terms of socio-economic and political segments. Therefore, the working class is also treated as the lower class, isolated on account of class discrimination. Consequently, they are socially isolated, economically exploited and politically unrepresented in Russian society. The term 'class-oriented subalternity' has been used for the subjugation of the poor working class i.e. the proletariat. In short, the novel speaks about the world of the marginals i.e. proletariat with their strong protest and actively participation in the contemporary revolutionary movement In Russia against exploitation and discrimination in the capitalism.

Nilovna, the female protagonist, belongs to poor working-class, suffers from unfair and unjust policies of the capitalists and *Tsarist* Government. Her son is an activist of the revolutionary movement who has dedicated his entire life for the welfare of the workers in the factory. The marginals have been suffering on account of class discrimination in terms of socio-economic disparity and political injustice for many years. However, the plight of the marginals is faithfully depicted in the novel. Maxim Gorky has bitter experiences of discrimination, poverty, starvation and exploitation. Therefore, he has successfully depicted a realistic life of the factory

workers with their strong protest and agitation.

The struggle is against the rich people and the concerned authorities who treat them as an enemy. In fact, the writer speaks about the classless society and welfare of working-class. Therefore, he appeals all the workers across the world for the unity and agitation. Consequently, they are united to fight against biased policies of the cruel capitalists and unjust contemporary government.

Pavel is the male protagonist leading the proletariat revolution for the justice of the workers. He wanted to know the truth from the books which have been forbidden by the *Tsarist* government. All the comrades used to gather in his house to read the forbidden books associated to the welfare of workers and the revolution. Therefore, the government is afraid about these books which would be a great source of inspiration to the working class for the revolutionary activities. Therefore, Pavel brings the forbidden books in his house so that all the comrades can read them. The writer says:

He began to bring books home with him. At first he tried to escape attention when reading them; and after he had finished a book, he hid it. Sometimes he copied a passage on a piece of paper, and hid that also (Gorky, *Mother* 11).

Pavel is the leader of the working class who sacrifices his entire life to struggle for the justice of workers who have spent their entire life for the factories and industries. He is quite aware of the power of books for the ignition of the mind of the activists to initiate the revolution. The people are awakened for their fundamental rights, social justice and exploitation by reading the forbidden books in the regime of capitalist. Therefore, the contemporary government has forcibly forbidden this kind of literature. Moreover, Pavel and all comrades bring the forbidden books into their house for reading secretly. They wanted to transform the lives of the working class to retaliate the exploitation from the capitalist and contemporary government.

The factory workers decided to protest against the cruel capitalists and the unjust government. The government is very much aware of the power of the literature; therefore, they have forbidden it instantly. If anyone is caught while reading the books, he is punished by putting him into jail. Moreover, all the proletariat and downtrodden class read forbidden books to know the truth. Consequently, all the marginals initiate the movement for the justice of the workers. Similarly, the mother is aware of all the activities, but has never opposed her son from participating in the revolutionary movement. Because, she is an extraordinary mother who wanted to transform the society. Initially, she was worried to protest against the capitalists and unjust government. Afterwards, she turns out to be a full-time activist to foremost the revolutionary movement for the justice to factory workers. Pavel says:

''I am reading forbidden books. They are forbidden to be read because they tell the truth about our-about the workingmen's life. They are printed in secret, and if I am found with them I will be put in prison-I will be but in prison because I want to know the truth'' (13).

It seems that they wanted to know the truth from the books forcibly forbidden by the *Tsarists* government. Pavel and all comrades are secretly reading the forbidden books. If they are found doing so, they will be imprisoned. They decide to protest against unjust capitalism and *Tsarists* government. They suffer on account of unjust policies in the capitalist regime. They wanted to live as a human being although they are poor. Therefore, Pavel appeals capitalists to treat workers as a human being instead of an animal. They also want to enjoy their life as a human being. Pavel says to Natasha:

''We want to be people. We must show those who sit on our necks, and cover up our eyes, that we see everything, that we are not foolish, we are not animals, and that we do not want merely to eat, but also to live like decent human beings…'' (27).

The working class wanted to be decent human beings as they are suffering on account of class discrimination from the upper classes who disregard them as a human being. However, he appeals all comrades to show the abilities and protest to those who are sitting on our necks. Moreover, he pleads people to be aware of the inferiority in capitalism by knowing the plight and secondary position of them in the class system. He further argues that the working-class people are not animal, but human beings. Therefore, all the comrades have participated in the revolutionary movement ignoring their class, caste, creed, gender and race. They protest against injustice, exploitation and all sorts of discrimination. Consequently, they used to gather into the house of Pavel to debate on the writings in the forbidden books.

However, the two classes are emerged in Russian society i.e. 'haves' and 'have nots'. The society has been divided into two classes or groups. As a result, the dominant group is never concerned about the marginalized group in terms of social justice and equality. They feel insecure in all mainstreams i.e. social, economic and political, by asking questions to the established system. Thus, the proletariat appeals all comrades to agitate against unjust, greedy and discriminative power centres for it has been harassing the poor working class and downtrodden in Russia. They protest against greedy power centres that live by the labour. Consequently, all comrades decide to take a stance against them. They appeal:

''It is time, comrade, to take a stand against the greedy power that lives by our labor. It is time to defend ourselves; we must all understand that no one except ourselves will help us. One for all and all for one - this is our law, if we want to crush the foe!'' (63).

The comrades constantly think about the issues and problems of the workers. The proletariat is continuously working for the development of the nation and their unity leads to fighting for justice. The poor peasants and comrades have no voice in the system therefore they are restless on the issues of the workers. Moreover, the revolutionaries assure that workers would conquer one day. They argue:

''We are revolutionists, and will be such as long as private property exists, as long as some merely command, and as long as others merely work…We will conquer- we workingmen!...'' (340).

The power and motivation of the proletarian movement arise from the working people. Their strong activism converts into the final victory. However, they state, 'we shall be victorious'. It means they are very much convinced about the power of the working-class and their victory. Similarly, they are very much honest with the goals and objectives of the worker's movement. They want to transform the system with the help of the masses who can lead the worker's movement to resist the capitalism and unjust government. The comrades appeal for the unity of the masses in the movement. They appeal:

Arise, you working people! you are the masters of life! All live by your labor; and only for your labor do they untie your hands. Behold! you are bound, and they have killed, robbed your soul. Unite with your heart and your mind into one power. It will overcome everything (373).

Thus, the present paper made an attempt to explore the protest of the working class against all sorts of exploitation and discriminations by the capitalist and unjust government of Russia. Similarly, it also deals with the world of the marginals i.e. working class with their strong agitation for their fundamental rights, social justice and equality though they suffer from the class-oriented subalternity. The factory owners and unjust government repress the working class socially, economically and politically. Consequently, all the factory workers have got united and strongly protest against all sorts of repression and oppression by the capitalists and unjust government.

References

1. Gorky, Maxim. Mother. Pigeon Books India, 2012.
2. Gramsci, Antonio. Selection from the Prison Notebooks of Antonio Gramsci. Edited & translated by Quentin Hoare and Geoffrey Nowell Smith, London ,1999.
3. Guerney, Bernard Guilbert, editor. An Anthology of Russian Literature in the Soviet Period from Gorki to Pasternak. Random House, 1960.
4. Guha, Ranajit, editor. Subaltern Studies I Writings on South Asian History and Society. Oxford University Press, 1983.
5. Karhade, Sada. Maxim Gorky. Swarup Publication, 2011.
6. Marx, Karl, and Fredrick Engles. Communist Jahirnama. Lokvadmay Gruh Prakashan, 2010.
7. Yedlin, Tovah. Maxim Gorky: A Political Biography. Praeger Publishers,1999.

dtsathe7@gmail.com

Socio-Historical Analysis of Anuradha Roy's – All the Lives We Never Lived

Mr. Shirsat Fulchandsugriv
Assistant Prof. of English & Head
Department of English
Shri RaosahebRamraoPatilMahavidyalaya, Savlaj, Sangli (Maharashtra)

ABSTRACT

This research paper introduces 'Socio-Historical Analysis of – All the Lives We Never Lived. The novel wrote by Anuradha Roy who an Indian English novelist and depicts contemporary Indian society and history realistically in her novel. Roy also describes issues the contemporary society as custom, politics, culture, history, language, race, religion, tradition, suspense, and so on effectively.

This research paper prominently focuses on society and history from a socio-historical point of view. The novelist covers many aspects of social-historical institutions of contemporary Indian society through this novel. This socio-historical institution how the novelist employs in the novel has generally been pointed out in this research paper. Moreover, Anuradha Roy has noted many approaches of the socio-historical in the said novel. The selected and prominent approaches are analyzed in this research paper. This is a core part and the main aim of the research paper.

This research paper introduces 'Socio-Historical Analysis of – All the Lives We Never Lived. The novel wrote by Anuradha Roy who an Indian English novelist and depicts contemporary Indian society and history realistically in her novel. Roy also describes issues the contemporary society as custom, politics, culture, history, language, race, religion, tradition, suspense, and so on effectively.

This research paper prominently focuses on society and history from a socio-historical point of view. The novelist covers many aspects of social-historical institutions of contemporary Indian society through this novel. This socio-historical institution how the novelist employs in the novel has generally been pointed out in this research paper. Moreover, Anuradha Roy has noted many approaches of the socio-historical in the said novel. The selected and prominent approaches are analyzed in this research paper. This is a core part and the main aim of the research paper.

Introduction:

Anuradha Roy has belonged to Calcutta, India has written out many fiction and non-fictional literary works. Her notable literary works are as

The Earth spinner published in 2021

All the Lives We Never Lived (2018)
Sleeping on Jupiter (2015)
The Folded Earth (2011)
An Atlas of Impossible Longing (2008)

These novels mostly introduce the Indian society, culture, region, religion, communities, and history, etc. The selected novel for the research is highly focused on Indian society and history. In the novel, various social institutions like religion, history, and political movements on the background of World War –II across the world have pointed out shortly. The novelist renders all these aspects very skillfully with given the historical references in this novel.

Thus, the said novel has been selected for the research paper in respect of a socio-historical point of view.

Plot:

The novel is in narrative form narrated by Myshkin from his nine years old and began from his own family life. The novel opens with the character-cum- narrator, Myshkin when he was nine years old his mother GayatriRozario ran away with an Englishman for an uncertain time and faithful cause. But, the incident was become to gossip for the villagers. Hence, Myshkin had done hate to her mother. As Myshkin grows out further gently he knows about his mother deeply and has been changing his attitude and start to respect his mother at the age of sixty.

The time is depicted after 1930 at the opening of the novel and it overs there after World War –II. Myshkin read the letters which had to be sent by his mother to her friend Lisa during the background of World War II to her friend. There Myshkin knows that his mother Gayatri was involved in the peace movement. It was worked against World War –II. Afterward, Gayatri's husband Nek Chand too followed the same path as Gayatri. He was kept in jail by the British due to the anti-movement against the British. Later on, he was released from jail after a long time.

During the time, Gayatri has visited many places these places not common. It has some historical references that are as the place is Rabindranath Tagore's Shanti Niketan, Beryl de Zoete, and Water Spies. Once Walter Spies had visited Shanti Niketan and Gayatri had met Walter Spies in Bali.

The novel ends when Myshkin is in his sixties by giving respect to her mother and removes the thought which was earlier at age of his nine-year old.

Analysis:

The novel has 26 chapters and it is narrated by Myshkin who narrates the story from his nine years to his near about sixty years old. The novel has many angles as war, nationalism, hate and so on that are analyzed in respect of the socio-historical point of view in this research paper.

Social Point Of View:

The novel is divided into 26 episodes. These episodes have been introduced by Myshkin, son of Gayatri and narrator of the novel. Myshkin narrates the story from his nine years. It means that from the early 1930s to 1992. The early 1930s in

India was a time to fight against the British for independence and in the world, it was struggling World War – II. These two issues have been affected many aspects of contemporary Indian society.

There many Indian families have been affected by the British emperor. Each family or each citizen expects independence. Hence, most Indians were engaged in various anti-British activities. Myshkin and his family were not away from it. His family was engaged in anti-British activities for independence and peace. Gayatri, mother of Myshkin was engaged in major activities for the said reason. But, it is exposed episodic in the novel.

Gayatri has been prominently involved in this campaign which is peace at the world's level and travels in the world. Due to this reason, Gayatri has left her house with her son, Myshkin at his nine years old and her husband for an uncertain time. Myshkin, at his nine years he couldn't understand that why his mother has left him. Meanwhile, the people of Muntazir, a town based in Himalayan foothills have been gossiping that Myshkin's mother Gayatri has run off with an Englishman.

So, Myshkin feels loneliness, guilt, grief, and hate for his mother at the earlier of his age. But, as Myshkin grows simultaneously he knows about his mother, Gayatri that her contribution to the peace and deeds being as a woman in the contemporary time is notable. In India, in the early twentieth's it is rarely observed that a woman had been taken leading action against World War- II for the peace which Gayatri has chosen.

Her husband too found in anti-emperor activities. He has imprisoned by the British. Hence, it reflects that not only Myshkin's family was affected by the two major issues like the fight against the British for Independence and peace but also the contemporary Indian society too.

In this way, the novel points out that how Indian families were engaged in anti-British activities for independence and peace in respect of patriotism and humanism.

Historical Point Of View:

World War – II is a world's history. It is well-known to the world. India is one of the nations that were also affected by World War –II. Here, it is not considered the complete history of the world in this novel. Only concerning to the major characters like Gayatri being a member of an anticolonial organization, Indian patriots have visited different nations of the world as Gayatri visited Dutch held Bali of the 1930s for the peace.

Apart from this, the novel employs some large movements concerning the peaceful fight for Indian Independence and World War –II.

The eminent historical personalities as Rabindranath Tagore, Begum Akhtar, Beryl de Zoete, and Walter Spies. In this way, the novelist gives a historical touch in this novel that has to be analyzed in general in this research paper. Moreover, Gayatri's husband and Myshkin's father Nek Chand respond to the movements which can be thought of as anti-British activities.

Thus, this is a historical novel. This is also known as the flashback memory of Myshkin and the incidents have narrated by the novelist are concerned with the history of the world and contemporary Indian history.

Conclusion:

All the Lives We Never Lived, the novel speaks about the family life of contemporary Indian Society. MyshkinRozario, a nine-year-old boy whose mother, GayatriSenRozario leaves behind the comfort and familiarity of a marital home, the innocent love of her only child, and an indifferent husband to escape to the Dutch held Bali of the 1930s for uncertain time which has become the latest piece of gossip in the town of Muntazir. But, years later Myshkin knows that he never knew. Hence, it can be said that socially the family was struggling for self and British for independence and peace. This is the common picture of contemporary Indian society.

The novel also is a slow period drama that is not really based on actual historical events but the story loosely explores the events of the 1930s and early 1940s. It talks of a time when the entire world arena was dominated by World War-II that was meant as an answer to all wars, but which adversely affected millions in its aftermath.

Eventually, it is pointed out that Anuradha Roy has reflected contemporary Indian as well as the World's demand in respect of independence and peace. Roy also depicts the Indian families that have suffered, their patriotism, scarifies of the family for the nation, hate, loneliness, and so on that are concerned to the contemporary Indian society and history as a need of the plot of the novel.

Rrffrences

Books

1. Abrams M.H. Harpham Geoffrey Galt. (2009), *A Handbook of Literary Terms,* Cengage Learning, New Delhi, India.
2. Calhoun, Craig.(2002), *Dictionary of the Social Sciences,* Oxford University Press, Oxford.
3. Roy Anuradha. (2018), *all the lives we never lived,* Hachette, Gurgaon, India.

Website

1. www.wikipedia.com
2. www.goodreads.com
3. www.theguardian.com

Email ID: shirsatfulchand@gmail.com
Cell no. +919822033507

Celebration Of Black Female Power Through The Artistic Blending Of Past And Present in Gloria Naylor's *Mama Day*

Dr. Surekha Sandeep Patil
Assistant Professor, Department of English,
SadguruGadageMaharaj College, Karad, Satara, Maharashtra, India
surekha8292@gmail.com

ABSTRACT

Gloria Naylor is a foremost voice in the group of African-American female writers after Toni Morrison and Alice Walker. Through her novels, she has delineated the quest of black females for their identity. In this direction, she has published her third novel namely *Mama Day* (1988) being a part of her quartet group of novels which portrays the mutual relationship not only within the black female community but also between the generations of black female by consolidating African past with a contemporary setting which is achieved through the introduction of supernatural or gothic elements of magic and myth. Moreover, she has synthesized the elements of love and magicin order to give authencity to black history and culture to underline its prime importance in the contemporary modern world.Willow Springs signifies dominance of black community or power as it is presently governed by black female namely Mama Day who is a descendant of the black slave legendary lady called Sapphira Wade who was a conjurer woman.The present research article intends to explore the question of self identity and quest for ancestral roots through the projection of the life journey of Cocoa from ignorance to self-realization whose roots are in itself in the rich heritage of the matriarchal black culture of her foremothers and this black female spirit is celebrated through the artistic combination of past and present with a longing for promising future in Gloria Naylor's novel *Mama Day*.

Introduction:

Gloria Naylor is a leading voice in the group of African-American female writers. Through her novels, she has delineated the quest of black females for their identity. In this direction, she has published her third novel namely *Mama Day* (1988). Through this novel, Naylor has shown a novel way to bridge the gap of ignorance and isolation between the generations of black female community by paying tribute to the matriarchal culture which is at the centre of the independent black community of an island namely Willow Springs that is situated on the south-eastern coast of the United States and it is off the coast of Georgia and South Carolina not appearing on any map. It is an utopia created by Naylor to exemplify

what black life might have been if it is free from the control of anybody. Willow Springs is a liberal fictitious world whose inhabitants have developed their own black American culture strongly linked to their African roots. This island stands for the folk African culture and community which has an adherence to the nature oriented tendencies by keeping distance from the modernity of northern cities. It signifies the faith in the past tradition and culture.

Discussion:

a. Willow Springs- The Epitome of Black Female Spirit:

Mama Day is the first novel by Gloria Naylor which is named after her central character as Mama Day proves to be a central force in overcoming the natural as well as man-made calamities. Moreover, Mama Day has lived more than 90 years on the island as its controller and owner with a humanistic approach. The island breathes the spirit of Mama Day which she has received from her first rebellious female descendent known as Sapphira Wade who occupies this island from her white master called Bascombe Wade in 1823. Sapphira Wade was "a true conjure woman: satin black, biscuit cream, red as Georgia clay"(3). It was her physical appearance as well as her art of conjuring which attracts others. Besides, she had an extraordinary power of communicating with the spirit of dead ones as well as supernatural. Moreover, she had the knowledge of herbal medicine with which she could heal any kind of wound or disease. Naylor artistically describes this legendary woman in the opening lines of the work as follows:

WILLOW SPRINGS. Everybody knows but nobody talks about the legend of Sapphira Wade….She could walk through a lightning storm without being touched; grab a bolt of lightning in the palm of her hand; use the heat of lightning to start the kindling going under her medicine pot: depending upon which of us takes a mind to her. She turned the moon into slave, the stars into a swaddling cloth, and healed the wounds of every creature walking up on two or down on four. It ain't about right or wrong, truth or lies; it's about a slave woman who brought a whole new meaning to both them words, soon as you cross over here from beyond the bridge. (3)

The above lines throw light on powerful personality and spirit of Sapphira Wade and which is transformed into her female descendents respectively Mama Day and Abigail.

b. Three Succeeding Generations of Black Female Power:

The novel portrays the three generations of black female characters. The first generation is represented by legendary woman Sapphira Wade and great grandmother who has sown the seeds of rebellious and independent black female spirit which is carried forward by the women of second generation including Mama Day and Abigail who have made efforts to inculcate the same spirit in the third generation represented by Ophelia or Cocoa who is prepared to find her roots in the folk black culture of Willow Springs through the endeavors of Mama Day.

c. Mama Day- Savior of the Whole Community:

Mama Day or Miranda as her name symbolizes is not only a 'Mama' to her

niece Cocoa but also a 'Mama' of the whole community of Willow Springs and the guardian of its entire black folk culture. She is savior of Willow Springs as she can peep into the past and predict about future. So, she protects the island from natural as well as man-made calamities. She is a powerful conjure woman with special gifts derived from "being a direct descendant of Sapphira Wade"(6). Her supreme power is respected by the folks of Willow Springs. Hence, "if Mama Day say no, everybody say no"(6).In this respect, Larry Andrews opines that "female power and wisdom are vividly incarnated in Miranda"(CLA Journal 18). Therefore, the character of Mama Day is central and dominant being a direct ancestor of the special gifts of her foremother Sapphira Wade.

d. Unification of Two Contrasting WorlosQ:

The novel delineates the two contrasting worlds that is the magical and realistic world. The former is represented by Mama Day and the latter is represented by Cocoa and George. Magical world has its adherence to the past folk culture and tradition whereas realistic world deals with the contemporary modern world which is illustrated through the character of Cocoa and George who have adopted urban culture of New York city. Magical world is itself exemplified through the personality of Mama Day who has a mastery in the art of conjuring as well as has the ability of transpersonal communication with which she can easily converse with dead ones. The island itself is a magic as it is affluent with all its natural beauty and rarely found herbs with its simple, innocent and unified black matriarchal folk culture. Therefore, magical world has its roots in the past and realistic world has its roots in the present.

e. Transpersonal Communication:

It is believed that through the transpersonal communication, the ancestral power and art can pass into the present and future generations for healing. There are two types of ancestors- Territorial or Land Ancestors and Spiritual Ancestors. Territorial Ancestors consist of the beings that incarnate on the land as spiritual guardians as they are living and working on the same landand the Spiritual Ancestors are the spirit beings who provide inspirational force for our spiritual life. Here, the personality of Mama Day combines these two types of ancestors as she has been living for 90 years on the island. So, both of them are intensely rooted in one another and can't be alienated from each other. Moreover, she is a spiritual sentinel of the community living over there and trusted and respected for her knowledge of herbal medicines and her gifted second sight.She employs these gifts of her foremothers for the well being of the black community of Willow Springs. She has got this gift from her great grandmother Sapphira Wade and which she is going to transform into the present successor Ophelia or Cocoa. So, Naylor aims at promising this bright future for the black community and culture with their rich heritage. Hence, past and present are artistically mingled in the personality of Cocoa who is going to be the successor of Mama Day.

f. Cocoa's Search for Her Ancestral Roots:

Cocoa is a young woman who has left Willow Springs to work and settle at

New York. However, she has adopted urban American way of life, she has a powerful tie with her homeland. One can't run away from his native environment since an individual's personality is formed in that environmental circumstances and it is widely approved that we are by product of nature or environment. In this respect,while focusing on "the conflation of home and self" (Rosemary p.19), Rosemary George and other humanist geographers restate the "indivisibility of humans from their environment"(Rosemary p.46). This view of Rosemary is more applicable to the character of Ophelia. Therefore, she visits the island regularly in the month of August and she also takes part in the "Candle Walk Night"(110)which is an antique cultural ritual of black folk to honor the work of their ancestors and which is done always on the night of twenty- second December when "folks take to the road"(110), greeting one another with a spiritual words- "Lead on with light" (110) and exchanging gifts among them.

g. Adherence to Pastoral Conventions:

"Candle Walk"is an ancient African ritual which is the part of their pastoral convention to establish a line between past and present generations and symbolizes bonding between past and present African community. It is an inspiration for young generation to follow the path of their ancestors and make their life brightening and admirable making their successors ready to follow it. It is one of the foremost cultural conventions of African-American civilization functions as a means of transformation for the preservation of its cultural heritage. It also attributes respect to the concepts of African history, family, friendship, community and culture. Therefore, Miranda tells, "My daddy said that his daddy said when he was young, Candle Walk was different still. It weren't about no candles, was about a light that burned in a man's heart."(308)

There is a strong bond of black sisterhood which is prevalent in the blood sisters- Miranda and Abigail who have raised Cocoa after the death of their sister Grace. Mama Day has a conscious attachment with her mother and foremother. It is generally acknowledged that the past is the best teacher and preacher. Hence, this female power of their foremothers inspires the black women and men of the island to learn and to receive strength and motivation from them to make their life divine and admirable. The female spirit is used as a means to revive the past which is the need of present and future. As Willis rightly remarks, "for black woman history is a bridge defined along motherliness" (Willis 6).

h. Mama Day- A Central Force in Cocoa's Realization of Cultural Roots:

In *Mama Day*, Ophelia's search for self identity and ancestral roots is the central thematic concern as she faces external and internal conflict between her adopted urban culture of New York and her original rural ancient culture of Willow Springs about which she becomes conscious through the genuine efforts of her elder grandmother called Mama Day who serves her like a mother after the death of her mother-Grace.

In spite of Cocoa has been raised by Mama Day and Abigail, she is not conscious about her foremother's tradition as well as she is totally unfamiliar to the evils of materialistic New York culture and Miss Ruby's resentment. She is haunted by the dreams and voices which she is unable to interpret until she realizes her own cultural history through the help of her surrogate mother Mama Day who instills in her strong sense of black sisterhood by making her conscious about a long chain of black foremothers being a dominant spirit operating in their lives as a part and parcel of cultural roots of Willow Springs. When Cocoa's life is darkened by the nightshade of Ruby, Miranda herself tries to get knowledge of the whole tradition of afflicted women- from Sapphira's slavery to Cocoa's predicament.

After stressing Bascombe's ledger, Mama Day comes to know where her sister Piece had died to understand her mother's sufferings and tragic death. She restores Cocoa to life by making her aware of her dominant female spirit that lies within her being a gift of her foremothers. Only she needs to awake and avail it for the well being of her black ethnicity and neighborhood. In such a way, this rich black heritage can be transformed from one generation to another. Same feeling Miranda desires to suggest when she says, "The rest will lay in the hands of the Baby girl- once she learns how to listen"(307). As Cocoa discovers her past, Mama Day feels that there are no more secrets left to herself to learn.Thus Ophelia, Baby girl alias Cocoa, is brought back into the tradition ofSapphira Wade through Mama Day and feels proud to be a part of such rebellious black female family and culture by discovering her roots. Now, she is able to listen and interpret the voices of the spirits.

i. The Cyclical Nature of the Novel:

The novel has a cyclical nature because it begins with recalling the spirit of their ancestors and ends on a same note of on the evening of the twentieth century, with remembering their ancestors and their sacrifice. The novel ends on an optimistic note motivating its successors to go deep into their culture, when Cocoa states, "You see, that's what I mean- there are just too many sides to the whole story"(311) and Cocoa has to find out it being the last successor of Days' family to transform it in her forthcoming female generations.

Conclusion: Thus, by highlighting the life journey of Ophelia or Cocoa from innocence to self- realization, Naylor has depicted the sovereignmysteriousworld of Willow Springs which has the dominance of black female spirit and which is governed by the feeling of communal harmony especially the feeling of black sisterhood from one generation to another generation that is epitomized through the strong chain of love and faith among blackfemales of diverse generations living on this Utopian island- Sapphira Wade-Mama Day-Ophelia who have emotional, domestic, communal and cultural bonding among them as they share the knowledge of a world of dead spirits, premonitions andprofound communication with nature. These gifted black females aim to utilize this wisdom to preserve the black folk culture and heritage as well as to keep harmony in black community and form the concept of whole black community

that honors the black female power. Through the creation of the character of Mama Day, Naylor has emphasized the necessity of individuals' communication with the nature, their own self and their ancestors to make life meaningful, complete and honorable.Accordingly, all through this fictional world of *Mama Day*, Naylor has given the new insight to the concept 'womanhood' by attributing to it spiritual connotation which makes her different from other feminist writers.

References:

1. Andrews, Larry R.. "Black Sisterhood in Gloria Naylor's Novels". CLA Journal. 33.1, (1989), p.18.
2. Barry, Peter. Beginning Theory. South Asian Edition Chennai: Viva Books, 2007.
3. George, Rosemary Marangoly. The Politics of Home: Postcolonial Relocations and Twentieth-Century Fiction. Cambridge: Cambridge UP,1996.
4. https://www.encyclopedia.com> arts >glossary of literary terms>conflict, March 2019.
5. https://www.gaia.com/article/how to communicate with your ancestors. Accessed 14 May 2019.
6. https://www.culturaldiplomacy.org/index.en_culturaldiplomacy. Accessed 16 May 2019.
7. K, Kishori Nayak. American Fiction. Jaipur: Mangal Deep, 1997.
8. Naylor, Gloria. Mama Day. New York: Vintage Books, 1989.
9. Willis, Susan. Specifying: Black Women Writing the American Experience. Madison:University of Wisconsin Press,1987, p.6.

 ISSN 0975-735X

Teenage psychology depicted in Rabindranath Tagore's Short story *'Home Coming'*

Dr. Vaishali Vasant Joshi
Assistant Professor in English
Smt. Mathubai Garware Kanya Mahavidyalaya, Sangli

Abstract

Rabindranath Tagore has written in all kinds of literature which includes novels, poems and short stories. It is observed that he was interested in the education and upbringing of children. Rabindranath Tagore gave very realistic scenario of Child Psychology in his story. In the present research paper the researcher tries to highlight the behavioral aspect of adolescent children and how parents fail to understand them. And so the consequences of it are very horrible.

Short story is very famous literary genre of every age group. It did back to oral storytelling traditions. It, generally, includes only one important event. There are very less characters.

Many writers and critics tried to define short story. Here researcher refers M.H. Abrams definition:

"A short story is a brief work of prose fiction and most of the terms for analyzing the component elements, the types, and the narrative techniques of the novel are applicable to the short story as well."

The Indian short story has its own features. They tried to highlight the contemporary issues of the society. Today it has gained a significant position in literary field.We cannot forget the name of Rabindranath Tagore in this genre. They have emotional attachment also. Tagore's short stories reveal the inner process of mind. His stories have Universal appeal. Tagore is a keen observer of men and women. He understood what is happening with people and their psychology. So they are portrayal realistic picture of the society. They identify the pathos of children almost all his short stories. In the present research article, the researcher wants to depict how Rabindranath Tagore keenly observed the minute psychology of teenage boy. For this the researcher has chosen Tagore's short story *'Home Coming'*.

First of all the researcher wants to throw light into the teenage psychology. Adolescent is a stage of biosocial transition between childhood and adulthood. It differentiates distinguishes childhood behavior from adult behavior. It is the period where physical, psychological and social changes occur. From physical point of view, there is growth of body; psychologically it is a period of adjustment, acute self-

consciousness, rebelliousness and idealism. At the same, it is the period where some changes occur from emotional point of view. Emotionally, the main function is to develop appropriate ways of adjusting to new feelings evoked by bodily changes. The teenagers experience a great change in perception for friends, parents as well as for the self. They experience conflict with parents. Sometimes they feel lack of respect for them. They feel irritation towards elders. If not given proper way to emotions ,they experience emotional turmoil. They experience storm and stress. They find themselves in fluctuating moods and emotions. At this stage, the teenagers face the main problem of quest for identity. The search for identity is life long process but it comes into focus during the adolescent age. It is the time where the adolescents have intensive urge for sense of self. If they face any confusion in their identity, it is a great obstacle in their achievement. So the role confusion is a great hindrance in their path of development. Love is an avenue towards identity.

All these aspects are seen in the select story of Rabindranath. The story begins with Phatik being described as a ringleader. He had mother and younger brother. *The Homecoming* describes the life and feelings of 14 years young boy. The story shows us a significance of affection in an adolescent boy. Phatik desires love and care from others as he feels very lonely, nobody cares for him. Teenage is such a crucial stage that nobody loves them as a baby nor is they of any use to the parents.

The first teenage problem is mischievousness.The story begins with naughtiness. Phatik was a leader of the boys of a village. They were planning to carry the load of the villager to another place and the owner of the log would be surprised and angry. They enjoyed the situation a lot. Meanwhile Makhan disturbed them and sat down on the log. He was pushed by the boys but failed. Being furious, he commanded to roll the log. As the result, Makhan fell down. Makhan harmed Phatik and finally went crying home. The next episode is very important as it shows the parents' behavior towards teenage child. The mother instead of understanding the whole situation blamed Phatik.

"She called out angrily: "So you have been hitting Makhan again?"

"Phatik answered indignantly: No, I haven't; who told you that?"

His mother took Makhan's side in a moment and pulled Phatik away, beating with her hands. When Phatik pushed her aside, she shouted out: "What! You little villain! Would you hit your own mother?" (32)

It shows how the parents should take precaution while behaving with teenage children especially boys. It leads the boy to violence. The next mistake the mother does is to send the boy to his uncle. In the beginning, the boy was very happy to visit uncle's house but as he experienced the different treatment from the aunt, we observe, the disturbed psychology of the adolescent boy. He wanted to impress his aunt as she hated him; he did some mistakes and once again created a big raft between them. At this juncture of life he longed for love very intensely but he didn't get it. Phatik was really in want of recognition and love; "he becomes the devoted

slave of any who shows him consideration". Phatik tried the same but failed to achieve it. He felt uncle's house as a little short of torture. The atmosphere was oppressed that he could hardly breathe. He started to dream of his own village. In addition to it, the school teachers were treated him badly as his performance was very poor. His friend tortured him physically and mentally. He felt insulted. Here researcher observed emotional turmoil of the teenage boy. The next morning Phatik was nowhere in the house. There was a heavy rainfall. Police were called and started to search for him. At the end of the police were successful to find out him. His condition was so horrible.

Though such was a terrible condition, Phatik's aunty started to comment ironically. After hearing the words, he cried a lot. His health was continuously deteriorating such condition he was talking about holidays, not to beat him, and so on. He was expecting to see his mother but she was not there. Lastly she came but Phatik was not in condition to talk her. The last sentence he said was, "Mother, the holidays have come".

It is to note that adolescent age is very critical to understand as the child is not a baby and not an adult. It's the parents' duty to understand the situation and try to console the child. If the parents are unable to do their duty, the child may become Phatik. So how parents behave with the teenage children, matter a lot.

References

1. Introduction to English Literature: The Short Story and The Novel, Shivaji University Kolhapur.
2. Abrams, M.H: A Handbook of Literary Terms: Cenaga Learning Pub.2009
3. Goodman, W.R.: History of English literature. Dorba House, Delhi, 1965.

NgugiwaThiong'o's short-story "Minutes of Glory": A Comment on African Womens' Subjugation

Dr.Vidya Desai
Assistant Professor
Department of Humanities and Social Sciences
Vishwakarma University, Pune
Maharashtra, India

ABSTRACT

This paper attempts to deal with the famous contemporary African writer Ngig)waThiong'os comment on the postcolonial African woman's search for liberation, identity and self-hood in the short story titled "*Minutes of Glory*". Through the two powerful female characters namely Wanjiru and Nyaguthii, the writer tries to dissect the inner psyche of the two women who both seek for a respected place in society while still desiring to live their lives on their own terms.NggwaThiong'o illustrates the inner anguish of these two female characters who, trapped under the chains of societal/cultural conventions, would rather fly and taste the happiness and exhilaration of emancipation.Both female protagonists in NgugiwaThiong'o's short story "*Minutes of Glory*" are great examples of female liberty and revolt, as they are tired of complying to established value systems. Regardless of their financial situation, both of them will have to suffer as a result of their defiance of tradition.

Introduction

Women have been portrayed as delicate, frail, and depending on men for their existence in African literature, as in most other literature. The depiction of the status of women in general in the African society is mostly handled by African women writers in African literature, but it is rare in the history of literature that the struggle for a female existence is so vividly captured on the canvas of short fiction by an African male writer in the same manner or perhaps much more empathetically than any female African writer would have. The purpose of this paper is to describe the current status of postcolonial African women, as depicted by the famous African male writer NgugiwaThiongo', who, despite their desire to break free from the age-old roles of caretaker and nurturer, are thwarted by patriarchal society to continue in the same traditional role of caretaker and nurturer. The present paper also attempts to do a close reading of the short story titled "Minutes of Glory" taken from NugugiwaThiongo's short story collection.

 ISSN 0975-735X

Analysis

The short-story Minutes of Glory is about two young female characters' namely Beatrice and Nyaguthii. The main character Beatrice is a bar-girl, who due to poverty and lack of education had to do a disrespectful job of a bartender. Beatrice was also was depressed not only because of poverty but also due to her black complexion & lack of beauty. She was usually unhappy, and she was always complaining about how she was not as attractive as the other girls. She attempted other ways to improve her appearance, such as using Ambi lotion to lighten her skin. Beatrice feels unsatisfied with herself and no longer wants to be ignored. As a result of her ugly appearance she fails to attract the male customers and this several times leads to her getting fired from every job. On the other hand, another bar maid named Nyaguthii, an extremely beautiful and attractive girl very easily attracts men and this makes Beatrice jealous of Nyaguthii. Beatrice felt envious of her companions, particularly Nyaguthii, who was the most exceptional of them all. Her clients would shower her with presents and compete for her attention. Beatrice feels gloomy, sorrowful, and unhappy with herself. She considers committing suicide.

Beatrice was born in Karatina, Kenya, and raised in Nyeri. The British soldiers had shot and killed her two brothers. Another person died while being held in custody. Her parents were impoverished, but they worked hard on their small plot of land and were only able to pay her primary school tuition, but couldn't afford to pay for her high-school education hence Beatrice against her own wish had to do menial jobs like that of a bar-maid.

An unnamed narrator tells the narrative in the third person. Beatrice is unsure of who she is or, more importantly, who she wishes to be. She despises working as a bartender and feels uncomfortable in the company of other bartenders at each location where she has worked. Beatrice's insecurity derives from her opinion that she is not as attractive as the other female bartenders, and as a result, she gets enraged when a guy refuses to speak to her or sleep with her. As a consequence of her fears, it's also possible that Beatrice is attempting to explain her existence by sleeping with total strangers.

Beatrice aspired to live a normal, respectable life but was unable to do so owing to her poverty, lack of education, and unattractive appearance. Rather than lusty guys, she want a spouse. Beatrice fantasised of a joyful, opulent existence with a partner who would arrive in a Mercedes sports car. She fantasizes of a life which is completely impossible for her to live.

Thiong'o also appears to be criticising the existing educational system. Not only had Beatrice slipped through the gaps, but several of the other bar ladies had been let down by their professors as well. Similarly, there appears to be no job opportunities in Beatrice's community, so she, like the other female bartenders, must wander from town to town in search of work. The truth that some of the girls strive to lighten their skin might also be significant, as it indicates that they are unhappy with their dark complexion (or identity) and are aware that the bar's clientele

favor lighter-skinned ladies.

The rivalry between Nyaguthlii and Beatrice is especially fascinating because Beatrice appears to be envious of Nyaguthlii's good looks and ability to earn more money than Beatrice. Nyaguthii's background, on the other hand, isn't any superior than Beatrice's, and there's a notion that when the two girls interact, Beatrice has misconstrued Nyaguthlii. This might be significant since it could explain why the two females became friends. At truth, they have comparable backgrounds and are doing the same thing in the bar. There is also no feeling of equality, with each lady treated more like a product than a human being at the bar. There will be no ramifications if a lady is treated poorly by those in the pub. This indicates that Thiong'o is focusing on the predicament of African women in a postcolonial society.

Conclusion:

The story's conclusion is particularly intriguing, as Beatrice makes a half-hearted attempt to break out from her existence. She not only takes the money, but she also buys new clothes for herself, believing that this will increase her chances of getting recognised at work. This is effective, yet nothing has truly changed. Beatrice is actually doing the same job as the others, but she is dressed in more fashionable clothing. Something that might be significant since Thiong'o may be emphasising men's fickle nature. Beatrice had previously been ignored by the men in the pub since she was dressed in her old clothing. She is suddenly the focus of everyone's attention. Beatrice's situation, on the other hand, deteriorates. Beatrice gets arrested when the man with the vehicle and the cops arrive at the pub. She's had her moment of fame, and now she'll be sentenced to prison for stealing.

Minutes of Glory is a short-story in which the author NgugiwaThiong'o makes a powerful statement against the current state of African women, who, although having a great desire to live a respectable life, are unable to do so due to the nation's weak educational system and patriarchal character of the society. Thiong'o has sought to throw light on the deplorable state of African women in the postcolonial era through this story-story.

Works Cited

1. Azodo, Ada Uzoamaka. African Feminisms in the Global Arena. Goldline and Jacobs Publishing, 2019.
2. Hunter, Adrian. The Cambridge Introduction to the Short Story in English. Cambridge University Press, 2007.
3. Schulz, Kristina. The Women's Liberation Movement : Impact & Outcomes. Berghahn Books, 2017.
4. Sircar, Roopali. The Twice Colonised: Women in African Literature. Creative Books, 1995.
5. Thiong'o, Ngugi wa. Minutes of Glory: And Other Stories. New Press, 2019.

Spy Craft in Ian Fleming's *From Russia with Love*

Dr. Sandhya Sunil Potdar
Assistant Professor, Balwant College, Vita
Dr. Jahangir A. Mulani

Abstract : Ian Fleming is known as the creator of the legendary character of James Bond, the best known spy in the history of spy fiction. Employing his own experiences while working as a reporter and later for British Naval Intelligence, he created the mesmerizing series of Bond novels.The mixture of imagination along with the local elements, setting and realistic people made the Bond series effective spy stories. From Russia with Love is the fifth novel in this series. Set mostly in Istanbul it narrates the adventures of James Bond, British secret service agent, better known as 007. It explores the theme of spying and various skills and tactics used by spies for intelligence gathering. The novel provides instances of devices that assist one engaged in espionage. The authentic detailing of the tradecraft makes it one of the best spy novels.

*From Russia with Love*published in 1957 is the fifth novel in the Bond series written by Ian Fleming. Fleming thought it to be the last one when he started writing it in the beginning of 1956. But the novel was a grand success and though it ends with a question mark about Bond survival, Fleming had to bring back his secret agent hero into action in the successive novel. The novel deals with how James Bond is yet again is successful in thwarting the plot of the Soviet counterintelligence agency i.e., SMERSH to kill Bond and to dishonor him by framing him in a sex scandal. Most of the action of the novel is set in Istanbul. It excels in portrayals of the villains and presents action packed scenes full of suspense. Revolving around the legendary character of Bond and his mission, the novel provides the best example of spy fiction and contains ample examples of spycraft.

Spying is one of the oldest of professions known to man. Spies are at the center of the intelligence gathering of a country or an organization which is considered to be the backbone of its defense. Theycollectvery important information that many times provides opportunity to defeat the enemy force and protect the country from conspiracies within.It is because of its immense importance many thinkers since the ancient time have elaborated on espionage. References to spying are found in ancient civilizations of Egypt, Greek and Roman. In China Sun Tzu wrote The *Art of War*, a book that emphasizes the immense importance of intelligence gathering. There are instances of spying in the Ramayana and Mahabharata as well. In

*Arthashasta*Kautilya speaks extensively about the tradecraft. According to him 'power of knowledge' is the most important. He states,

'The king with the eyes of intelligence and (political) science' can overcome rival kings even if they possess greater economic or military resources and personal valour. (Kautilya-Arthashastra, IX, 1, 15.)

It is observed that in spite of the secretive nature of this profession there are ample reference of acts of spying throughout the history. Today most of the spies work for some or the other secret service.They are skilled in detecting and collecting military, political and also industrial and technological data about a country which is beneficial for the other. In addition to intelligence gathering they are sent on missions like, forwarding important messages, to follow somebody, to assassinate somebody, infiltrate the opposing organization, forming a resistance. Spying asks a lot more on part of the spy than simply searching and then forwarding information. A spy needs to be very much proficient in the various skills required in his profession to accomplish his goal.

The term 'spy craft' or 'tradecraft' is used for various espionage strategies that an agent uses for intelligence gathering. It comprisesof tactics such as making crafty disguises, conducting surveillance, using various ways of concealment, collecting secret information and transmitting secure messages with other agents. The present novel opens with the description of a man named Danovan Grant who is also known by the name 'Red' Grant. He is a Chief Executioner of SMERSH receiving his instructions on the MGB line with Moscow. The description of his personal history and his training at 'the Intelligence School for Foreigners' gives a fair idea of the challenging nature of profession of a spy.

He was quick to understand the rudiments of Codes and Ciphers, because he wanted to understand them. He was good at Communications, and immediately grasped the maze of contacts, cut-outs, couriers and post-boxes, and he got excellent marks for fieldwork in which each student had to plan and operate dummy assignments in the suburbs and countryside around Leningrad. Finally, when it came to tests of Vigilance, Discretion, 'Safety First', Presence of Mind, Courage and Coolness, he got top marks out of the whole School. (33)

Then the headquarters of SMERSH is described. It throws light on the various techniques and devices necessary for an organization involved in intelligence gathering. This room has a TV set. There is a tape-recorder concealed in it, which can be switched on from the desk. There are books in all languages on espionage, counter-espionage, police methods and criminology. The room is equipped with a telephone using high frequency and accessible to only a few important officials, with the facility of recording available.

It is here in this very room a *'konspiratsia'* is agreed upon and the death warrant for Bond is issued. It is supposed to be an attack aimed at the heart of the Intelligence apparatus of the West and cause a public scandal. This *'konspiratsia'* turns out to be a 'honey trap'.A honey trap is one of the oldest espionage technique.

It is a deceptive mission where an agent lures a targeted person into a romantic affair and tries very cleverly to extract secret information during or after a sexual encounter. In the novel, SMERSH with the help of Kronsteen and Rosa Klebb plans a conspiracy to trap Bond in a sex scandal using Tatiana as a bait and ruin his as well as his service's reputation.

There are references to various types of agents who work under cover. For instance Kronsteen, who devices the plan of the execution of Bond's death warrant, works for SMERSH. But for the rest of the world he is 'The Wizard of Ice', a famous chess player. When he is blamed for the charge of disobedience, Kronsteen defends himself by providing the excuse of his cover to save himself.

It would have been end of my cover. In the interests of State Security, I waited three minutes before obeying the order. Even so, my hurried departure will be the subject of much comment. I shall have to say that one of my children is gravely ill. I shall have to put a child into hospital for a week to support the story. (78)

There are 'public agents' who are not supposed to work under cover, for instance, Kerim. They don't need to spend time and energy maintaining a cover. They work as a front man, so that when someone comes up with some significant information, they should know where to go and whom to approach. In the novel everybody knows DarkoKerim to be working for the British secret service and it is him that Tatiana approaches.

The novel also explores the technique of surveillance that is vital in the spy craft. Surveillance is keeping watch on the behavior, happenings and other information about people with intention of manipulating, dealing, guiding, or guarding them. Surveillance can be of various types, sometimes conducted from a distance by making use of electronic apparatuses like CCTV cameras, or capture of electronically transferred data like phone calls or Internet traffic. It can be of simple nature, not using any technology where human intelligence agents observe somebody. In the present novel there are various instances of surveillance. James Bond is under constant surveillance the moment he sets his foot in Istanbul. As Kerim informs Bond the British, the Russians and the Americans have paid men in all the hotels for the purpose of surveillance. Kerim is followed everywhere he goes by the 'The Faceless Ones' and have to used ways to avoid the tail.

The novel offers ample examples of concealment devices, used frequently in espionage. For instance, when Bond is about to leave for Istanbul, Q Branch of his service provides him with 'the complicated bag of tricks', as Bond calls it,that consists of the various tools of his trade, very cleverly concealed.

Q Branch had put together this smart-looking little bag, ripping out the careful handiwork of Swaine and Adeney to pack fifty rounds of .25 ammunition, in two flat rows, between the leather and the lining of the spine. In each of the innocent sides there was a flat throwing knife, built by Wilkinsons, the sword makers, and the tops of their handles were concealed cleverly by the stitching at the corners…The whole top of this unscrewed to reveal the silencer for the Bereta, packed in cotton wool. In

case hard cash was needed, the lid of the attaché case contained fifty golden sovereigns. These could be poured out by slipping one ridge of welting. (145)

Kerim uses a gun, smartly disguised as a walking stick. Kerim held forward his walking-stick to shoot a man who has tried to blow his office.

As Bond had supposed, it was a gun, a rifle, with a skeleton butt which was also a twist breech. The squat bulge of a silencer had taken up the place of the rubber tip. (223)

Then at the end of the novel, Nash uses a gun concealed in a book. As Nash informs Bond there are ten bullets in it - .25 dumdum, fired by an electric battery.

The book was still open on Nash's lap, but now a thin wisp of smoke was coming out of the hole at the top of its spine and there was a faint smell of fireworks in the room. (305)

There is reference to a dummy in the car. It is one the most used techniques for deceiving the tails. When an agent wants to escape the surveillance, he can use this device so that the tail following the agent would see the dummy in the car thinking it to be the agent himself. When Bond and Kerimare on their way to visit the gipsy camp, Kerim tells Bond about it. He confides that many times he has used this trick so that he could mislead his tails. The tail, 'A Faceless One', as he calls them, many times have trailed his car for miles, when actually it is just a dummy and not him in the car.

At the end of the novel when finally Bond is confronted with Rosa Klebb, inconspicuously disguised as a little old women, she uses many weapons that are cleverly concealed and succeeds in fatally injuring Bond. There is a bell push that she presses which Bond very prudently notices not to have any wires led from it. It actually turns out to be a button of the revolver set in the 'telephone'. Then she attacks Bond with the poison coated knitting needles. And finally when both Bond and Mathis assumed that they have finally arrested her and are safe, she delivers her final blow using a thin knife blade concealed in her boot, which is, like the needles, has poisonous tip.

Thus the novel comprising many scenes of suspense and description of techniques, tactics and devices used in the tradecraft of espionage becomes an entertaining reading and establishes itself as one of the best examples of spy fiction.

Bibliography:

1. Fleming, Ian. From Russia with Love. London, Penguin Books, 2006. Print.
2. Hastedt, Glenn. Espionage: A Reference Handbook (Contemporary World Issues). Santa Barbara: ABC CLIO, 2003. Print.
3. Liebig, Michael, 'Kautilya's Relevance for India Today', India Quarterly, Vol. 69, No. 2, 2013, pp. 99–116.
4. Davies, Philip H. J. MI6 and the Machinery of Spying. London: Frank Cass, 2004.

Web Resources

1. Ian Fleming. Wikipedia Free Encyclopedia. <http:èkèken.wikipedia.org/wiki/Ian _Fleming>
2. Ian Fleming. Official Web Site of Ian Fleming Woods, Brett F. Revolution and Literature: Cooper´s The Spy Revisited. Web

Historical analysis of the D.A.V. Institution in Punjab (1886-1930)

Dr. Jaspal Singh
Assistant Professor
Punjabi University College,
Ghudda (Bathinda)
Pardeep
Ph.d. Scholar
Punjabi University, Patiala

Education is the process of faciliating learning, or the acquisition of knowledge skills, values, morals beliefs and habits. In India there have been various types of education system like Temple system and Madrsa System.[1] But in 19th century different types of social movements were there for example Brahmo Samaj, AryaSamaj Prarthana Samaj but Arya Samaj played a vital role in education system in India.[2]

Swami Dayanand established Arya Samaj in 1875 in Mumbai and 1877 in Lahore. He reached Lahore on April 19, 1877. Arya Samaj provides two types education system Gurukul and D.A.V.[3] The D.A.V. founded in 1886 in Lahore by the efforts of Mahatma Hansraj in the memory of Swami Dayanand,These schools are run by Dayanand Anglo vedic college trust and management society. Through this school the Lahore Arya Samaj wanted to impart English education as well as to carry on educational ideas of Swami Dayanand.But he wanted to open vedic School also.He founded four schools in early 1870. Kashganj 1868 farrukhabad 1869, Mirzapur 1869 and chalesar 1870[4].

But these School were not success this was due to mismanagement. He started these school before he founded the Arya Samaj. The D.A.V. School was established on 1st June 1886 at Lahore. The Punjabi society give great response and with in one month the strength of students rose to 550 after that intermediate classes started and in 1894 the B.A. classes came in existence.[5] The D.A.V. College Management Committee decided the aims and objectives for their Institutions first to established in the Punjab and Anglo Vedic college a institution which shall include a school,a college and boarding house to provide Vedic education with Hindi and Sanskrit language. Second, to provide means for giving technical education in connection with Anglo Vedic college.[6]

Kenneth W. Jones made conclusions these objectives very nicely English language for adjustment, Hindi for communication with the masses, Sanskrit and works of Dayanand for more uplift and Science from material progress-Aryas

offend answer to the most acute dilemmas of occupational mobility and cultural adjustment. Lala Lajpat Rai writers probably no other province in India has development private enterprise in education to the same extent and with the same success, as the D.A.V. movement had achieved in Punjab and that too without any government help.[7]

The main subject taught were, Sanskrit, Hindi, English, Persian, Philosophy, History, Politicals, Econoy, Logic, elementary Biology, Physics, Chemistry, Botany and mathematics and other principle, which was also an law imposed on the managers. The moral obligation not to seek monetary assistance from the movement except the university grants receives by the college at this time. The main principle was to aim at gives free education.[8]

To meet the financial crunch a committee consistings Lala Las Chand Pandit Guru Dati Vidyarthi, Madan Singh and Jiwan Das was formed in 1885 to collect the funosQ. The committee has the support of the Arya Samaj of the whole province. By The end of the year 1885, The committees was able to manage rupees 32000, to begin the new venture.[9] After the society has been registered funosQ collected headmaster selects and planes laidout, it was followed by the opening of the Dayanand-Anglo Vedic High School on June 1, 1886, under the able Headmastership of Lala Hansraj.[10]

Lala Lajpat Rai writers, "June 1 is a red Latter day in the history of Modern Punjab. As on this day, the First independent educational institutions, Dayanand anglo-Vedic High school, Lahor opened its portals to the students. It was the first educational institution in the country with an entirely Indian Management.[11]

It was a movement to integrate the knowledge of English and Sciences and humanities, with the knowledge of the Vedic faith, The pupils were not to lose their own morning or become pale imitators of the west mortyrs like Bhagat Singh were the product of the D.A.V. School Lahore.[12] To make the D.A.V. movement a success, the publication of Arya Patria an English weekly manazine, was Started on June 20, 1885 by Arya Samaj. It also carried an appeal for public donation for the D.A.V. Movement the manazine helped to clear the public doubt regarding the aims and mission of the Arya Samaj. Arya Patrika became the main Sourse of information about the working of the Samaj and D.A.V. movement.[13]

There were three stages of school education. The primary department from first year class to second year class, middle department from third year class to seventh year class, upper department from Eight class to tenth class. The collection for the hostel fund was Raised by Kakshi Ram Rattan. Group tournaments were help as various cubs were competed fore excellent arrangement for boys-scoutings also existed. The school was well equipped wish a library. The students of the institute conducted debate on different to the in Hindi and English and their articles were dully published in quarterly magazine.[14]

The first D.A.V. School was established on 1st June 1986 at Lahore. The students strength in the college in 1908 was 1081. It increased in 1909 to 1242 in

1911 to 1507 and in 1913 to 1787 and 1934 to 3557. The school had received a good response at the way start. The number of D.A.V. schools in Punjab continued to increase. By 1923, it had swelled to 13. These were operating at Multan, Delhi, Hafizabad, Kotgarh Layalpur, Amritsar, Hisar and Shujabad. By 1931 the number of D.A.V. Schools had went up to 27.[15]

By the resolution no. III dated 28th April 1888. The D.A.V. college managing committee had resolved to add the college department upto the intermediate standard. On the first of April, 1889. These were 13 students. The affiliation to the Punjab University was applied for in the same year and it was granted by resolution at the syndicate, dated 18th May 1889. Lala Hansraj become the first principal of the D.A.V. college and strength went to 31 at the end of year on 31 March, 1890.[16]

The D.A.V. college report for the session of 1895 shows, The D.A.V. college has sent up 35 students for the B.A. examination and out of these 23 were successful against 10 out of 26 in 1894. The D.A.V. college managing committee decided to start M.A. classes in 1895 and first of all M.A. classes were started in Sanskrit. In 1896-97, the classes for teaching carpentry were also started. At that time only Mayo college of Arts, Lahore was provided engineering classes but in 1903 organigers of this college decided to merge their engineering classes with the department of engineering at D.A.V. college Lahore.[17]

The Ayurvedic department was started in 1901 by D.A.V. college managing committee to promote the traditional medical science. D.A.V. college Lahore not only started Ayurvedic study but also made Rs. 20 per month support for Ayurvedic classes of government college Lahore.[18]

To return the basic agenda of Arya Samaj the D.A.V. college managing committee established a separate theological department to promote the research in Vedas. In 1914 those were 37 students in vedic studies classes. Selections from the vedic and work of Swami Dayanad were made and prepared contents for Dharmashiksha. Pandit Raju Ram was appointed to prepare the textbook for Dharmashiksha.[19]

Table increasing strength of students every year at D.A.V. college.

Year	**No. of students**
1900	355
1904	343
1930	1129
1943	1360
1944	1400
1945	1420

With the increase of strength the total assets of D.A.V. college management trust and society was also raised.[20] We are giving list of D.A.V. schools and colleges and other affiliated institutions of the Punjab province.

D.A.V. Institution of the Punjab Province

Sr.No.	Year of Establishment	Name of Institutions	District
1.	1806	D.A.V. School, Lahore	Lahore
2.	1888	A.S. Arya School Noonmiyani	Shahpur
3.	1889	D.A.V. college Lahore	Lahore
4.	1892	A.V.A.S. High School, Abtabad	Gujranwala
5.	1896	D.A.V. school	Multan
6.	1899	D.A.V. school	Kangra
7.	1918	D.A.V. high school	Hisar
8.	1920	D.A.V. school, Trantaran	Amritsar
9.	1927	Hans Raj Mahila Mahavidhyalaya	Lahore
10.	1944	D.A.V. college, Shakti Nagar	Jalanderpur

Curriculum of D.A.V. School and college : First of all, according to the demand at Arya Samajists, Curriculam of D.A.V. institution might be matched with Arya ideology of Arya Samaj. Second, syllabus should complete with government schools and college with a nationalist as well as traditional approach. Third, syllabus would be followed and fulfil the material demands at Arya community particularly to attract the emerging middle class were at north India, because trading community and newly emerging middle class were the important sources of fund collection programme.

The D.A.V. institution established outside the Punjab. In 1892, a legal body D.A.V. college trust and society of the united province, established at Meerut. The motives of this society were same as the D.A.V. college trust and society, Lahore. The first institution was established, D.A.V. Vidayalaya in 1893 at Meerut but this was transferred to Dehradun in 1904, where later this institution became D.A.V. college in 1922.[21]

Effect of D.A.V. institution in Punjab : In fact D.A.V. movement was a multi dimensions awakening that reflect the ambitions at emerging middle class of the colonial Punjab society. This emergence at new Punjab middle class was result at interaction between British colonial administrative structure, European civilization and existent traditional aristocracy declined and a new colonial administrative setup was established. The Punjabi traders community, which was marginalized upto this time, became conscious towards their, social upliftment, dignity and identity. In 1870 the new English educated generation of the Punjab developed. The ideological background and sufficient manpower for a social reform movement for change. Kenneth W. James comments on attraction of the Punjabi middle class towards newly established Arya Samaj.

Young Punjabi Hindu, after abandoning Brahmo ideals, seized the personal vision of Swami Dayanand adopting it to their own particular needs, and transforming it into an idealogy, a complex set of concepts that delineated the past, present and future.[22]

The arya samajists attacked the social evils and for abolishment of bad social

rituals they adopted the message at Swami Dayanand, back to veda, in other side they recognized the importance of English education but emphasized English education with in framework of revived Hinduism.

Conclusion : The arya samaj played an effective role in every aspect of human life. Dayanad's ideology was eastern and the tools employed for the development of it were western at imparts western scientific knowledge along with the teaching of the Vedas. The basic aim of the founders of the D.A.V. movement was to defuse ignorance and spread knowledge. The spread of D.A.V. institutions to twenty one states of India, justifies the aim. D.A.V. institutions provide every possible help to the poor and needy. The organization has been targeting the *Jhuggi* clusters as a part of its empowerment and rehabilitation programme.

Anathalayas at Ferozepur and Sholarpur are helping the orphans with free education *ManavVikasKendra at Delhi*, is providing free education to about twenty seven hundred mentally retarded and handicapped children. *Mahila Ashram* at Faridabad is a home for impoverished women. Today, the D.A.V. movement has a progressive vision, their focus is on consolidation of the existing institutions aiming at enhancing the standard of education.

It seems that Arya Samaj played role in all field like education, social, economic, cultural and moral value. D.A.V. institutions prepared millions of people of india to fight for freedom movement. The most example is Bhagat singh. These institution changed millions people life with education.

References

1. https://en.m.wikipedia.org.
2. R.S. Pareek, Contribution of Arya Samaj in the making of modern India 1857-1947, Delhi 1973, P. 182-83.
3. The tribune, June 5, 1886, P. 7.
4. Lala Laj pat Rai, A history of the Arya Samaj, Bombay 1967, P. 30.
5. Proceeding of D.A.V. college management committee 1894-1895, P. 36.
6. Proceeding of D.A.V. college trust and management society, 20 March 1886.
7. J.T.F. Jordens, Dayanand Sarasvati his life and ideas, Delhi 1978, P. 65.
8. Lala Lajpat Rai, A history of the Arya Samaj, Delhi 2010, P. 214-15.
9. Ram Sharma, Lala Lajpat Rai : A history of the Arya Samaj oriented Langmans, Calcutta 1967, P. 140-41.
10. Haridatta Vedalankar, Arya Samaj ka itihas vol II, Arya Swadhyaya Kendra, New Delhi 1989, P. 301.
11. Sharma Ram, Lala Lajpat Rai : A history of the Arya Samaj, Delhi 2010, P. 152-155.
12. K.S. Arya and P.D. Shastri, Swami Dayanand Saraswati, Delhi 2010, P. 180.
13. The Arya Patrika, Lahore : an English weekly, Oct. 10, 1885, P. 3.
14. Sharma, The D.A.V. movement : document on Punjab, P. 147.
15. Arya Patrika of May 4, 1886, P. 5.
16. Proceeding of D.A.V. college managing committee, 1890, P. 17.
17. D.A.V. Report, 1896-97.
18. lbid.
19. lbid.
20. Proceeding of D.A.V. college managing
21. Arya directory, P. 120-123, and S. Vidhalankar, Arya Samaj ka itihas, P. 308-328.
22. Kenneth W. Jones, Arya Dharm University of California press 1976, P. 314.

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मजदूरवर्ग (1900-47)

राकेश कुमार
शोद्यार्थी इतिहास विभाग, रोहतक

भूमिका

समाज में प्रत्येक वर्ग का अपना एक योगदान होता है, लेकिन समाज के सभी वर्गों के लिए मजदूरवर्ग कुछ न कुछ करता है। एक खेत से लेकर प्रत्येक उद्योग तक मजदूरवर्ग का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इसका इतिहास तो बहुत पुराना है। जो हड़प्पा, रोम तथा यूनान की सभ्यता में देखा गया है। लेकिन आधुनिक मजदूरवर्ग का उदय 18वीं सदी की कृषि तथा औद्योगिक क्रांति के बाद हुआ है। यूरोप में श्रम आंदोलन की शुरुआत औद्योगिक क्रांति के दौरान हुई थी। जब कृषिक्षेत्र में रोजगार कम हो गए और औद्योगिक क्षेत्रों में अधिक से अधिक नियुक्तियाँ होने लगीं। इसी विचार को भारी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। 18वीं सदी और 19वीं सदी की शुरुआत में टोलपडल मटीयर्स ऑफ योर, डोर सेट जैसे समूहों को दंडित किया। लेकिन मजदूर आंदोलन तथा इनके संगठन बनाने के लिए फ्रेडरिक एजेल्स और कॉर्ल मार्क्स की रचनाएँ पहले कम्यूनिस्ट इंटरनैशनल के गठन का कारण बनीं। इसने घोषणा की कि मजदूर अपने संगठन बना सकते हैं। 8 घंटों के कार्यदिवस का अधिकारी व अन्य कई प्रकार की घोषणाएँ थीं, जिन्होंने पूरे विश्व के मजदूरों को जागरूक किया।

भारत में भी विश्व की घटनाओं का असर पड़ा। भारत में नए सामाजिक वर्गों का उदय अँग्रेजों के शासनकाल में नए सामाजिक अर्थतंत्र, नई राज्य व्यवस्था, नए प्रजातंत्र और नई शिक्षा का सीधा परिणाम था, अतीत के भारतीय समाज में नए वर्ग नहीं थे। ये तो नई पूँजीवादी व्यवस्था की देन है। जो अँग्रेजों की भारत विजय और विदेशी अर्थतंत्र के भारत पर पड़े प्रभाव के कारण इस देश में आई। भारतीय समाज में मूलभूत पूँजीवादी आर्थिक रूपांतरण के फलस्वरूप यहाँ की जनता नए सामाजिक दलों और नए वर्गों में नए सिरे से संगठित हुई। बंगाल और बंबई में ही सर्वप्रथम जूट और सूती कपड़े के कारखानों जैसे उद्योगों की स्थापना हुई और सर्वहारा और उद्योगपति जैसे वर्गों का उदय हुआ।

भारत में मजदूरों का वर्ग अँग्रेजों की गलत कृषि-व्यवस्था महालवाड़ी, जमीदारी प्रथा व स्थाई बंदोबस्त के कारण किसानों को मजदूर बया गया। दूसरा भारत में अँग्रेजों की औद्योगिक नीति के कारण छोटे-छोटे लघु उद्योग व ग्रामीण कारखाने बंद हो गए, जिसके कारण बहुत सारे लोग बेरोजगार हो गए तथा वो लोग अँग्रेजों के उद्योगों में काम करने लगे, लेकिन भारतीय मजदूर वर्ग के साथ सही से व्यवहार नहीं किया जाता था। एक तरफ उनको जहाँ बहुत कम मजदूरी दी जाती थी, वहीं दूसरी तरफ उनको 15-16 घंटे काम करवाया जाता था। मजदूरों को पेट भर भी खाना नहीं मिलता था। इसके कारण इनके अंदर राष्ट्रीय भावना की जागृति हुई तथा उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया।

19वीं सदी के अंतिम दौर में जब भारत के राष्ट्रवादी बुद्धिजीवीवर्ग ने मजदूरवर्ग के

 ISSN 0975-735X

आंदोलनों से अपना रिश्ता कम करना शुरू किया। 1878 ई. में सोराबाजी शपूरजी बंगाली ने बंबई की विधान परिषद् में मजदूरों के काम में घंटे सीमित करने के लिए एक विधेयक रखने की कोशिश की। लेकिन इस काम को सफलता नहीं मिली। 1870 ई॰ में बंगाल में एक ब्रह्मसमाजी शशिपद बनर्जी नाम के समाजसेवी ने मजदूरों का एक क्लब स्थापित किया। 1890 ई. में नारायण मेधाजी लोखांडे ने बंबई मिल हैंड्स एसोसिएशन शुरू किया। इसने मजदूरों की समस्या का समाधान किया। मराठा अखबार जिसे जी॰एस॰ आगरकर ने संपादित किया, इसमें मजदूरों के मुद्दों पर चर्चा की। तिलक ने मराठा तथा केसरी समाचार पत्रों में मजदूरों का समर्थन किया। 1899 ई. में रेलवे मजदूरों के समर्थन में बंबई तथा बंगाल में फिरोजशाह मेहता, डी॰ई॰ वाचा और सुरेंद्रनाथ टैगोर जैसे विख्यात राष्ट्रवादियों ने आवाज उठाई। विपिनचंद्र पाल और सुब्रहमण्य अय्यर ने कमजोर वर्गों और मजदूरवर्गों के हितों की शक्तिशाली पूएक जीपतियों से रक्षा के लिए कानून बनाने की जरूरत की बात की।

जिस दिन बंगाल का विभागजन किया गया, 16 अक्तूबर 1905 को सारे देश में आंदोलन की लहर उठ खड़ी हुई। इसमें बंगाल में मजदूरवर्ग ने समर्थन में हड़ताल कर दी। मजदूरों ने वंदे मातरम् गाया तथा एक-दूसरे की कलाई पर राखी बाँधी। तमिलनाडू के तूतिकोरिन स्थान पर फरवरी-मार्च 1908 में विदेशी स्वामित्व वाली एक खुली मिल में सुब्रहमण्य शिव के पक्ष में हड़ताल कर दी। पंजाब में रावलपिंडी में हथियार गोदाम तथा रेलों के इंजीरियरिंग विभाग के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। 22 जुलाई, 1908 को बाल गंगाधर तिलक को आठ वर्ष की सजा होने के बाद बंबई के कपड़ा मजदूर लगभग एक सप्ताह तक हड़ताल पर रहे। वी॰पी॰ वाडिया द्वारा गठित मडारू मजदूर संघ (1918) भारत का पहला आधुनिक मजदूर संगठन था। 1920 में एम॰एन॰ जोशी, जोसेफ बेपटिसट तथा लाला लाजपत राय के प्रयासों से अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेंस (एटक) की स्थापना हुई। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस के प्रथम अध्यक्ष लाला लाजपत राय हुए। 1920 में यह सम्मेलन बंबई में हुआ।

भारत में लाला लाजपतराय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पूँजीवाद को साम्राज्यवाद से जोड़कर देखा था और इस गठजोड़ से लड़ने के लिए मजदूरवर्ग की भूमिका पर जोर दिया था। नवंबर 1921 में प्रिंस ऑफ बेल्स के भारत के दौरे के समय काँग्रेस ने सारे देश में बहिष्कार का आह्वान किया और संपूर्ण देश में हड़ताल करके मजदूरों ने इसका उत्तर दिया। काँग्रेस के गया अधिवेशन (1922) में मजदूरवर्ग के संगठन एटक का सहयोग किया।

महात्मा गांधी ने पहली बार मजदूरों के लिए आंदोलन किया, जो अहमदाबाद में किया तथा उनकी समस्याओं को हल करवाया और अहमदाबाद टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन की स्थापना की। इसी संगठन द्वारा गांधी जी ने मजदूरों के लिए मध्यस्थता करने तथा अपने प्रसिद्ध ट्रस्टी शिप दर्शन का उल्लेख किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय काँग्रेस ने मजदूर और किसान काँग्रेस के हाथ-पाँव हैं, का नारा दिया। 1937-39 में प्रांतों में बनी काँग्रेस सरकारों के सहयोग से फिर मजदूर आंदोलन ने जोर पकड़ा। 3 सितंबर 1939 को द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के विरोध में विश्व के सारे मजदूरों ने हड़ताल की। एम.एन.राय (साम्यवादी नेता) ने इंडियन फैडरेशन ऑफ लेबर की स्थापना की।

भारत छोड़ो आंदोलन के समय गांधी को गिरफ्तार करने के विरोध में कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, बंबई, नागपुर अहमदाबाद में मजदूरों ने हड़ताल की। राष्ट्रवादियों ने सरदार बल्लभभाई

पटेल के नेतृत्व में मई 1947 में एटक से अलग होकर 'भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन' काँग्रेस की स्थापना की।

सरकार के द्वारा कुछ कानून मजदूरों के लिए बनाए गए। 1926 में व्यापार संघ अधिनियम द्वारा हड़ताल करने का अधिकार दे दिया गया। 1929 में श्रमिक विवाद अधिनियम में मजदूरों के लिए कई प्रतिबंध लगाए, जिनके कारण उनमें राष्ट्रवाद की भावना का उदय हुआ। 1929–33 के बीच हुए मेरठ षड्यंत्र मामले में श्रमिक नेताओं पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। ये नेता 1928 में पब्लिक सेफ्टी बिल का विरोध कर रहे थे। इनमें तीन ब्रिटिश नागरिक फिलिप स्प्रेट, बैन बैड्ले, लेस्टर हचिन्सन भी शामिल थे। इन सभी नेताओं को बचाने के लिए नेता जवाहरलाल, एम॰ए॰ अंसारी, कैलाशनाथ काटजू, एम॰सी॰ छागला आदि ने पैरवी की। समाजवाद आंदोलन के नेता जयप्रकाश नारायण ने भी मजदूर आंदोलन में सहयोग किया।

ब्रिटिश सरकार के द्वारा अधिनियम पास किए। जैसे 1991 का कारखाना अधिनियम में 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों के कार्य पर प्रतिबंध किया। 1911 का कारखाना अधिनियम में पुरुष कार्यावधि 12 घंटे निश्चित की। 1944 के अधिनियम में नियमित कारखानों में श्रमिकों की कार्यावधि 9 घंटे तथा कैंटीन की व्यवस्था की। 1937 में 6 प्रांतों में काँग्रेस सरकारें बनने के उपरांत श्रमिक संघों के आंदोलन को बहुत बढ़ावा मिला। 1938 तक इन संघों की संख्या 296 तक पहुँच गई। इस काल में सबसे सफलतापूर्व हड़ताल कानपुर के श्रमिकों की थी, जिन्होंने 55 दिन तक हड़ताल की। इसमें 40 हजार श्रमिक सम्मिलित थे। इसके कारण बंबई औद्योगिक विवाद अधिनियम 1938 और बंबई दुकान सहायक अधिनियम 1939 व बंगाल प्रसूति अधिनियम 1939 पारित किए गए।

1945 में आई.एन.ए. के बंदियों के समर्थन में कई जगहों पर मजदूरों ने बड़ी तादाद में हड़ताल और प्रदर्शनों का आयोजन किया। 1946 में बांबे में मजदूर नौसैनिक विद्रोह के समर्थन में हिंसा पर उतारू हो गए।

औपनिवेशिक काल में संगठित मजदूरवर्ग भारत की आबादी का बहुत छोटा हिस्सा था। शुरुआती दौर में राष्ट्रवादियों को मजदूरों के सवालों में बहुत दिलचस्पी नहीं थी। चूंकि वे विकास के देखी पूँजीवादी रास्ते के पक्षपाती थे। लेकिन 20वीं सदी में राष्ट्रवादियों के गरम दल ने मजदूरों का राजनीतिक महत्त्व समझा और राष्ट्रवाद के लक्ष्य के लिए उन्हें गोलबंद करना चाहा। गांधी द्वारा शुरू किए गए जनराष्ट्रवाद के दौर में राष्ट्रवादी गतिविधियों के मजदूरों की भागीदारी बढ़ गई। काँग्रेस मजदूरों को अपने साथ नहीं कर सकी। क्योंकि उसको पूँजीपतियों के नाराज होने का डर था। लेकिन इसके बावजूद कई काँग्रेसी व्यक्तिगत रूप में मजदूर आंदोलनों में सम्मिलित हुए। भारतीय जनता का हर तबका स्वतंत्रता के विषय में यह सोचता था कि हमारे सारे कष्ट मिट जायेंगे। मजदूर भी इसके अपवाद नहीं थे। वे भी सोचते थे कि आजादी के बाद उनको भी सारे अधिकार मिल जायेंगे।

अंत में हम कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों में मजदूरवर्ग ने न केवल साथ दिया, बल्कि इनके लिए दूसरे लोगों को भी जागरूक किया। इस समय मजदूरों की संख्या सबसे ज्यादा थी, जिसके कारण गांधी तथा अन्य पार्टियों ने इनको साथ लेकर आंदोलनों को गति से चलाया। जिसके कारण मजदूरों को भी अपने अधिकार मिले। कुछ इतिहासकार जैस रामचंद्र गुहा तो मानते है कि भारत को आजादी में योगदान दिया। बल्कि भारत निर्माण में भी योगदान दिया।

 ISSN 0975-735X

क्योंकि जो भवन, रेलवे, सड़क, उद्योग व अन्य प्रकार की ईमारतें थीं, ये सारी इन मजदूरों के हाथों से बनी हैं।

संदर्भ

1. बी.एल. ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली 2008
2. विपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली 2011
3. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, बम्बई 2012
4. नागेन्द्र प्रताप, भारतीय इतिहास, इलाहाबाद 2015
5. बराण्डले बी. एफ. ट्रेड यूनिनीजम इन इण्डिया।
6. डांगे एस.ए. आन दी इण्डियन ट्रेड यूनियन मूमेंट।
7. लेखनपाल पी॰एल॰, हिस्ट्री ऑफ काग्रेंस सोरिलीट पार्टी।

vpo Saimpal
Tehisl Kalanaur
Distt- Rohtka 124113

डॉ॰ भीमराव अंबेडकर का स्त्री-चिंतन

सरोज जानू
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ॰ भीमराव अंबेडकर का स्त्री-चिंतन भारतीय समाज के लिए आमूलचूल परिवर्तनकारी व्यवस्था के रूप में परिणत हुआ। भारतीय समाज की महिलाओं को गौरवमयी गरिमा एवं उनकी मान-मर्यादा पुनः स्थापित करने में डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जी की वैज्ञानिक दूरदर्शिता का महान योगदान रहा है। डॉ॰ अंबेडकर से पूर्व राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, पेरियार ई.वी. रामास्वामी, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, दुर्गाबाई देशमुख एवं महात्मा गांधी जैसे महान विचारकों का भी बड़ा योगदान रहा।

परंतु अंबेडकर जी का स्त्री-चिंतन वैज्ञानिक सोच से ओतप्रोत व्यावहारिक धरातल पर लागू करने हेतु कानूनी बाध्यता को प्रमुखता प्रदान करता है। उन्हीं के प्रयासों से संविधान में पहली बार महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान हुआ। इसी दृढ़तापूर्ण पहल के परिणामस्वरूप स्त्रियाँ सशक्तिकरण का मार्ग चुनती हुई बलवती होती गईं। अंबेडकर जी का जन्म अछूत जाति महार में होने के कारण उन्होंने बचपन से ही भेदभाव को भोगा था। इस कारण उन्होंने स्वाभाविक रूप से सामाजिक बदलाव लाने हेतु संघर्ष का रास्ता चुना। कमजोर वर्ग के लोग, विशेषतः स्त्रियों के उत्थान का भाव उनके हृदय में सहज ही था। अतः अंबेडकर जी स्त्रियों के कल्याण के लिए लगातार प्रयत्नशील हो गए। इस संदर्भ में डॉ॰ बी विजय भारती कहती हैं कि 'यद्यपि अंबेडकर ने नारी-उत्थान के लिए कोई नारा नहीं दिया तथापि सही अर्थ में उनकी आकांक्षा महिला प्रगति और विकास के लिए ही थी।'[1]

सर्वविदित है कि संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकार जाति, प्रजाति, धर्म, लिंग के आधार पर बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को समान प्राप्त है, जिसमें डॉक्टर अंबेडकर जी का अतुलनीय योगदान था। इन अधिकारों ने महिलाओं का सामाजिक दर्जा ऊँचा उठाने में अहम भूमिका निभाई। डॉक्टर अंबेडकर काँग्रेस के मंत्रिमंडल में रहते हुए 5 फरवरी 1951 ईस्वी को संसद में 'हिंदू कोड बिल' प्रस्तुत करके नारी सशक्तिकरण की दिशा में वैज्ञानिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। डॉक्टर अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल के समर्थन में 'बृहस्पति स्मृति' का उदाहरण दिया, जिसमें महिलाओं को संपत्ति के अधिकार की स्वीकृति प्रदान की गई है। दुर्भाग्य से 'हिंदू कोड बिल' उस समय पारित नहीं हो सका। लेकिन आज यह बिल अलग-अलग स्वरूप में बड़ी मजबूती से कानूनी रूप बनता जा रहा है। इसका आधार डॉ॰ अंबेडकर जी का अथक प्रयास एवं संघर्ष रहा है। इतना ही नहीं, अंबेडकर जी ने महिलाओं को पुरुषों के बराबर भागीदारी का उपबंध संविधान के अनेक प्रावधानों में किया। जैसे विधि के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14),

 ISSN 0975-735X

धर्म, जाति, रंग, रूप, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर जीवन-यापन (अनुच्छेद 15), अवसर की समानता (अनुच्छेद16), समान पारिश्रमिक(अनुच्छेद 39), राज्य द्वारा समान नागरिक संहिता (अनुच्छेद 44) इत्यादि का विशेष रूप से उल्लेख करके स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों को अपनी वर्तमान दशा में बदलाव लाने हेतु प्रेरित करने का कार्य किया।

डॉ॰ अंबेडकर जी का मूल मंत्र था 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो'। इसी मंत्र को साकार रूप देने हेतु अंबेडकर ने महिलाओं की शिक्षा के प्रति जागरूकता लाने का संकल्प लिया। क्योंकि वे जानते थे कि स्त्रियों की शिक्षा किसी भी समाज को दरिद्रता से उबारने में रामबाण का कार्य करेगी। उस समय सवर्ण महिलाओं को भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। अंबेडकर जी द्वारा खोले गए स्कूल-कॉलेजों में छात्र-छात्राओं दोनों को समान अवसर व छात्रवृत्ति प्रदान की जाती थी। दलित स्त्रियों के उत्थान पर विशेष ध्यान दिया गया। 'मूकनायक' पत्रिका (1920) और 'अखिल भारतीय बहिष्कृत' संगठन के माध्यम से कार्य-योजना को गति प्रदान की जाती थी।

स्त्रीमुक्ति चिंतन की शृंखला में डॉ॰ अंबेडकर भारतीय स्त्री के आधुनिक एवं वैज्ञानिक तर्क की कसौटी पर उतरने वाले पक्षकार के रूप में सामने आए। अंबेडकर जी फ्रांसीसी क्रांति से अभिप्रेरित थे। समता, स्वतंत्रता और बंधुता को आत्मसात कर दलितों और स्त्रियों की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया और सुधार हेतु मौलिक निष्कर्षों का विकास किया। ठीक वैसे ही जैसे, तीर को पीछे की ओर खींचकर आगे निशाना लगाते हैं। बाबासाहेब ने भी धर्म, दर्शन, वेद, स्मृतियों, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि में से स्त्रीदशा की भारी पड़ताल की और ठोस तथ्य और तर्क निकाले। स्त्रियों की दुर्दशा के कारण खोजे और मुक्ति के मार्ग बताए। अंबेडकर जी कहते हैं कि पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि स्त्रियाँ गुरुकुल जाती थीं। पतजंलि के 'महाभाष्य' के अनुसार स्त्रियाँ अध्यापिकाएँ भी थीं। उन्होंने धर्म-दर्शन, मैटेफिजिक्स जैसे गूढ़ विषयों पर सार्वजनिक शास्त्रार्थ भी किए थे।[2]

डॉ॰ अंबेडकर ने 'मनुस्मृति' को स्त्री-स्वतंत्रता व समानता का घोर विरोधी ग्रंथ माना और उसकी प्रतिलिपि को विरोधस्वरूप जलाया भी। क्योंकि 'मनुस्मृति' द्वारा समस्त दोष नारी के सिर पर मढ़ दिए गए और पुरुष को पूर्ण रूप से दोषमुक्त रखने की चेष्टा की गई जो घोर पक्षपात था। अंबेडकर जी के अनुसार भगवान बुद्ध के प्रादुर्भाव होने से पहले भारतवर्ष में स्त्री की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। स्त्री को केवल भोग-विलास का पात्र समझा जाता था। कुंती, द्रौपदी, तारा, अहिल्या, मंदोदरी आदि स्त्रियों को इसका उदाहरण बताते हैं। आर्यों के समय बहुपति प्रथा प्रचलित थी। ऐसी अनैतिक सामाजिक व्यवस्था को जानकर बाबासाहेब विचलित हो गए और स्त्रियों की पीड़ा की थाह लेकर उनके लिए सम्मानजनक जीवन जीने की व्यवस्था करवाने की ठानी। उन्होंने स्वतंत्र भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष समानता के कानूनों का प्रावधान संविधान में कराया।[3]

प्राचीन भारतीय समाज में सर्वप्रथम बौद्धधर्म ने अंधविश्वासों को तोड़कर समाज में पुनर्जागरण लाने का प्रयास किया। सामाजिक भेदभाव व धार्मिक अंधविश्वासों का सर्वप्रथम प्रतिकार महात्मा बुद्ध ने किया। बौद्धधर्म व्यापक और प्रभावी धार्मिक-सामाजिक आंदोलन था। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जी ने बौद्धधर्म से प्रभावित होकर अपने जीवन का उद्देश्य समाज में चहुँमुखी जागरूकता लाने का बना लिया। बुद्ध की शिक्षाओं से प्रेरित होकर बाबा साहेब ने

भारतीय समाज को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। बाबासाहेब हिंदूधर्म को सामाजिक समानता वाला धर्म बनाना चाहते थे। आधुनिक रूप से अंतरधर्मीय व अंतरजातीय विवाह और सहभोज के माध्यम से छुआछूत, जातिभेद, समाप्त करना चाहते थे। बालक बालिकाओं के साथ-साथ पढ़ने लिखने को परस्पर समझ, सहयोग, सहानुभूति और उदार प्रेमभावना का आधार मानते थे।[4]

डॉ॰ अंबेडकर का विचार था कि संपूर्ण जनसंख्या की आधी हिस्सेदारी नारीवर्ग की है। सिंधु घाटी सभ्यता में नारी का महत्त्व संपूर्ण रूप से पाया जाता था। लेकिन वैदिककाल के उत्तरार्ध में नारी के संपूर्ण स्वतंत्र अधिकार को छीन लिया जाता है जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था का एक षड्यंत्र द्वारा कन्यादान के रूप में देखने को मिलता है। नारी को एक वस्तु के समान दर्शाया गया जो कतई उचित नहीं था। डॉ॰ अंबेडकर जी ने स्त्री-पुरुषों के बीच के भेदभाव की खाई को अपने ढंग से पाटने का कार्य किया। उन्होंने अपने आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की, ताकि स्वयं स्त्रियाँ अपने मुद्दों को सार्वजनिक कर सकें।

बिल एंड मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन की कोचेयर पर्सनमेलिंडा गेट्स कहती हैं कि घर सँभालने के लिए महिलाएँ जो अवैतनिक काम करती हैं, यही स्थिति कार्यस्थल पर समान अवसर की राह में सबसे बड़ी बाधा में से एक होती है, क्योंकि हर समाज कमजोर को और कमजोर करने में हिचकता नहीं है। मिलिंडा गेट्स यह भी कहती हैं कि देखभाल की स्वाभाविक जिम्मेदारी घर की महिलाओं पर आती है इसमें कोई रहस्य नहीं है। महिलाओं को हमेशा ही अधिकांश भार वहन करना पड़ता है। वह चिंता व्यक्त करती हैं कि कोविड-19 महामारी के कारण महिलाओं के और पीछे छूट जाने का जोखिम स्पष्ट है। अत: सरकारों को तेज गति से समावेशी विकास सुनिश्चित करना चाहिए।[5]

महिलाओं के प्रति सरकारों को पूरी निष्ठा से संवेदनशीलता रखनी होगी, तभी उन्हें पारिवारिक व सामाजिक रुकावटों को पार कर राष्ट्र विकास में भागीदारी निभा सकने का अवसर मिलेगा। डॉ॰ शीला वीर (निदेशक, पब्लिक हेल्थ न्यूट्रिशन एंड डेवलपमेंट सेंटर, नई दिल्ली) अपने आलेख में लड़कियों की शादी की कानूनी उम्र पर पुनर्विचार के संदर्भ में कहती हैं कि शादी की ही नहीं पढ़ाई की भी उम्र तय होनी आवश्यक है। बच्चियों को लंबी उम्र तक स्कूली शिक्षा के साथ जोड़े रखने का प्रयास करना होगा। स्कूली शिक्षा की उम्र तय होने से शादी एवं माँ बनने की उम्र बढ़ेगी। यही डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जी का सपना था, जिसे साकार करने का निर्णय वर्तमान सरकारों को दृढ़ता के साथ करना चाहिए।[6]

इस प्रकार स्त्री-चिंतन एक अहम मुद्दा व विचार होना चाहिए। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर जी समाज के संरचनात्मक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष दोनों की कानूनी समानता सुनिश्चित करने की सदैव वकालत करते रहे। समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक उन्नयन हेतु यह अति आवश्यक भी है कि समाज के प्रत्येक मानस के व्यक्तित्व का विकास सुनिश्चित हो सके। डॉ॰ अंबेडकर द्वारा महिलाओं की जागरूकता हेतु किए गए अथक प्रयासों का भारतीय समाज सदैव आभारी रहेगा।

निष्कर्ष

डॉ॰ अंबेडकर ने 'हिंदू कोड बिल' का प्रस्ताव लाकर नि:संदेह भारतीय समाज की महिलाओं को सदियों पुरानी बेतुकी बंदिशों से आगे बढ़कर सोचने-समझने का संकल्प उपलब्ध करवाया। लड़कियों को शिक्षा देने से ही उनमें स्वाभिमान की ज्योति प्रज्वलित होती है। अंबेडकर

पुरुषों की उन्नति की गाड़ी का दूसरा पहिया स्त्री-समाज को बताते हैं। स्त्री को बराबरी की व्यवस्था में रखकर ही कोई समाज खुशहाल बन सकता है। समतामूलक विचार ही डॉ॰ अंबेडकर जी के विचारों की वास्तविक धरोहर है। 1913 में अंबेडकर जी न्यूयॉर्क (अमेरिका) से शिव नायक गावकर जमींदार को 'स्त्री शिक्षा' के बारे में पत्र लिखते हैं, जिसमें 'स्त्री शिक्षा' पर विशेष बल देते हैं और लिखते हैं कि 'यदि पुरुष के साथ महिला शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाता है तो इसके सुफल हम अपनी पुत्रियों के जीवन में चरितार्थ होते देख सकते हैं।'[7] बाबा साहेब पूरा विश्वास जताते हैं कि शिक्षा, नौकरी एवं स्वावलबंन से ही महिलाएँ प्रगति कर सकती हैं। परिवार की संकीर्ण मानसिकता बदल सकती हैं। समाज के कार्यों में महिला अपनी भूमिका निभाने में सक्षम हो सकती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि स्त्रियाँ अपने स्वाभिमान को समझें और मेहनत एवं लगन से स्वयं को मजबूत बनायें। संकीर्णता एवं अंधश्रद्धा से दूर रहकर वे स्वयं को समाज की मुख्यधारा में ला सकती हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ श्रीमती सुशीला कुमारी और डॉ॰ अंजना कुमारी, अंबेडकर एवं महिला उत्थान, अंबेडकर चिंतन, कुमार सिंह, प्रो॰ जीवितेश और डॉ॰ सुशीलाकुमारी, रीगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृ॰ 77-78
2. डॉ॰ शिवराज सिंह 'बेचैन', अंबेडकर गांधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010, पृ॰ 217
3. डॉ॰ डी॰आर॰ जाटव, डॉ॰ अंबेडकर एक प्रखर विद्रोही, एबी॰डी॰ पब्लिशर्स, जयपुर, 2004, पृ॰ 107-108
4. कन्हैयालाल चंचोरी, आधुनिक भारत का दलित आंदोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 124-125
5. गेट्स, मिलिंडा, राजस्थान पत्रिका, 13 मई 2020
6. राजस्थान पत्रिका, 13 मई 2020
7. डॉ॰ शिवराज सिंह 'बेचैन', अंबेडकर, गांधी और दलित पत्रकारिता, पृ॰ 228

Saroj Janu
wèko Yoges Choudhary
A-62, Jai Ambey Nagar,
Near Gopalpura Flyover,
Tonk Road, Jaipur-302018 (Rajsathan)
Mob. 07976017033
janu3vip.pn@gmail.com

मानव-धर्म कबीर

डॉ॰ अनीता
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्री ऑरबिंदो कॉलेज, (सांध्य)
मालवीय नगर, दिल्ली

समाज कबीर का शिक्षक भी है और प्रेरक भी। दार्शनिक विखंडताओं, सामाजिक वर्गगत जटिलताओं और रूढ़ियों तथा धर्मिक बाह्याडंबरों से त्रस्त मानव-जाति के लिए कबीर ने एक ऐसे वर्गहीन समाज के निर्माण का प्रयास किया, जिसमें जीवन की समरसता हो, नैतिकता और मानवता का वास हो। वे भेद-वासना से ऊपर उठकर सबको समत्व दृष्टि से देखते हैं। कबीर के वर्गहीन समाज में ब्राह्मण और शूद्र, हिंदू और मुसलमान में कोई जातिवाद, धर्मगत भेद नहीं है। यह भेद भावमूलक दृष्टि मानवता-विरोधी है। जन्म से कोई त्याज्य, घृणित और अपवित्र नहीं है।

सत्याचरण मानव-प्रेम की नींव है। कबीर मानव की अंतरात्मा को जगाना चाहते थे। वह मानवमूल्यों को मन में विचारों की पवित्रता, आचरण की सात्त्विकता, आंतरिक शुचिता की भावना पैदा करना चाहते थे। परोपकार की भावना मानव को ऊँचा उठाती है एवं सामाजिक चेतना को विकसित करती है। कबीर मानवीय परंपरा की मुख्य धारा थे। वह कम दीखते हुए बड़े व्यापक थे। कबीर बहाव का नाम था, ठहराव का नहीं। इंसानी जज्बे को स्थापित करने की ऊर्मि लालसा मानव-मात्र की की मुक्ति का अप्रतिम आंदोलन, शोषणमुक्त समाज निर्माण और बंधनकारी मजहबपरस्ती से उपजी दीवारों को तोड़ने का अभियान कबीर का था। 'इंसान की मुक्ति और उसे विकसित होने का, पूर्ण इंसान बनाने का, प्रेम और स्नेह का, श्रम के मूल्य का, विमल दृष्टि का मार्ग कबीर ने प्रशस्त किया था। आज तो कबीर की प्रासंगिकता कहीं ज्यादा है, लेकिन 'सत्ताएँ' डरती हैं, धर्म खौफ खाते हैं। किताबों में कबीर पर ज्यादा जोर नहीं दिया जाता। कबीर किताबों में नहीं टिकते हैं, वह तो वाक्य की गैलरी से 'शब्द' की खिड़की से कूदकर 'घर' में आ विराजता है। दिल में उतर जाता है। अनपढ़ माँ और फकीरन बुआ के कंठ में बैठ जाता है। हर मदद के लिए उठा हाथ, दूसरों के दुःखों में रोती हुई आँखों में, प्रसन्नता में प्रसन्न होते होठों में कबीर होता है। इस तरह कबीर अमीर तो हैं।'[1]

कबीर एक सर्वमान्य मानवधर्म के पोषक थे और इसकी प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने जिस अभूतपूर्व निर्भीकता और साहस का परिचय दिया वह इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। मानवधर्म अथवा विश्वधर्म की प्रतिष्ठा भौतिक साधनों में सर्वथा असंभव है। इस संबंध में किये गये बहुर्मुखी भौतिक प्रयासों की निस्सारता और व्यर्थता सर्वविदित है। इस युग में प्रमुख 'दार्शनिक' कार्ल मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत 'जो समाज को वर्ग-विशेष का दावा करता था, वर्गों की संख्या द्विगुणित करने में ही सहायक हो सका है और उसका शांति

 ISSN 0975-735X

की प्रतिष्ठा-संबंधी दावा भी असत्य होकर केवल अशांति को ही जन्म दे सका है। संत कबीरदास जी इस सत्य से पूर्व परिचित थे, इसी कारण उन्होंने बहुर्मुखी रेखाओं को उपकरण बनाकर केंद्रों को ही साक्ष्य बनाया था। आज का युग जो सभी भौतिक विरोधों को शांत करने के लिए 'भावात्मक एकता' का नारा दे रहा है, कबीर को इसका परिचय बहुत पहले से था। वे भावों से अधिक आत्मैक्य के आधार पर समाज और सामान्य 'मानवधर्म' की प्रतिष्ठा के लिए प्रकर्ष दे रहे थे।'[2]

'सर्वधर्म-समन्वय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है, वह वस्तु कबीर के पदों में सर्वत्र पाई जाती है, वह बात है भगवान के प्रति अहैतुक प्रेम और मनुष्यमात्र को उसके निर्विशिष्ट रूप में समान समझना।'[3]

आज प्रजातंत्र में सच्चे इंसान का उसी प्रकार अभाव है जैसा कबीरयुग में था। आज की शिक्षा जीविकोपार्जन के लिए है, आचरण के लिए नहीं। इस शिक्षा से न लोग अनुशासन सीख रहे हैं और न विचारों की शुद्धता अपना रहे हैं। विज्ञान जहाँ सुख-सुविधा दे रहा है, वहाँ विषम-सुख की ओर उन्मुख भी कर रहा है। फलतः अपनी वासनाओं-कामनाओं की तृप्ति के लिए व्यक्ति जघन्य कर्म करने में भी नहीं हिचकता। वह स्वार्थकामी होता जा रहा है और अर्थ के लिए अनर्थ करने पर उतारू है। इसलिए शिक्षा को नयी दिशा देने की अपेक्षा है, जिससे विज्ञान के साथ आचरण नैतिकता का मेल बैठ सके। प्रजातंत्र ढह जाएगा यदि जनता नैतिकता को ताक पर रख देगी। आज स्कूली शिक्षा से अधिक नैतिक आचरण की अपेक्षा है। यदि समय रहते हम अपने को ठीक रास्ते पर न ला सके तो प्रजा प्रजा को खा जाएगी और परस्पर द्वेष-घृणा-हिंसा से जनजीवन का स्वातंत्र्य और उसका हित समाप्त हो जाएगा।

आज के समय की माँग है कि हम इंसान बनें। सबसे पहले आदमी में इंसानियत हो बाकी बात बाद में हो। भ्रष्टाचार न प्रजातंत्र को जीवित रहने देगा और न जन-जन को। संग्रह की होड़ समाप्त करने के लिए, शस्त्रास्त्र की होड़ खत्म करने के लिए मानवत्व की श्रेष्ठता घोषित करनी होगी और उसकी रक्षा के लिए संसार में क्रांति करनी होगी। आज स्वतंत्रता-समता केवल कागज पर है। राजनीति ने निगल लिया है मानवत्व को। एक ओर धर्म की अंधता, दूसरी ओर राजनीति का जाल और इन दोनों से बढ़कर पैसे की हवस में सारे बुनियादी मूल्यों को निर्मूल कर रहे हैं। 'आवश्यकता है हम अपने को पहचानें, सन्मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध हों। राष्ट्र की एकता के लिए सचेष्ट हों और निष्ठापूर्वक अपने समाज को सँवारने की ओर भी। यह समदृष्टि ही लूटने-खसोटने की प्रवृत्ति को विनष्ट कर सकती है।'[4]

'मनुष्य और पशुत्व में चाहे कितना ही भेद हो, उनमें मुख्य भेद यह है कि मनुष्य दूसरों के दुःख में दुःख का अनुभव करता है। अन्य किसी जीव में यह अनुभव-शक्ति नहीं है। यह परदुःखकातरता तथा सुख में सहृदयता ही मनुष्य का सर्वप्रधान मनुष्य तथा मानव की सर्वप्रधान मानवता है। यह सुकोमल करुणा जो पुण्य नेत्रों में मंगलाश्रु के रूप में छलछला उठती है, यही यथार्थ मनुष्यत्व है। मानवधर्म ही भविष्य की आशा है, क्योंकि इसका अर्थ है विश्व में स्थित आत्मशक्ति का क्रमशः साक्षात्कार और एक दिव्य यथार्थ का बोध, जिसके अंतर्गत समस्त विश्व है और सब-कुछ एक है।'[5]

कबीर का जीवनोद्देश्य मानव-जीवन का पथ-प्रदर्शित करना था। पतित भ्रष्ट, अत्याचार अन्यायी तथा कुमार्गी व्यक्तियों को नैतिक तथा सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने की सीख वह

मानवमात्र को देना चाहते थे। मनुष्य की सुप्त अंतरात्मा में वह सद्वृत्तियों का प्रकाश आलोकित करना चाहते थे। संभवत: इसी कारण अपने काव्य में काल की अपरिहार्यता, अनिवार्यता तथा भय का बोध और व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराकर उसकी चेतना को जाग्रत करना ही उनका परम कर्त्तव्य था। कबीर मनुष्य को कर्मशील बनाकर उसके मन से काल-भय को दूर करना चाहते थे। मृत्यु से टकराने का यह साहस मनुष्य के अंदर मानवता की भावना पैदा करता है।

कबीर नये धर्म के निर्देशक, नवीन समाज के निर्माता, साथ ही नवीन संस्कृति के नव जागरूक थे। वे केवल विद्रोही व क्रांतिकारी ही नहीं थे, एक संवेदनशील मानव भी थे। कबीर के समय में धर्म, समाज एवं संस्कृति तीनों का स्वरूप बिगड़ गया था तथा सभी रूढ़ियों, अंधविश्वासों व जड़ता में घिरे थे। रोती-बिलखती मानवता को उन्होंने केवल सांत्वना ही नहीं दी, अपितु जो मार्ग वह भूल चुकी थी, उसे पुन: प्रशस्त किया। सोई हुई जनता को झकझोर कर उठाया। कबीर का धर्म मानव के कल्याण का धर्म है। समाज के सब लोग भली भाँति रहें अर्थात् सब अपने कर्त्तव्यों का ठीक ठीक पालन करें और आपस में प्रेमभाव से रहें। धर्म के नाम पर अनाचार न हो, यही कबीर का धर्म है, जिसे मोटे रूप से मानवधर्म कह सकते हैं।

कबीर की मानव-कल्याणी विचारधारा ने समाज के नैतिक और धार्मिक उत्थान में अनुपम योगदान किया। कबीर के योगदान को समझने के लिए भारतीय साधना के इतिहास को समझ लेना आवश्यक है। इसे समझे बिना न हम मध्ययुग की साधना के सम्यक रूप से परिचित हो सकते हैं न कबीर के साथ न्याय ही कर सकते हैं। आज हमें कबीर की वाणी अटपटी लगती है, उसमें विषमता और विभिन्नता है। इसका कारण यह है कि हम उस महान् व्यक्तित्व को केवल आंशिक रूप से ही उद्घाटित करने में समर्थ हो सकते हैं। जहाँ तर्क-वितर्क और विज्ञान में विरोध है, वहाँ सत्य-साधना और श्रद्धा-भक्ति में पूर्ण सामंजस्य मिलता है। पृथ्वी पर आदमी मात्र दो चीज पा सका है, पहला प्रेम और दूसरा घृणा। जीवन की खुरदरी तलाश में समझ की रूपरेखा विचारों के साथ जुड़कर कल्पनाशील मूल्यों को साहित्य का विषय बनाते रहे। कबीर को समझने के लिए हिंदु-मुस्लिम संघर्ष का इतिहास शायद संस्कृति का बाह्य तंत्र है। इस अविश्लेषित इतिहास, संस्कृति और नेतृत्व की क्रिया के खोज के द्वारा ही संत कबीर द्वारा प्रस्थापित राष्ट्रीय एकता के समन्वित दृष्टिबंध का पता लगाया जा सकता है। समाजसुधार और सर्वधर्म समन्वय उनका ध्येय है जो राष्ट्रीय एकता का मूलमंत्र हो सकता है।

मानवमात्र का अध्यात्म आधारित धर्म ही भविष्य की आशा का दीपक है। इस तथ्य की क्रमश: अधिकाधिक अनुभूति हो रही है। एक गूढ़ तत्त्व एक दिव्य सत्य है, जिसकी दृष्टि में हम सब एक हैं और जिस तत्त्व का पृथ्वी पर मानव-जाति की सर्वोच्च स्थूल आधार है तथा मानवजाति एवं मानव-प्राणी ही वे साधन हैं जिनके द्वारा वह इस धरातल पर क्रमश: अभिव्यक्त होगा। जब तक मनुष्य अपने ही शरीर रूप में जानता है, आत्मा के रूप में नहीं जानता, तब तक भातृत्व की अनुभूति नहीं होती। भौतिक वस्तुएँ परिणाम में सीमित होने एवं उन पर अधिकार जमाने वालों की सुख्या विपुल होने के कारण संघर्ष को जन्म देती है। वस्तुओं को ग्रहण करके उन पर अधिकार जमाये रखना भौतिक सफलता का सेतु है, परंतु जब मनुष्य अपने आपको शरीर न समझकर आत्मा समझने लगता है तब उसको ज्ञात होता है कि विभाजन और प्रदान विकास और शक्ति के हेतु हैं। आध्यात्मिक शक्ति व्यवहार में लाने पर बढ़ोतरी है नष्ट नहीं होता जितना ही प्रदान करो, उतनी ही वह वृद्धि को प्राप्त होती है। जितना ही बाँटो, उतना ही वह पूर्ण अधिकृत एवं आत्मसात होती जाती है। अतएव

भातृत्व की जड़ अधयात्म में होनी चाहिए। बाहर से राजकीय विधान के द्वारा उसका सृजन नहीं किया जा सकता, वह तो अंतर में फूट पड़ने वाला और आत्मा का जय-स्रोत होना चाहिए।

कबीर ने समस्त व्रतों, उपवासों और तीर्थों को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकारी भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान-सम्मान की व्यवस्था कर जाने को उन्होंने बेकार परिश्रम समझा। उन्होंने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन, वही भी नहीं मुहर्रम भी नहीं, पूजा भी नहीं, समाज भी नहीं, तीर्थ भी नहीं। 'एक निरंजन अलह मेरा, हिंदु तुरूक वहूँ नहीं मेरा। राखूँ व्रत न मरहम जाना, जिस की सुमिखं जो रहे निजनां पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिर है न मखारूँ। ना हज जाऊँ न तीरथ-पूजा एक मिछाण्यां तो क्या दूजा। कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा।'[6]

जो ये पीर-पैगंबर, काजी-मुल्ला, रोजा-नमाज और पश्चिम की शक्ति है, ये सभी गलत हैं और वे देव और द्विज, एकादशी और दिवाली पूरब दिशा में भक्ति हैं वे भी गलत हैं। भला हिंदुओं के भगवान तो मंदिर में रहते हैं और मुसलमानों के खुदा मस्जिद में, पर जहाँ मंदिर भी नहीं है और मस्जिद भी नहीं है वहाँ किसकी ठकुराई काम कर रही है? कबीरदास ने इन सबको अस्वीकार कर दिया। उन लोगों को भी अस्वीकार कर दिया जो आँखें मूँदकर चलना ही पसंद करते हैं। अपने आत्माराम को ही संगी बनाकर वे निकल पड़े। बोले ओ फकीर, तू अपनी राह चल। मंदिर में भी मत जा और मस्जिद की ओर भी रुख न कर। काहे को टंटे में पड़ता है। तेरे राम-रहीमा, कैसो करीमा में तो कोई भेद नहीं है, तेरे लिए तो दोनों एक ही हैं।

परंतु कबीर यहीं नही रुके। अगर अल्लाह शब्द मुस्लिम धर्म का प्रतिनिधित्व करता है और राम शब्द हिंदू-संस्कृति का तो वे इन दोनों को सलाम कर देने को तैयार हैं। आखिर कोई न कोई शब्द तो व्यवहार करना ही पड़ेगा। पर अगर अरबी फारसी के शब्द मुस्लिम संस्कृति की ओर संस्कृति हिन्दी के शब्द हिंदू-संस्कृति की याद दिला देते हैं तो कबीरदास इस बुद्धि को भी पनपने नहीं देते। ये वेद और कुरान के भी आगे बढ़कर कहते हैं-'गगन तहाँ पावस झरे, होत झनकार नित बाजत तूए। वेद-कत्त वेब की गम्य नाहीं कहैं कबीर कोई रमे सूरा।'[7]

इस प्रकार सब बाहरी धर्माचारों को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर कबीरदास साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। कबीरदास जी ने मुस्लिम धर्म, हिंदूधर्म, वैष्णव-धर्म सभी धर्मों की बात करते हुए एक निराकार, निर्गुण परब्रह्म परमात्मा की बात की है और सभी धर्मों में सर्वश्रेष्ठ धर्म मानव-धर्म, मानव-प्रेम बताया है।

संदर्भ

1. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 23
2. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 28
3. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 128
4. कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 138
5. परोपकारी पत्रिका, अक्तूबर द्वितीय, पृ॰ 23-24
6. स्वदेष्ठी ष्ठोधा पत्रिका, जन-मार्च 2012, पृ॰ 24
7. वही, पृ॰ 55